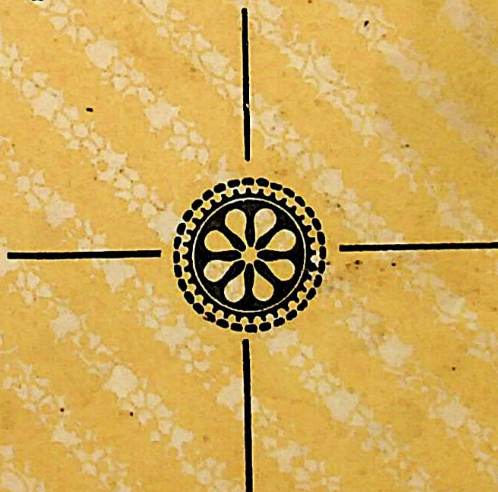
ओ३म्

लिक पद्योपन्यास-

ण्डवी महाशया

[भरतभार्या का चरित्र चित्रण]



रचयिता-
स्वामी ओ३म् प्रेमी चतुर्थाश्रमी
गुरुकुल, होशंगाबाद म.प्र.

ओ३म्

(ओ३म्-प्रेमी पद्यप्रगुच्छ का दशम पुष्प)

मांडवी-महाशया

[प्रमौलिक पद्योपन्यास]

(भरत-भार्या माण्डवीदेवी का सर्वथा मौलिक उपन्यासोतर पद्यमय चरित्र-चित्रण)

(पद्यमयी प्रशस्ति)

"हे देवि माण्डवी ! तव चरित्र है पवित्र, उसकी हीं महिमा -
यह भीं तो है कि ओ३म् प्रेमी गहपाया-चरित-रचन-गरिमा ॥

माडण्वो-चरित है ऐसा हो जिसके शुचि प्रवाह में बहकर -
कोई भी मुग्ध, प्रसन्न बने (चाहे नारी हो या वह नर) ॥

[१६००वां प्रियछन्द]

प्रणेता-

स्वामी ओ३म् प्रेमी (चतुर्थाश्रमी)

(भूतपूर्व रामनारायण माथुर, ओ३म् प्रेमी, अधिवक्ता, शाजापुर (मध्यप्रदेश)

भूमिका लेखक-

महात्मा अमर स्वामी जी महाराज

आर्य संन्यासी, गाजियाबाद (उत्तरप्रदेश)

मूल्य : १५) पन्द्रह रुपये

प्रकाशक-

ब्रह्मज्ञान प्रकाशन, मेन रोड, होशंगाबाद (म.प्र.)

मुद्रक-

नर्मदा प्रेस, होशंगाबाद (स्थापित सन् १८९६ में)

[प्रथम संस्करण] प्रकाशन वर्ष १९८५ ई०

मूल्य : पन्द्रह रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान-

(१) ओ३म् प्रेमी कुटीर, गुरुकुल परिसर,
(नर्मदा तट) गुरुकुल, होशंगाबाद (म.प्र.)

(२) ब्रह्मज्ञान पुस्तकालय,
मेन रोड, होशंगाबाद (म.प्र)

(३) राजनारायण चौधरी, २१, चित्रगुप्त मार्ग,
लालपुरा, शाजापुर (म.प्र.)

ओ३म्

समर्पण-सुलेख

उन वाग्मि-प्रवर शास्त्रार्थातिरथी, सुलेखक, आशुकवि, बेहतरीन शायर, यज्ञप्रेमी, ओ३म्-भक्ति-परायण पूजनीय पिताश्री (स्व.) सूर्यप्रसादजी चौधरी, शाजापुर (म.प्र.) निवासी (अंतिम १६ वर्षों तक स्वामी सूर्यानन्दजी सरस्वती, आर्य संन्यासी) की सुपावनी स्मृति को यह "माण्डवी महाशया" नाम वाली कृति (जो पद्योपन्यास की सर्वथा नई विधा में न जाने कैसे मुझसे रचिता हो गयी है, सादर समर्पित करता हूं। जिन श्रद्धेय के, विविध विषयक सहस्रों ग्रन्थों के विशाल संग्रह से (जिसका नामकरण, उन्होंने ही अपने गुरुवर्य आर्य-विद्वान् पं० गणपति शर्मा जी की स्मृति में "गणपति पुस्तकालय" कर रखा था।) लाभ उठाकर तथा जिसके वरेण्य वरदानी प्रेरक जीवन से प्रेरणामय प्रोत्साहन पाते रहकर मैं, अकिंचन "ओ३म् प्रेमी" परमेश-कृपा प्राप्ति की यत्किंचित पात्रता पा सका, परिणाम स्वरूप यह पद्यमयी रचना आशुरूपेण सुनिर्मिता हो पायी-सचमुच इसके आकस्मिक प्रणयन पर मुझे स्वयं भी अतिशय सुखद विस्मय है। मुझको पूर्ण विश्वास है कि निश्चय ही इसके निर्माण में उन सुसंस्कारों का अज्ञात योगदान रहा है जो पूज्य पिता श्री से प्राप्त होते रहे थे इसी से इसका उन्ही की स्मृति को समर्पण किया जा रहा है।

[समर्पक- "ओ३म् प्रेमी]

ओ३म्

आत्म-निवेदन (पद्यात्मक)

"क्यों, कैसे रचिता हो पायी माण्डवी', अहो, इसके द्वारा ?
आता ही भाव-समूह गया, किस तरह नवीन तथा न्यारा ??
सच जानो-इस पर विस्मित है स्वयमेव 'ओ३म् प्रेमी' प्रतिपल।
इसने तो मानो भीतर की बातें ही प्रस्तुत कीं अविकल ॥"

[गद्यमय 'पश्चात्कथन' यथानाम, सबसे अन्त में ही अंकित किया गया है, वह भी द्रष्टव्य है। वस्तुतः वह इसी 'आत्म-निवेदन' का विस्तार मात्र है अस्तु।]

प्रणेता की ओर से..

प्रकाशन-पूर्वीय प्र-कथन

'माण्डवी-महाशया' का आविर्भाव नितांत आकस्मिक हुआ सो प्राक्कथन लिख सकने की स्थिति ही नहीं आ पायी, केवल 'पश्चात्कथन' लिखा जा सकता था जो लिखा ही गया है। परन्तु प्रकाशन से पूर्व तो प्रकथन भी सम्भव है अतएव संक्षेपतः प्रस्तुत किया जा रहा है :-

प्रणयन के १५ वर्षों के अनन्तर इसके प्रकाशन का अब सुयोग आ सका है। इस अन्तराकाल में अकस्मात् मैंने स्वयं ही (सन् १९७४ में) इसकी गद्य-परिणति कर डाली और उस गद्यो-पन्यास का नाम यतः "माण्डवी-महाशया" रख दिया अतः इस पद्योपन्यास का नामकरण केवल 'माण्डवी' के स्थान पर 'माण्डवी महाशया' करना पड़ा।

मैंने इन १९ वर्षों में इसे प्रकाशित कराने के अनेकों प्रयत्न किये परन्तु 'रॉयल्टी' के लोभ की अड़चन से सफलता न हो पायी। ८ वर्ष पूर्व (सन १९७४ में) परमपूज्य ओ३म् देव

अन्तर्यामी स्वामी शिव निराकार ने अन्त:प्रेरणा करके यह सुझाया कि "सधवा महिला को चतुर्थाश्रम का अधिकार दिलाने का उदा-हरण प्रस्तुत किया जाय" मुझे पहल करने से पूर्व यह समीचीन प्रतीत हुआ कि आवश्यक पूछताछ कर ली जावे, अत: मैंने बीसियों आर्य-विद्वानों तथा आर्या विदुषियों से व्यक्तिश: पत्रों द्वारा जिज्ञासा की, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा (देहली) को लिखा, उक्त सभा के मुखपत्र 'सार्वदेशिक' में भी (सन् १९७९ के मई मास में) यह शंका छपवायी किन्तु खेद है कि कहीं से कोई समाधान नहीं मिला। जो कुछेक उत्तर मिले, वे सर्वथा असंगत थे मानो प्रश्न को पढ़े बिना ही दिये गये हों। इस पर मुझे भारी खेद हुआ, अचरज भी।

सन् १९८१ में एक आर्य विद्वान् श्री पं. राजवीर जी शास्त्री (संपादक 'दयानन्द सन्देश', दिल्ली) ने अवश्य उतर में लिखा कि "ऐसा कोई उदाहरण नहीं है, आप कायम करके अन्यों का मार्गदर्शन करें" इस पर मैंने अपनी आर्या भार्या सहित (जो अब सहचरी मात्र हैं) २९-९-८१ को चतुर्थाश्रम ग्रहण कर लिया। कहीं से कोई प्रमाण, नियमादि एवं उदाहरण विदित न कराये जाने के कारण अपने नियमादि हमें ही बनाने पड़े, दीक्षा भी परस्पर ही लेनी पड़ी क्योंकि कोई सान्निध्य तक का लाभ देने को उद्यत न हुआ!

चतुर्थाश्रम ग्रहण करने के १ मास पश्चात् एक अन्य आर्य विद्वान् डॉ. भवानीलाल जी भारतीय एम.ए., पीएच.डी (प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, दयानंद चेयर फॉर वैदिक स्टडीज पंजाब विश्वविद्या-लय, चण्डीगढ़) का भी उत्तर आया जिसमें उन्होंने लिखा कि "आप अपनी पत्नी समेत चतुर्थाश्रमी बने, यह प्रशंसनीय है।" अब नर्मदा तट पर 'ओ३म् प्रेमी'– कुटीर, गुरुकुल होशंगाबाद परिसर में रहते हुए आध्यात्मिक, शैक्षणिक एवं साहित्यिक सु-साधना-रत यथा शक्तियथामति, रहता हूं– चारों वेदों का हिन्दी पद्यानुवाद करने का क्रम चालू है, गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को हिन्दी, अंग्रेजी एवं धार्मिक शिक्षण भी नियमित रूपेण, अवैतनिक, देता हूं जिस का यहां अब तक प्राय: अभाव–सा था, अस्तु।

उपर्युक्त अभूतपूर्व अश्रुतपूर्व पग (पत्नी के समेत चतुर्थाश्रमी बनने विषयक) उठाते ही 'रॉयल्टी' का लोभ अपने आप समाप्त हो गया। फलतः "माण्डवी महाशया" का प्रकाशन सहज सम्भव हो सका है। जिन जिन महानुभावों ने इसके प्रकाशन में सहयोग दिया है उनका मैं हृदय से कृतज्ञ हूं और उन्हें शुभाशीष देता हूं- मेरे पास अब इसके अतिरिक्त रह ही क्या गया है। विशिष्ट उदा-हरण है कि उन सभी ने अपना नामोल्लेख करने से मुझे रोक दिया अन्यथा सबको पृथक् पृथक् धन्यवाद क्यों न देता ? वे विज्ञा-पन- पराङ्मुख रहना पसन्द करते हैं, क्या यह कोई छोटी बात है ? उन सबको पुनरपि धन्यवाद एवं शुभाशीर्वाद।

सुधी मानवों (महिलाओं, पुरुषों) का सर्वदा सर्वथा मंगलेच्छु—

स्वामी ओ३म्प्रेमी चतुर्थाश्रमी

[भूतपूर्व, रामनारायण माथुर 'ओ३म् प्रेमी

वरिष्ठ अधिवक्ता, शाजापुर (म.प्र.)]

ओ३म् प्रेमी कुटीर, गुरुकुल परिसर, नर्मदा तट, होशंगाबाद म.प्र.

[२६।१।८५, स्वर्गीय पिताश्री (स्वामी सूर्यानन्दजी) की जन्म तिथि का स्मृति दिवस]

विद्वत्-सम्मति

[महाकवि 'नवीन' जी के विषय में शोध ग्रंथ लिखकर डॉक्टरेट लेने वाले डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे एम.ए. (द्वय) पी-एच. डी., साहित्यरत्न (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग सागर विश्वविद्यालय, सागर म.प्र.) की सम्मति। उल्लेख्य है कि उक्त शोध ग्रंथ में डॉ. दुबे ने 'ओ३म् प्रेमी' रचित 'काव्यांजलि' ('नवीन' जी के बारे में लिखी हुई कविताओं के संग्रह) में से अनेकों उद्धरण दिए हैं। निम्नांकित पंक्तियां डॉ. दुबेजी के दिनांक २७ मार्च १९७४ वाले लम्बे पत्र में से उद्धृत की जा रही हैं।]

आपने "नवीन" -जी की शैली का सच्चा अनुगमन 'माण्डवी' में किया है। "नवीन" जी के महाकाव्य 'उर्मिला' से पुनीत प्रेरणा लेकर 'माण्डवी की सफल सर्जना की है। भरत-प्रिया माण्डवी की उपेक्षा का निवारण करके माण्डवी को काव्य की नायिका के पद पर प्रतिष्ठित किया है। यह अत्यन्त सरस, मधुर और मौलिक प्रसंगोद्भावनाओं से युक्त कृति है। डॉ. वल्देवप्रसाद मिश्र ने 'साकेत सन्त' और 'कौशल-किशोर' में भरत को तो प्रतिष्ठित कर दिया है परन्तु वेचारी माण्डवी फिर भी तड़--पती ही रह गयी। इस कृति में माण्डवी के व्यक्तित्व और बलिदान के साथ पूर्ण न्याय हुआ है। यह एक श्रेष्ठ एवं स्तरीय कृति है। आपने इस कृति की रचना करके स्तुत्य कार्य सम्पन्न किया है।

सीता और उर्मिला की हार्दिक वेदना तो सबने सुनी परन्तु माण्डवी और श्रुतिकीर्त्ति की पीड़ा को किसने वाणी प्रदान की है?

यह कृति 'उर्मिला', 'यशोधरा', 'पाषाणी', 'कैकेयी' एवं 'निर्वासिता' की परम्परा को सम्पुष्ट करती है। इन रचनाओं के माध्यम से हमारी पौराणिक उपेक्षिताओं, विस्मृताओं का सचमुच पुनरुद्धार हुआ है।

--- — ❋ — ---

भूमिका

(लेखक – महात्मा अमरस्वामी जी परिव्राजक,
संन्यास-आश्रम, गाजियाबाद उ.प्र.)

शाजापुर, मध्यप्रदेश का एक जिला है। वहां के श्री स्वामी सूर्यानन्द जी प्रतिभाशाली आर्य संन्यासी वड़े कर्मठ व्यक्ति थे। उनके सुपुत्र श्री रामनारायण जी माथुर 'ओ३म् प्रेमी' शाजापुर के प्रतिष्ठित एडव्होकेट, भक्तहृदय, धार्मिकप्रवृत्तियुक्त और स्वाध्यायशील सज्जन हैं। इन्होंने छोटी बड़ी कई पुस्तकें रची हैं जिनमें से कुछ ही प्रकाशित हो पाई हैं, अधिकांशतः अप्रकाशित हैं।

इन्हीं 'ओ३म् प्रेमी' जी ने 'माण्डवी' नाम का एक उपन्यास नाटक छन्द में लिखा है। माण्डवी, सीताजी के पिता मिथिलाधि–

-पति महाराजा सीरध्वज 'जनक'* के कनिष्ठ भ्राता श्री महाराजा कुशध्वज की जेठी पुत्री थीं और महाराजा दशरथ जी के पुत्र भरत जी को विवाही थीं। माण्डवी की छोटी बहिन श्रुतिकीर्ति महाराजा दशरथ जी के चतुर्थ पुत्र शत्रुघ्न जी को विवाही थीं। इन दोनों के विवाह भी उसी दिन हुए थे जिस दिन महाराजा सीरध्वज जनक की बड़ी पुत्री सीता का दशरथ जी के पुत्र श्री रामजी से तथा छोटी पुत्री उर्मिला का विवाह लक्ष्मण जी से हुआ था। इतिहास से माण्डवी का यह संबंध रामायण पढ़ने सुनने वालों को विदित है।

स्वाध्यायशील 'ओ३म् प्रेमी' जी ने "माण्डवी" के नाम पर उपन्यास लिखा है ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर अन्य उपन्यास

---

* इस 'सीरध्वज' नाम के विषय में जब प्रणेता ने श्रद्धेय स्वामीजी को पत्र भेजकर जिज्ञासा की, तो उनका यह उत्तर प्राप्त हुआ – "सीता के पिता का नाम 'सीरध्वज' था, यह रामायण में तो नहीं लिखा है परन्तु रामायण से भी ऐसा प्रतिभासित होता है कि 'जनक' उनका वश नाम था। सीताजी के पिता को १९ पीढ़ी पहले 'जनक' निमि विदेह का कहीं पौत्र और कहीं पुत्र बताया है। वह वंशधर हुआ। जो जो मिथिला की राजगद्दी पर बैठे वे वे सबही 'जनक' कहलाये। अध्यातम ज्ञान के विशेषज्ञ होना इस वंश का प्रधान गुण रहा। सीताजी के पिता ने अपनी वंशावली सुनाते हुए अपने आपको "मैं" कहा और अपने भाई का नाम 'कुशध्वज' बताया, अपना नाम नहीं लिया पर नाम कोई होगा – ऐसा ध्वनित होता है। उसका नाम सीरध्वज था ऐसा विष्णु पुराण, अंश ४, अध्याय ५ के वाक्य २७, २८ व २९ में इस प्रकार है– 'ह्रस्वरोम्णस्सीरध्वजोऽभवत्' ॥२७॥ (हस्वरोमा का पुत्र 'सीरध्वज' हुआ) तथा 'तस्य पुत्रार्थं यजनभुवं कृषतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्ना'॥२८॥ (उसके पुत्रार्थ यज्ञभुमि जोतते हुए सीता नाम की पुत्री उत्पन्न हुई।) 'सीरध्वजस्य भ्राता सांकाश्यधिपतिः कुशध्वज नामासीत् ॥२९॥ (सीरध्वज का भाई सांकाश्य का राजा कुशध्वज नाम वाला था) विष्णु पुराण, अंश ६ के अध्याय ६ में धर्मध्वज जनक, अमितध्वज जनक, कृतध्वज जनक, खा- -ण्डिक्य जनक और केशिध्वज जनक भी कहे हैं। आप जैसे नम्रता और श्रद्धा की मूर्ति स्वाध्यायी महानुभाव के लिए इतना ही पर्याप्त हैं।
(२६-६-६९ वाले पत्रोत्तर में से उद्धृत)

लेखकों ने भी उपन्यास लिखे हैं। सीताजी की छोटी बहिन और लक्ष्मणजी की पत्नी उर्मिला के नाम पर प्रसिद्ध कवि (स्व.) श्री पं. बालकृष्ण जी शर्मा 'नवीन' का भी औपन्यासिक ढंग पर काव्य प्रसिद्ध है तथा उर्मिला आदि को पात्र बनाकर कविवर श्री मैथली-शरण जी गुप्त ने भी 'साकेत' नामक काव्य लिखा है।

उपन्यास में कुछ संभावित और स्वाभाविक कल्पनाओं को आधार बनाकर कुछ पात्रों का चरित्र चित्रण किया जाता है। इस का वर्णन बहुत रोचक ढंग पर होता है। पढ़ने वालों को बहुत प्यारा लगता है। यदि इस वर्णन में शिक्षाप्रद भाग भी जोड़ दिया जाय तो सोने में सुगन्ध या सोने में सुहागे का काम हो जाता है। ●

धार्मिक भावनायुक्त श्री 'ओ३म् प्रेमी' जी ने अपने स्वाध्याय के बल पर वेद मन्त्रों तथा उनके साथ मिलने वाले शास्त्रवचनों से वर्तमानकाल के युवक और युवतियों को जो शिक्षाएं, उनके विचार में, देनी आवश्यक थीं, उन शिक्षाओं और उपदेशों को प्रश्नोत्तर के रूप में माण्डवी आदि के साथ सम्बद्ध कर दिया है। शिक्षा देने का यह उत्तम प्रकार है। गिलाय और चिरायते का क्वाथ न पी सकने वालों के लिये विचारशील वैद्य की बनाई हुई मधुर, स्वादिष्ट और सुगंधित पेय के रूप में यह उत्तम औषधि है।
किन्हीं किन्हीं पाठकों को इस ग्रंथ में श्री सीता जी की (कवि-वर 'नवीन' जी के 'उर्मिला' काव्य तथा श्री 'ओ३म् प्रेमी' जी की 'माण्डवी' के संबंध में) की हुई भविष्यवाणी (छटे प्रकरण में जिसे देखा जा सकता है) और माण्डवी के ध्वनिविस्तारक यंत्र पर

● हमें यहां सहसा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी गुप्त का एक छद स्मरण हो आया जो यों है "केवल मंनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिये। उस में उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिये।" [नम्र गौरव है कि राष्ट्र कवि ने साहित्य साधना के साकल्य विषयक लिखित शुभाशीष हमको प्रदान किया था। ('ओ३म् प्रेमी")

भाषण आदि खटक सकते हैं,* मेरे विचार में उनका समाधान यह समझ लेने पर हो जाना चाहिए कि ओ३म् प्रेमीजी ने यह इतिहास नहीं लिखा है, यह उनका रचा हुआ उपन्यास है। उपन्यास-लेखक कल्पना की उड़ान में कहां तक जा सकता है इसकी सीमा बांधना कठिन है।

लेखक का ध्यान कविता की ओर अधिक न रहकर उन शिक्षाओं की ओर अधिक रहा है जिन्हें वेदमंत्रों द्वारा देना आवश्यक जाना है। परमेश्वर करें, कि यह काव्य, वर्त्तमान काल के युवक और युवतियों को सन्मार्ग दिखाकर उनको भयंकर पतन से बचाने में समर्थ हो। केवल मनोरंजन कराने वाले उपन्यासों को पढ़ने से धन और समय का अपव्यय मात्र ही होता है, लाभ कुछ नहीं। मेरा विश्वास है कि इसके पढ़ने से अवश्य ही लाभ होगा।

श्री 'ओ३म् प्रेमी' जी ने एडव्होकेट होते हुए, अभियोगों की तैयारी करते हुए, अभियोग लड़ते हुए, गृहस्थधर्म को पालते हुए (भिन्न-भिन्न रचनाओं में) ५० सहस्र के लगभग छन्द लिखे हैं, उनमें कहीं कहीं छन्दोभङ्ग का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं, आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसे व्यस्त जीवन वाले व्यक्ति द्वारा सुन्दर और सरस भाषा में भाव भरे सहस्रों छंद लिखे कैसे जा सके ? विशेषकर इस अवस्था में कि जिस व्यक्ति ने कविता करनी

---

* "चेरियट्स ऑफ गाड्ज़" (एरिक फान डानिकेन कृत) की जो समीक्षा धर्मयुग (२७-५-७३) मे श्री 'राममूर्ति' द्वारा की गई है उसका एक छोटा सा उद्धरण यहां लिखने का लोभ हम संवरण नहीं कर पा रहे हैं, अतः उद्धृत करते हैं– "चेरियट्स आफ गाड्ज़" 'इंडक्टिव लाजिक' का सुंदर नमूना है डानिकेन को इस बात का दुःख है कि हम भविष्य की खोज के लिए जितने लालायित है उतने अतीत की खोज के लिए नहीं। हमें यह मानने में सकोच क्यों है कि हजारों साल पहले के लोग हमसे अधिक उन्नत थे। [कूगी बुक्स, ट्रान्स वर्ल्ड पब्लिशर्स लिमिटेड लन्दन] ('ओ. प्रे.)

कभी नहीं सीखी फिर भी लेखनी से अविरल और प्रबल प्रवाह चल रहा है, विशेष आश्चर्य होता है। यह ईश्वरभक्ति का प्रभाव है। श्री 'ओ३म् प्रेमी' जी पर ईश्वर की महती कृपा ही है।

अन्त में, मैं 'माण्डवी'–लेखक (कवि) महोदय को इसके लिखने पर धन्यवाद और बधाई देता हूं और यह कामना करता हूं कि इस काव्य का सर्वत्र प्रचार हो।

ज्येष्ठ कृष्णा १३
सं. २०२६ वि.
(१४ मई १९६९ ई.)

सबका हितचिन्तक
अमर स्वामी परिव्राजक

अमौलिक पद्योपन्यास ' माण्डवी महाशया ' की

विषय – सूची

प्रतिवेदन

१ भारत में जितनी सन्नारी, प्राचीनकाल ने प्रकटायीं ।
उन सबमें से हमको देवी माण्डवी भक्तिपूर्वक भायीं ॥
२ यह अचरज है कि आदिकवि से वे उपेक्षिता सर्वथा रहीं ।
पर-वर्त्ती कविजन भी उनका वर्णन करपाये नहीं कहीं ॥
३ हम विज्ञ नहीं, कवि-कुशल नहीं, फिर भी साहस करना ठानें ।
इसलिए कि अपनी श्रद्धा को निहिता रखना अशक्य मानें ॥
४ आश्वासन मिला कल्पना से ऐसा कि संगिनी रह लेगी ।
इस प्रयास में एकाकीपन अनुभव न हमें होने देगी ॥
५ इन (श्रद्धा और कल्पना) को हम रहने देते हुए संग ।
बढ़ रहे माण्डवी–चरित्र के अंकन–मग में लेकर उमंग ॥
६ अन्तर्यामी ओङ्कार, अहा, स्वयमेव दे रहे प्रोत्साहन ।
जिससे उमंगमय अनजाने बन रहा 'ओ३म् प्रेमी' चेतन ॥

परिचय (प्रथम प्रकरण)

(दोहे) मिथिला नगरी की छटा, न्यारी थी उस काल ।
जब विदेह नृपवर जनक, थे ज्ञानी क्षितिपाल ॥१॥
भौतिक वैभव से अधिक, नैतिक था ऐश्वर्य ।
राजा सम ही थी प्रजा, इसमें क्या आश्चर्य ॥२॥
परिजन पर भी नृपतिका, सम्यक् था सुप्रभाव ।
रखता था प्रत्येक ही, अतिशय सौम्य स्वभाव ॥३॥

७ जिस समय वानप्रस्थाश्रम के निर्वाह को गये कानन में ।
वे नृपति 'ह्रस्वरोमा' जिनकी थी श्रद्धा, वैदिक वर्त्तन में ॥
८ उस समय थे युवक ही 'विदेह' युवराज बनाया गया उन्हें ।
जो आत्मज 'कुशध्वज' था छोटा, सौंपते पिताश्री उसे किन्हें ।
९ सो, उसकी भी जिम्मेदारी इन पर ही डाली, योग्य जान ।
सुविवेकी विदेह ने पालन आज्ञा को निज कर्त्तव्य मान ॥

(दोहे) ज्ञानार्जन भी अनुज को अग्रज ने रख ध्यान ।
अपने समही कराया, कहां भेद का भान ?? ॥४॥
शस्त्रनिपुण दोनों बने तथा शास्त्र–निष्णात ।
राजधर्म की भी नहीं, छूटी कोई बात ॥५॥
उभय बन्धु सत्रविध हुए, प्रायः एक समान ।
ग्रहण किया उत्साह से, शुचि वैदिक–विज्ञान ॥६॥
कुछ बरसों के बाद, जब; हुआ पितृ–देहांत ।
बने भूप, युवराज से, युवक विदेह प्रशांत ॥७॥
यौवराज्य पर तब किया भ्राता को आसीन ।
शासन का अधिकांश भी कर उसके आधीन ॥८॥

१० यों मिल जुलकर दोनों भाई मिथिला का राज्य चलाते थे ।
विद्वानों तथा विदुषियों को ज्ञानार्जन–हेतु बुलाते थे ॥
११ आध्यात्मिक चर्चाएं बहुधा उनके सुरण्ज्य में थीं होती ।
जो कितने ही संदेहों के मल को सर्वथा रहीं धोती ॥
१२ यों, ब्राह्मण–पक्ष प्रबल देखा तो निर्बल, क्षत्रिय पक्ष समझ–
सांकाश्यपुरी का अभिमानी राजा, विदेह से लिया उलझ ॥
१३ इससे पहले, नृप विदेह ने अपना विवाह था कर डाला ।
निज अनुज के गले में भी वे डलवा पाये थे वर–माला ॥
१४ गुण, कर्म, स्वभाव सभी में जो अनुकूल मिलीं सम्पूर्णतया ।
ऐसी भार्याओं को पाकर भ्राता–द्व्य थे सन्तुष्ट मना ॥
१५ संयोग रहा यह भी कि हुई दोनों के घर दो दो दुहिता ।
पर, सुत के सुजन्म-सम इस पर थी उभय दम्पती को मुदिता ॥
१६ 'सीता' 'उर्मिला' विदेह सुता सुकुमारी सुगुणार्थी जैसी ।
'माण्डवी' तथा 'श्रुति कीर्ति' अनुज कुशध्वज कीथीं कन्या वैसी ।
१७ चारों के पालन-पोषण में बिलकुल भी रहा नहीं अन्तर ।
शिक्षा भी एक समान मिली जिसका था बहुत उच्च संस्तर ॥
१८ इतने पर भी सीता का था उन चारों में पहला नम्बर ।
केवल वय में ही क्यों, सुरूप एवं गुण में भी थीं बढ़कर ॥ ø
१९ उनसे थोड़ी–सी ही घटकर माण्डवी, रूप गुण वाली थी ।
कैसी [illegible] थी ॥

२० पीढ़ियों पूर्व से धनुष एक, जनकों के यहां अमानत था।
देवों के प्रतिनिधि, 'शिव' नामक शुचि महामनुज ने जिसे रखा॥
२१ वह शिव धनु था अतिशय प्रसिद्ध, जनकों द्वारा जो संपूजित।
रहकर सब तरह सदैव रहा दोनों भाई से अभि रक्षित॥
२२ सांकाश्यपुरी वाले नृप ने– 'सीता समेत शिव धनुवर को–
देदो–' यह भेजा संदेशा, अभिमान–दर्प में तत्पर हो॥
२३ उसने सोचा होगा कि बन्धु हैं दोनों आध्यात्मिक प्राणी।
डर कर दे देंगे दिव्य धनुष एवं वैदेही कल्याणी॥
२४ अनुमान- विरुद्ध, निषेधात्मक जब विदेह से पाया उत्तर।
तब क्रुद्ध बना वह सैन्य सहित चढ़ दौड़ा सहसा मिथिला पर॥
२५ उस जनकपुरी को घेर लिया जिसकी थी प्रजा प्रबुद्ध बहुत।
निज नृप के लिए रहा करती उद्यत सब कुछ करने को हुत॥
२६ सैनिक शिक्षण अनिवार्यतया इस राज्य में दिया जाता था।
ऐसे ही कठिन अवसरों पर उसका प्रयोग हो पाता था॥
२७ सो, निर्भय विदेह ने बढ़कर निज शूरवीर सेना द्वारा–
अपना भी विक्रम प्रकटाकर डर दूर किया सत्वर सारा॥
२८ घेरा ही तोड़ा नहीं बल्कि सांकाश्यपुरी तक पीछा कर–
मारा उस दर्पी राजा को, उसको नगरी में ले जा कर॥

(दोहे) जब विदेह, रण–रत रहे; तब सब शासन–कार्य।
किया कुशध्वज⊙ अनुज ने, जो थे सुगुणी आर्य॥९॥

ø 'नम्बर' जैसे शब्दों के प्रयोग पर हमें खेद तो अवश्य है परन्तु हमारा विवशता यह है कि आशुरूपेण जो भी रचना हो- जाती है वही रहने देते हैं, उसे बनाना - संवारना हमें कभी नहीं भाया, न वैसा करना आया ही। आशा है. अन्यत्र भी (जैसे कि प्रि. ९ नं० क्र. १४१९ में आये हुए 'फोटी' आदि के बारे में) हमें क्षम्य मानेंगे। (यथा स्थान यही टिप्पणी लागू समझें।) ["ओ. प्रे."]

⊙ 'कुशध्वज' आदि शब्दों को ('उपन्यास' की तरह, जिसे संस्कृत के उच्चारण - नियमानुसार 'उपन्यास' के रूप में पढ़ा जाता है) 'कुशद्ध्वज' इत्यादि पढ़ा जावे। ("ओ. प्रे.")

पर, इसने में ही मिला, अग्रज का सन्देश ।
शिरोधार्य करके जिसे, छोड़ा मिथिला-देश ।।१०।।
२९ यों घटना हुई कि वधकर जब सांकाश्यपुरी के भूपति को ।
थे लौट रहे नृपवर विदेह, तब रोका लोगों ने उनको ।।
३० यह की प्रार्थना विनय पूर्वक उनसे कि आप अब रहें यहीं ।
मिथिला में तो आपके अनुज शासक हैं, कोई यहां नहीं ।।
३१ अन्यथा तुरन्त उन्हें बुलवा, इस विजित राज्य का शासन दे-
जाइये आप निज नगरी में, कृपया मानिये निवेदन ये ।।
३२ वैकल्पिक बात मान्य करना नृप विदेह ने समुचित जाना ।
रुक वहीं, ठीक समझा अपने प्रिय अनुज को तुरत बुलवाना ।।
३३ "अपनी पत्नी एवं दोनों पुत्रियां संग लेते आना ।"
यह भी कहलाया दूतों से आदेश, जो अनुज ने माना ।।
३४ यद्यपि कोई न जानता था कारण इस त्वरित बुलावे का ।
थी नहीं किसी में भी, तथापि, शंका या श्रद्धा-विहीनता ।।
३५ सब छोटे बड़े परिजनों को पूरी निष्ठा थी विदेह पर ।
'शुभ ही इसमें भी है अवश्य'; थे रखते यह विश्वास प्रखर ।।
३६ निज माता पिता और अनुजा, इन तीनों के समेत सत्वर ।
जाने को जब तैयार माण्डवी भी थी होने लगी संवर ।।
३७ तब सीता आकर लिपट गयी, दोनों के बरसे खूब नैन ।
मानों गूंगी हों दोनों ही, ऐसी रह, बोलीं नहीं बैन ।।
३८ फिर, बड़ी कठिनता से रोका उद्वेग, स्नेह का, सीता ने ।
कह उठी कि "अपना मिलन कोष रह सके न चिर तक रीता ये ।।
३९ मैं तो बस यही मनाती हूं- यह वियोग रूपी मेघ हटे ।
तुमसे मेरा सामीप्य सजे, दूरी की खाई शीघ्र पटे ।।
४० कुछ आयु में बड़ी हूं परन्तु है मेरा तुमसे सखी-भाव ।
सो मुझ पर विरह-काल का भी रह लेगा भारी ही प्रभाव ।।
४१ है अदृष्ट का तो पता नहीं पर चित्ति में ऐसी है प्रतीति-
" सुस्थिरा बनेगी निःसंशय अपनी यह अलबेली सुप्रीति ।। "
४२ उससे लिपटी-चिपटी बोली माण्डवी, रोक आंसू अपने-
"दीदी ! मैंने भी देखे हैं जाग्रत रह मन में ही सपने ।।

४३ कैसे बतलाऊं, कितना है श्रद्धायुत स्नेह मुझे तुम पर।
कब रिक्त रह सके तव स्मृति से यह विरहकाल में भी उर-घर॥
४४ श्रुति कीर्ति सगी अनुजा मेरी, पर तुम अग्रजा सगी से भी–
हो बढ़कर क्योंकि बहिन केवल कब मानूँ बल्कि सहेली भी"॥
४५ पूरी न बात हो पायी थी इतने में यह निर्देश दिया –
कुशध्वज ने उसे कि हे पुत्री ! तुमने अतिशय है समय लिया॥
४६ अब चलो हमारे साथ क्योंकि आदेश, त्वरा का मिला मुझे।
फिर, तुम दोनों की स्नेह–तृषा ऐसी कब है जो शीघ्र बुझे।
४७ कुछ देर प्रतीक्षा की मैंने, उस बीच सुना, अविदित रहकर।
वह वार्तालाप, अभीं तुमने जो किया सख्य–सर में बहकर॥
४८ मेरा भीं आत्मा यह कहता, अज्ञात हेतु से हो प्रेरित–
'शुचितर विचार, तुम दोनों का, होगा अवश्य ही संपूरित'॥

(दोहा) सीता की जननी तभीं, आ पहुँचीं उस ठौर।
विशद कथन कुछ, अन्यथा, करते कुशध्वज और॥११॥

४९ तीनों के अभिवादन का, दे समुचित उत्तर वे बोलीं यों–
(सबके हृदय को टटोलकर निज उर की गठरी खोली ज्यों)
५० "बेटी माण्डवी ! सुते सीते ! एवं हे वत्स कुशध्वज ! तुम–
तीनों जो कुछ हो सोच रहे, वास्तव में है वह अत्युत्तम॥
५१ मैंने तो इससे भी बढ़कर मेरे चेतन से अभी सुना।
क्या जानूँ कैसे उसने यह अनुमान– वसन है तुना–बुना॥
५२ वह कहता है प्रतीतिपूर्वक ऐसा कि 'बहिन ये चारों ही–
कालान्तर में हैं एक जगह, निकटस्था बन, रहने वाली॥'
५३ लो, वे श्रुतिकीर्ति- उर्मिला भी माण्डवी और सीता जैसी।
आ रहीं बिलखती हुई; अहा, इन चारों में सुप्रीति कितनी"॥
५४ तब तक आयीं कुशध्वज–पत्नी; लेने जेठानी से अनुमति।
जो पाने पर, कर नमन, चले चारों सांकाश्यपुरी के प्रति॥
५५ माण्डवी, पिता–माता–अनुजा, तीनों के संग थी काया से।
पर, उसका उर अभिभूत रहा मिथिला की ममता–माया से॥

शिक्षा–प्राप्ति (द्वितीय प्रकरण)

५६ सांकाश्यपुरी में आते ही कुशध्वज को उनके अग्रज ने –
दे दिया वहाँ का राज्य, प्रजाजन में हर्षोत्सव बहुत मने ।।
५७ फिर सभा बुला, अनुमति माँगी वापिस जाने की, विदेह ने ।
नव राजा सहित प्रजा के सब नारीनर भाव विभोर बने ।।
५८ अतिशय कृतज्ञता प्रकटायी, तदनन्तर उनको बिदा किया ।
प्रस्थान-समय, कर समारोह, शुभ-राजकीय सम्मान दिया ।।

(दोहे) रथ में जब चढ़ने लगे, गमन हेतु नृपराज –
मिथिलापति जो ज्ञानियों के भी थे सिरताज ।।१२।।
तब यों बोली माण्डवी, जिसके गीले नैन ।
और गला भी रुँध गया, सो रुकते थे बैन ।।१३।।

५९ यह कहा माण्डवी ने कि "आप, हे ताऊजी! अब जब आवें–
तब मेरी दीदी तथा सखी सीताजी को भी सँग लावें ।। "
६० आयी तब तक श्रुतिकीर्त्ति वहीं, ये पूरक वचन कहे उसने–
',भूलें न उर्मिला को लाना, मम विनय भी न क्यों मान्य बने?"
६१ दोनों को शुभाशीष देकर ताऊजी ने आश्वस्त किया ।
उनका हार्दिक शुचि स्नेह निरख, अद्भुत सात्विक आनंद लिया ।।
६२ सहभार्या नृपति कुशध्वज ने अभिवादन करके छुए चरण ।
अनुजा के सहित मांडवी भी कर उठी उन्हीं का सदनुकरण ।।
६३ अग्रज के जाने पर कुशध्वज होकर शासन-प्रवंध-तत्पर –
मन्त्रियों सहित सब राजकाज करने लग पड़े भव्य हितकर ।।
६४ प्रासाद-मध्य उनकी रानी अपनी दोनों दुहिताओं को –
शिक्षिता बनाती रहतीं थीं, मानों कोई गुरुआनी हो ।।
६५ जब जनकपुरी में था निवास तब तो उनकी जेठानी ही–
चारों कन्याओं को देती रहती थीं शिक्षा सु-पावनी ।।
६६ पर, यहाँ कहाँ यह संभव था, सो ध्यान स्वयं ही इधर दिया ।
स्वाध्याय-प्रेमयुक्ता वे थीं, सत्संग भी यथाशक्य किया ।।

६७ इतने पर भी, ज्येष्ठा कन्या-माण्डवी- बीच में प्रश्न कई –
पूछती विकट ही थी, रहती, सम्मुख रख शंका नई नई ॥
६८ [हम दें उदाहरण एक यहाँ, जिस पर से पृच्छा का प्रकार–
जाना जा सकता है कि सर्व प्रश्नों में था सन्मति-प्रसार ॥]

(दोहे) इक दिन माता ने दिया 'अक्रोध' का उपदेश ।
यह भी कहा कि "चाहिये क्रोध न करना लेश" ॥१४॥
तुरत माण्डवी ने किया, प्रश्नात्मक आक्षेप ।
(मन फिर भी दर्पादि से, रख पायी निर्लेप) ॥१५॥

६९ शंका यह थी कि ' युद्ध कैसे संक्रुद्ध बने बिना सम्भव है ?
यदि बिल्कुल क्रोधभाव तज दे तो क्षत्रिय कहाँ मनुज रह ले ??'
७० जननी से इसका समाधान हो सका नहीं इस कारण वे –
बोलीं कि " पिताजी ही तेरे. समुचित उत्तर दे सकें तुझे ॥"
७१ दोनों बहिनें यह शंका ले, श्रद्धेय पिता की सेवा में –
उनकी सुविधा लख, जा पहुँचीं, इसलिये कि समाधान पावें ॥
७२ श्रुतिकीर्त्ति समर्थन में, कहने यों लगी कि " पृच्छा है सच्ची,
दीदीं माण्डवी बड़ी विदुषी, चाल से हैं चाह वज्ची ॥
७३ मेरी सामान्य बुद्धि को भी इनकी यह शका उचित लगीं ।
ये हैं उन्नत आत्मावाली, मुझ अकिंचना की बहिन सगी ॥
७४ कितनी गौरवशालिनी, अहो, मैं हूँ ऐसी दीदी पा कर ।
इनके सुसंग से मुझमें भी लहराता विवेक - रत्नाकर ॥
७५ हो रही संस्फुरित अनायास, ताऊजी से सम्बद्ध बात ।
उस घटना की, जब नृपति सुधन्वा रहा लगाये हुए घात ॥
७६ यदि आदरणीय विदेहराज करते न क्रोधकर विकट समर ।
तो हम समेत मारे जाते मिथिला के सारे नारीनर ॥
७७ शिव धनुष यहां का नृप लाता, यह प्रजा पुनः त्रस्ता होती ।
उस दुष्ट भूप के शासन में, संकट सह, पदेपदे रोती ॥
७८ सो, इससे यह भी दिखता है – क्षत्रिय को अक्रोध ग्राह्य नहीं ।
कब युद्धपरायण शूरों से संक्रोध हो सके त्याज्य कहीं ??"
७९ श्रुतिकीर्ति कहे जाती आगे, पर उसे माण्डवी ने रोका ।
(मुंह से तो बोली नहीं किन्तु नैनों की सैनों से टोका ॥)

८० सस्मित होकर भूपति बोले– "प्यारीं बेटियों! सुनो, समझो।
वैदिक आधार लखो इसका, ऊपर ही ऊपर मत उलझो ।।
८१ 'मन्युम्मयिधेहि' प्रार्थना जो है यजुर्वेद में पुण्यमयी।
उसको अभिप्राय सहित जानो तो समाधान मिल सके सही ।।
८२ मुझको तो इतना समय कहां जो पूर्णतया सब समझाऊं ।
पर, उपाध्याय जी से कहकर निश्चय ही तुम्हें समझवाऊं ।।
८३ तुमने जिनको, माण्डवी शुभे ! साग्रह नियुक्त करवाये हैं।
वेदों के ज्ञाता विद्वद्वर वे उपाध्याय समझा देंगे ।।
८४ हत राजा ने तो नहीं यहां यह पद प्रस्थापित किया कभी।
सो, उसके परिजन ज्ञान शून्य एवं जनता में अप्रिय सभी ।।
८५ आते ही तुमने यह चाहा- मिथिला के समान ही सत्वर–
इस पद पर हों नियुक्त कोई पक्के पंडित श्रुति ज्ञानी वर ।।
८६ वैसे, मैं भी यह करता ही, पर शायद कुछ विलम्ब होता।
तव ज्ञान पिपासामयी विनय सुनकर हो पायी तनिक त्वरा ।।
८७ हां, तो संक्षिप्त रूप में तुम सम्प्रति सुनलो इतना–सा ही।
वह ठीक है कि जो कुछ तुमसे कहचुकीं तुम्हारी माता जी ।।
८८ फिर भी, वे शंका–समाधान कर नहीं तुम्हारा पायीं जो–
इससे न अश्रद्धा उनके प्रति थोड़ीसी भी तव उर में हो ।।
८९ वैदिक शिक्षा कम उन्हें मिली, मैं भी न ध्यान कुछ दे पाया।
इसलिए भेजने का मुझ तक यह शंका, है अवसर आया ।।
९० जब उपाध्याय जी, तुम दोनों बहिनों को देने ज्ञान–दान–
दैनिक निश्चित क्रम से आवें तब दें तव माता क्यों न ध्यान ??
९१ अब उनसे कह देना कि सुनें, उन द्विजवर के वे भी प्रवचन।
एवं पृच्छाओं के उत्तर देने में जो कुछ करें कथन ।।
९२ उत्तम प्रवचन एवं सयुक्ति उत्तर उनको भी दिव्य- बोध–
दे पाएंगे, वे जानेंगी-- क्या मन्यु और क्या है अ–क्रोध ।।
९३ सचमुच है क्रोध बुरा लेकिन मन्यु तो सर्वथा समुचित है।
दुष्टों पर सात्विकतया क्रोध करना ही सदा, श्रुतिविहित है ।।
९४ अग्रजवर विदेह जी धारण करते यदि श्रेय सुमन्यु नहीं–

तो रण कैसे वे कर पाते, होता न हमारा पता कहीं ।।

९५ जो अनार्य हों उन सबके प्रति, आर्यों को मन्युशील रहना –
आवश्यक है, यह सारे ही आप्तों का श्रुतिसम्मत कहना ॥
९६ केवल क्षत्रिय ही क्यों, चारों वर्णों के समस्त नरनारी –
अनिवार्यरूप से रहें अनाचारी के प्रति सुमन्युधारी ॥
९७ यह भी मूलतः अक्रोध, किन्तु कैसे, क्यों, किस प्रमाण द्वारा
इसका तुम उपाध्यायवर से करना सुज्ञात विवरण सारा ॥
९८ प्रश्नोत्तर की परिपाटी तो वेदों ने भी सिखलायी है ।
प्रभु परमेश्वर ने स्वयं रीति यह मंत्रों से जतलायी है ॥

(दोहे) सुमति बहुत कुछ मिल सकी, तुझे अरी श्रुतिकीर्त्ति !
पहले से दिखती अधिक तव ज्ञानार्जन - प्रीति ॥१६॥
सच है यह तेरा कथन – 'संगति का सु-प्रभाव –
होने से ही, पनपकर; उभरा पावन भाव' ॥१७॥
तुझे माण्डवी- संग से हुआ यथेष्ट सुबोध ।
लगी तर्क देने कि है रण में सुविहित क्रोध ॥१८॥
पर, अकिंचना स्वयं को कहना, अनुचित बात ।
आत्महीनता ही मुझे, इसमें तव हो ज्ञात ॥१९॥
इतनी अच्छी अग्रजा का पाकर सत्सङ्ग ।
क्यों न आत्मगौरव बढ़े हीन रहें क्यों ढङ्ग ?? ॥२०॥

९९ माण्डवी बहुत उत्तम है, पर, तुम उसकी अनुजा कहां अधम ?
उत्तमता की साधना करो, मानते हुए निज को मध्यम ॥
१०० बेटी माण्डवी ! ध्यान तुम भी इस ओर पूर्णतः दिया करो ।
अपनी अनुजा में नित्य आत्मगौरव का ऊँचा तत्व भरो ॥
१०१ तुम हो उत्तम, पर कहीं तुम्हें अभिमान हो न जावे इसका ।
यह भी रखलो पूरी-पूरी, निज गतिमति लख, सदैव चिन्ता ॥
१०२ उत्तम होने का अहंकार ज्योंही उपजे, त्यों ही विचार–
श्रद्धापूर्वक निज गुरुजन का, करके सोचो भी सदुपकार ॥
१०३ जब ऊँट लखे पर्वत को, तब ऊँचे पन का अभिमान हटे ।
मानव का भी, बस, इसी तरह, ऊपर लखने से गर्व मिटे ॥
१०४ गौरव अच्छा है, गर्व बुरा; यह भी समझो बिलकुल वैसे । ”
अच्छा है मन्यु, कुक्रोध बुरा; बतलाया अभी अभी जैसे ॥

(दोहे) इसी बीच कुछ आगया, ऐसा शासन–कार्य ।
जिससे चर्चा रोकना, हुआ तुरत अनिवार्य ।।२१।।
(केवल यही उदाहरण देना काफी जान–
सभी प्रसंगों का न हम करते कथन–विधान) ।।२२।।

१०५ इस घटना के बाद से नित्य, जब उपाध्याय जी थे आते ।
शिष्याओं के सँग ही रानी जी बैठी हैं– ऐसा थे पाते ।।
१०६ इक दिवस, पढ़ाने में प्रसङ्ग, नारी की गरिमा का आया ।
जिस पर गुरुवर ने महिला का गौरव तीनों को समझाया ।।
१०७ बोले कि "सुयुग की निर्मात्री है मातृशक्ति ही तो होती ।
वनिता रूपी सीपी से ही मिल पाते चमकदार मोती ।।
१०८ अर्थात् वे प्रभामय, पावन संचित सुकर्म वाले चेतन–
बालक अथवा बालिका, रहे जिनका तन तो केवल साधन ।।
१०९ आत्मा नामक मोती सब में यकसाँ होता है, सच मानो ।
नर या नारी के चोले में जो चिति है, उसको पहचानो ।।
११० वह चिति आत्मा किंवाचेतन आवे जग में जिनके द्वारा –
वे मातृस्वरूपा नारी ही, पूजे न उन्हें, सो मतिमारा ।।
१११ हैं ज्ञानी, बली विदेहराज, उनकी माताजी के ही सुत ।
अपने राजा कुशध्वज भी तो उस जननी के सुत योग्य बहुत ।।
११२ अच्छे से अच्छे मनुजों को जननी ही श्रेष्ठ बनाती है ।
यदि वह न ध्यान दे पावे तो सन्तति अनार्य बन जाती है ।।
११३ अच्छों में श्रेष्ठ 'अश्वपति' की आगई अचानक मुझे याद ।
गूंजेगा युग युग तक जिनका विश्वास प्रपूरित महानाद ।।
११४ थोड़े से में बतलाता हूँ उस भव्यघोष की बात यहाँ ।
विस्तार सहित सब कहने का अवकाश ही भला मुझे कहाँ ??
११५ वे कैकय देश के नृपतिवर, सत्संगपरायण, शुचि ज्ञानी ।
कुछ भी न रहेगी अतिशयोक्ति यदि कहुँ उन्हें मैं लासानी ।।◈

◈ प्रिय छंद क्र, १८ की पाद टिप्पणी यहां भी (तथा ऐसे ही अन्य उर्दू आदि के शब्दों पर) लागू समझें । (आ. प्र.)

११६ शासक भी उच्च कोटि के हैं, निज प्रजा के सतत हितकारी।
जनता के वे अतिशय प्रिय हैं, सारी जनता उनको प्यारी ॥
११७ कतिपय वेदज्ञों ने उनका आतिथ्य जब नहीं ग्रहण किया।
' राजा का अन्न, दोषयुत ही रहता है '– ऐसा तर्क दिया ॥
११८ तब, पूर्ण आत्म विश्वासयुक्त शब्दों में कहा अश्वपति ने–
(उन ब्रह्मज्ञान वाले जनप्रिय उत्तम नरेश, केकय पति ने ॥)
११९ बोले कि "नहीं मम जनपद में कोई भी चोर मिल सकेगा।
कोई अनार्य भी नहीं कहीं (अथवा अनुदार) दिख सकेगा ॥
१२० सब आहिताग्नि हैं नारीनर किया करते हैं देव यज्ञ।
अविवेकी बिल्कुल नहीं बल्कि मेरे शासित, अधिकांश विज्ञ ॥
१२१ स्वैरी या व्यभिचारी कोई जन पुरुष नहीं मम शासन में ॥
तब कैसे हो स्वैरिणी भला ! पूरी प्रतीति मेरे मन में ॥
१२२ चाहें तो आप जांच करलें, मेरा निकलेगा सत्य कथन।
है मुझे आत्मगौरव इसका, जन–सेवा ही तो मेरा धन ॥"
१२३ इतना सुनते ही विप्रों ने आतिथ्य तुरत स्वीकार किया।
उत्तम शासन पर 'साधु-साधु' कह धन्यवाद बहुबार दिया ॥
१२४ ऐसे महान कैकय नरेश, उनकी माता के आभारी।
कहते हैं श्रद्धापूर्वक वे–'जननी को हो सुकृता सारी ।'

(दोहा) सुनते-सुनते माण्डवी, बोल उठी तत्काल।
"भगवन् ! महिलावर्ग की है क्या नहीं मिसाल ??॥२३॥

१२५ नारी के चोले में कोई चेतन–मोती, सुज्योति वाला–
क्या ऐसा चमकीला न हुआ जिसने हो निज प्रकाश डाला" ॥
१२६ गुरुवर के पहले बोल उठीं रानी जी, सहसा इस प्रकार।
"बेटी ! क्यों भूल गयीं सुलभा देवी के बौद्धिक चमत्कार ॥
१२७ मिथिला की धर्म सभाओं में शास्त्रार्थ जिन्होंने कर अनेक–
अच्छे अच्छों को विवश किया इतना कि शीशदें स्वयं टेक ॥
१२८ क्या नहीं याद वे रहीं बड़ी प्रज्ञावाली विदुषी गार्गी।
है जिज्ञासापरायणा जो, चेतन जिनका वैदिक मार्गी ॥

१२९ अनसूया जी भी विख्याता सिद्धा वास्तव में आर्या।
सुप्रसिद्ध अत्रि नामक ऋषि की जो गौरवमयी शिवा भार्या॥
१३० फिर, विदेह पत्नी, जो मेरी जेठानी हैं, तव ताई जी–
उनकी सुयोग्यता और श्रेष्ठता कब जा सके भुलाई ही॥
१३१ मैं तथा तुम उभय, इन सबसे होंगी हो भलीभाँति परिचित।
यह सोच, न कोई सन्नारी, गुरुवर से हो पाई वर्णित॥"
१३२ इतना सुनकर श्रुति कीर्ति लगी कहने कि मुझे तो, माताजी!
इच्छा हो रही कि सुनूँ कथा, क्षत्रिया सुवीरा सबला की॥
१३३ ये जितनी कहीं आपने हैं. सबकी सब शुभ विज्ञानवती।
पर. क्या कोई न कहीं ऐसी, जो हो रणचतुरा, शक्तिमती॥
१३४ दीदी का भी आशय शायद है यही, पूछने में सवाल।
सबला विदुषी महिला की हैं सुनना पसन्द करतीं मिसाल॥
१३५ सुलभा, अनसूया जी, गार्गी, ताई जी एवं स्वयं आप–
हम दोनों को विस्मृता बनें कैसे जब सब का यश अमाप??
१३६ पर. यहाँ सुना बहुधा कि हुआ करती है नारी तो अबला।
सो कथा उसी की हम सुनना चाहें जो हो सबला, प्रबला॥"
१३७ बोली तो नहीं किन्तु मुद्रा द्वारा माण्डवी हुई सहमत।
लगता था, मानो कहती हो-'मम भाव यही था शत प्रतिशत॥'
१३८ हँसकर तब उपाध्याय बोले "बेटी माण्डवी! बीच में ही–
तुमने कर दिया सवाल, अन्यथा कहने वाला था मैं भी॥
१३९ रानी जी का अनुमान ठीक है यह कि विदुषियों का वर्णन–
तुम तीनों के प्रति क्या करना, यह विचारता था मेरा मन॥
१४० प्यारी पुत्री श्रुतिकीर्ति! बहुत उज्जवल ही तुमने कर डाली।
मुद्रा द्वारा भगिनी की भी है त्वरित मौन सम्पत्ति पा ली॥
१४१ इससे, तुम दोनों बहनों की उत्सुकता हुई प्रकट मुझ पर।
वैसे तो मैं स्वयमेव चाहता था कहना चारित्र्य प्रखर॥
१४२ जिन भूप अश्वपति का थोड़ा वर्णन मैं अभी कर चुका हूँ।
उनकी ही सबला कन्या की अब चारु चरित्र सुनाता हूँ॥

(दोहे) क्या है असली नाम, यह मुझे नहीं परिज्ञात।
'कैकेयी' अभिधान ही सब में है प्रख्यात ॥२४॥

हुआ प्रसिद्ध स्वभावतः यही बना अभिराम–
कैकय भूपति की सुता होने से शुभ नाम। २५॥

है वह अनिन्द्य सुन्दरी, विद्या में भरपूर।
भ्राता उसका युधाजित् बड़ा विवेकी, शूर ॥२६॥

१४३ वह स्वयं सुवीरा है, उसमें उत्साह, समर के लिये बहुत।
पत्नी स्वरूप में यह प्रसंग, उसके जीवन का, जन-विश्रुत ॥
१४४ अवधेश, वीर दशरथ जी की तीसरी हुई जब वह भार्या।
तब पति परायणा रह, उनकी रक्षा तत्परा बनी आर्या ॥
१४५ इतनी कि साथ ही रण में भी वह गई स्वभर्त्ता-रक्षण-हित।
आचरण वहाँ जाकर उसने सर्वथा किया सद्वीरोचित ॥
१४६ देवासुर–महायुद्ध में जब करने देवों की सहायता–
पहुँचे थे दशरथ, बस, तब की यह बड़ी साहसिक है घटना ॥
१४७ रथनाभि की गिरी कहीं कील रण क्षेत्र मध्य, अनजाने ही।
केवल विचक्षणा कैकेयी इस त्रुटि को वहां देख पायी ॥
१४८ पर, वह घबरायी नहीं, आत्म रक्षा का रखा न तनिक ध्यान।
कील की जगह तर्जनी धरी, कष्ट का न कुछ भी किया भान ॥
१४९ देवों को विजयी करके जब रण से दशरथ लौटने लगे।
तब देखी लहूलुहान, प्रिया की अँगुली, वे रह गये ठगे ॥
१५० लोकोत्तर, अहा, समर्पण यह कैकेयी का सचमुच अनुपम।
वीरतायुता वनिताओं के जीवन चरितों में अत्युत्तम ॥
१५१ कैकेयी की माता जी भी होंगी अवश्य ही सुशिक्षिता।
जिनके द्वारा मिल सकी उन्हें सत्कीर्ति दायिनी शुचि शिक्षा ॥
१५२ अब वे भी हैं माता, उनके सुत का शुभनाम 'भरत' पावन।
बल, ज्ञान, स्नेह; तीनों में है आदर्श रूप जिनका जीवन ॥
१५३ रानी जी ! यह कहते-कहते, मेरी चिति में जो उठा भाव–
है अभी, अचानक; उसे प्रकट करता हूँ, क्यों रक्खूँ दुराव ॥

(दोहे) बनें माँडवी की अगर कैकेयी जी सास ।
तो मानों इन सुगुण में इसका नित हो वास ।।२७।।

उनके सुत श्री भरत जी हों इसके पति देव ।
ऐसी बड़ी कृपा करें शीघ्र विश्व पति देव ।।२८।।

मन चैतन को हो रही, सहसा यही प्रतीति ।
'भरत–माण्डवी में जमे वैवाहिक संप्रीति' ।।२९।।"

१५४ सुनते रहने की इच्छाथी पर चली गयी माण्डवी तुरत ।
उसके उर में गूँजता रहा अविराम, नाम एकही–'भरत' ।।
१५५ हो गया समय भी था पूरा, सो पीछे हो श्रुति कीर्ति गई ।
दीदी की छेड़छाड़ को अब थी पाई उसने बात नई ।।
१५६ रानी बोलीं कि "विदेहप्रिया जेठानी जी का आत्मा× तो–
इससे बढ़कर कहता है, फिर जो हो स्वीकृत परमात्मा को ।।
१५७ 'सीता, उर्मिला सहित चारों कन्याएँ साथ रह सकेंगी' ।
ऐसा कहता उनका चेतन, जिस पर पूरी प्रतीति उनकी ।।"
१५८ जाते जाते यों उपाध्याय बोले कि "अशक्य नहीं यह भी ।
राजा दशरथ के चार पुत्र, तीनों रानी से हैं सु–व्रती ।।
१५९ कौसल्या से श्री रामचन्द्र, कैकेयी से हैं भरत, अहो ।
लक्ष्मण, शत्रुघ्न; सुमित्रा से; आपको कदाचित् विदित न हो ।।
१६० ओङ्कार कृपा यदि करदें तो कुछ भी हो सकता चाहे जब ।
उसके विधान का पूर्णज्ञान हो पावे भला किसी को कब ??
१६१ दूजे दिन, उपाध्याय आकर निज आसन पर बैठे ज्योंहीं ।
माण्डवी लगी पूछने वेद मंत्राशय इस प्रकार, त्योंही ।।
१६२ बोलों कि "हे गुरो ! मुझे ऋचा जो रुचता है, वह समझावें ।
जिसका प्रारम्भ–"तमीलत" से होता है, उसको अर्थावें ।।

× यद्यपि हिन्दी में संस्कृत के तत्सम शब्दों को स्त्री लिंग में प्रयोग करने का प्रचलन तथापि हमने यथा संभव 'आत्मा' 'सामर्थ्य' 'समाज' आदि को पुल्लिंग में ही प्रयुक्त किया है । ("ओ. प्र.")

१६३ ऋग्वेद संहिता के अष्टक पहले का सप्तम समध्याय।
तीसरे वर्ग में उसके, यह तीसरा मंत्र ∅ जो मुझे भाय॥
१६४ कल आप गये तब अकस्मात् मेरे पढ़ने में यह आया।
समझी तो बिल्कुल नहीं किन्तु क्या जानूँ क्यों अतिशय भाया॥"
१६५ यों कह, पुस्तक सम्मुख रख दी, इनमें आईं रानी जीं।
फिर आ पहुंची श्रुतिकीर्ति वहाँ; इन दोनों को थी देर हुई॥
१६६ गुरुवर से कहा माण्डवी ने जो कुछ, वह ये सुन सकीं नहीं॥
इसलिये न जानी पृष्ठभूमि, केवल सुनतो मन्त्रार्थ रहीं॥
१६७ 'भरतम्' आया जब शब्द, तभी श्रुतिकीर्ति जरा मुसकुरा उठी।
बोली कि "बताया गुरुवर ने यह मन्त्र तुम्हें अच्छा; दीदी॥"
१६८ इस पर श्री उपाध्याय जी ने ज्यों का त्यों बतलाया सारा।
(कैसे क्या कहा माण्डवी ने जो तुरत उन्होंने स्वीकारा।)
१६९ कुछ लजा गई अग्रजा किन्तु रस लेकर सुनती रही अर्थ।
हृदयङ्गम जिसे करायाये विज्ञानी वे द्विजवर समर्थ॥
१७० विशेष 'भरत' का और 'तम्ईळ' का ही आशय किया ग्रहण।
इनमें से भी पहले पर ही माण्डवी का रहा आकर्षण॥
१७१ 'तम्' वा 'उसका' 'ईळत' किंवा 'संस्तुत' मनुजों! सदैव करलो।
'भरतम्' या 'सबके भर्ता को' श्रद्धापूर्वक उर से वर लो॥
१७२ है विश्व का भरण पोषण जो करता, वह शिव ओङ्कार नाथ—
शुभनाम 'भरत' भी उसका ही, अगणित नामों के साथ साथ॥"
(दोहे) इसी तरह का अर्थ कह, बोले यों द्विजराज।
" शिक्षण का पूरा हुआ, समय इसी में आज॥३०॥
भक्तियुक्त यह मन्त्र है, धरो अर्थ पर ध्यान।
तुम तीनों खोजो सतत, इसमें वर विज्ञान॥३१॥
१७३ कल से, पहले-सी ही शिक्षा चलती रह लेगी क्रम पूर्वक।
आ गया बीच में अनायास था यह पावन उत्तम क्षेपक॥"

∅ ऋग्वेद-संहिता के प्रथम अष्टक के सप्तम अध्याय में तीसरे वर्ग का यह तीसरा मंत्र है, ऐसा आशय है। (" ओ. प्र.")

१७४ जाने को ही थे उपाध्याय, इतने में बोलीं रानी जी -
" हे भगवन् ! कृपया कहें व्यवस्था, वेद विहित शुभनामों की ॥
१७५ यानी, वैदिक शब्दों को ले, जो होते जग में नामकरण—
उनका रहता क्या अभिप्राय, थोड़ा इसका देदें विवरण ॥"
१७६ द्विजवर ने कहा कि "रानी जी ! आपकी रही अच्छी पृच्छा।
मेरी भी इसके बारे में कहने की थी पक्की इच्छा ॥
१७७ हो चुका समय था, इसी लिये मैंने छेड़ी यह बात नहीं।
पर अबतो हूँ बतलाता ही, जब आप स्वयं यह पूछ रहीं ॥"
१७८ श्रुतिकीर्ति उठगई क्योंकि समय, शिक्षण का, पूर्ण हो चुका था
पर बैठी रहीं माण्डवी, ले उत्तर सुनने की अभिलाषा ॥
१७९ कल चली गई थी किन्तु आज उत्सुकता उर में, थी भारी।
स्वयमेव पूछना चाह रही थी यही प्रश्न वह सुकुमारी ॥
१८० उन दोनों माँ बेटी को लख, गुरुदेव कुछ क्षणों मौन रहे।
फिर प्रामाणिक शुभवचन उन्होंने उत्तर में इस भाँति कहे ॥

(दोहे) " वेदों में से छाँटकर, कोई उत्तम नाम।
रखते हैं माता पिता, बन आकांक्षा धाम ॥३२।

वह गुण, प्रभु परमेश का; शिशु में हो सु–प्रविष्ट।
उनका ऐसे नाम से, रहता है यह इष्ट ॥३३॥

१८ 'शिव' 'ब्रह्मा' 'रुद्र' 'विष्णु' 'शंकर' या 'वसिष्ठ' प्रभृति नाम सारे
केवल इस अभिलाषा से ही थे रखे गये न्यारे न्यारे ॥
१८२ बचपन में अभिभावक भरते हैं यथा नाम, गुण बालक में।
होकर वयस्क, सोचता स्वयं- 'भरसक सत्साधक बनलूँ मैं ॥'
१८३ 'साधना करूं' ऐसी कि नाम सार्थक बन सके यथा सम्भव।'
यह विचार करके, शुभाचारधारी बन, वह पावे गौरव ॥
१८४ परमात्मा तो कोई न कभी हो सका, न होगा ही कदापि।
गुण, यथानाम, कर सके मनुज कुछ अपने में धारण, तथापि ॥
१८५ 'शिव' में परमेश्वर का शिवत्व नामक गुण यथा साध्य आवे।

है उचित यही कि 'विष्णु' संज्ञक, भरसक जनता में रम जावे ॥

१८६ ऐसे ही, जिनने धरें नाम, वेदों में से चुन शब्द अहो ।
उनके नामी जो मानव हों, उनसे उसके विपरीत न हो ।।
१८७ वेदों में कहीं 'राम' तो है प्रभुवर का नाम नहीं आया ।
पर 'भरत' उसी मन्त्रान्तर्गत है आज खूब जो समझाया ।।
१८८ दशरथ—कैकेमी ने अपने सुत का यह नाम रखा पावन ।
शायद लख यही पावनी श्रुति, है भाव कि जिसका शुभ शोभन ।।
१८९ पितु मातु और गुरु वसिष्ठ ने बचपन में रखकर पूर्ण ध्यान ।
गुण, यथानास ही भरे तथा अब स्वयं भरत भी सावधान ।।
१९० अवकाश नहीं, अन्यथा ज्ञात जो कुछ है वह मैं बतलाता ।
वैदिक नामों के महत्व को इस उदाहरण से जतलाता ।।"
१९१ इतना कहकर द्विजराज उठे, अभिवन्दित हो प्रस्थान किया ।
माण्डवी, अतृप्ता इच्छा ले, रह गई, न पूरा भरा हिया ।।
४९२ ऐसा अवसर फिर कभी नहीं आया कि भरत के गुण वर्णन—
गुरुवर कर दें यों अनायास जैसा कर पाये थे इस दिन ।।
१९३ बहुधा माण्डवी 'तमीलत'—युत उस वेदमन्त्र को थी गाती ।
जिसमें 'भरतम्' का उच्चारण करके थी बड़ा तोष पाती ।।
१९४ सन्ध्योपासन के बाद, नित्य उर में ही प्रभु से थी कहती—
"गुरुवर का हो शुभकथन सही, ओंकार! कृपा कर दो महती ।।
(दोहे) मेरे भर्त्ता हों भरत, ऐसा दो वरदान ।
विनय करूँ तुमसे यही, सुन लो दयानिधान ।।३४।।
चिति मेरा, बरबस खिंचे जिन अदृष्ट की ओर—
दे दो उनके हाथ में अब मम जीवन—डोर ।।३५।।

सेवाऽऽरम्भ (तृतीय–प्रकरण)

१९५ सबला कैकेयी का जबसे गुरुवर्णित चरित्र सुनपाया ।
तबसे न माण्डवी को अबला नारी लखना बिल्कुल भाया ।।
१९६ सांकाश्यपुरी में घूमघूम, कन्याओं में नवजीवन-सा—
वह भरने लगी, दूर करके मारक विष, आत्मविस्मरण का ।।

१९७ श्रुतिकीर्ति का, मिला इसमें तो पूरा पूरा सहयोग उसे।
पर, कहती थी कि 'ज्ञान-वन में, उँह, कौन तुम्हारे सँग भटके'॥
१९८ उसके लेखे, जनसेवा का पथ सचमुच राजमार्ग उत्तम–
जिस पर चलने में होता था आनंद उसे अनुभव अनुपम॥
१९९ इसलिए अग्रजा ने उसके सम्मुख प्रस्ताव रखा ज्योंही।
सोत्साह, मोदपूर्वक अनुजा सन्नद्धा सरुचि हुई त्योंही॥
२०० दोनों बहिनें, बालाओं को बलवती बनाने के प्रयत्न–
करने लग पड़ीं ताकि नारी त्यों चमकें ज्यों हों भव्य रत्न॥
२०१ 'अबलापन का अभिशाप मिटे' 'महिला सबला मानी जावें'।
'अपने महत्व को पहचानें' 'उन्नतिशीला जानी जावें॥'
२०२ ये कतिपय दिये नये नारे जो आत्महीनता करें परे।
नारी–समाज में घुसघुस कर दोनों ने निर्भय भाव भरे॥
२०३ बाला–शालाएं खुलवायीं जिनमें व्यायाम कक्ष भी थे।
शिक्षिका सुमहिलाओं के दल शिक्षण में पूर्ण दक्ष ही थे॥
२०४ श्रद्धेय पिताजी से कहकर साहाय्य, राज्य का दिलवाया।
वनिताओं को सैनिक शिक्षा देने का विभाग खुलवाया॥
२०५ बौद्धिक संस्तर भी ऊंचा हो, इस हेतु बनायी जो संस्था–
उसका विवेकपूर्वक 'महिला वाक् वर्द्धिनी सभा' नाम रखा॥
२०६ साप्ताहिक अधिवेशन उसके, आयोजित, राजमहल में ही।
सर्वदा लगे होने, जिनकी अध्यक्षा रहतीं रानी जी॥
२०७ सुख दुःख में पहुंचकर घर घर आत्मीय भाव थीं जतलाती।
(केवल वाचिक न सहानुभूति दोनों वहनें थीं बतलाती॥
२०८ 'कहना कम, करना अधिक' यही सिद्धान्त उभय को था प्यारा
उद्धार का थीं करती अविरल निश्छल सेवा द्वारा।
२०९ यद्यपि माण्डवी कुमारी की ज्ञानार्जन में थी रुचि, तथापि–
त्रुटि आने दी न तनिक उसने सेवा-सुकार्य में भी कदापि॥
(दोहे) बल्कि बराबर ही किया अनुजा के सँग काम।
मानो उनके ही बने, राज्य के सभी धाम॥३६॥
आधे आधे भाग का, लिया उभय ने भार।
सारे पुर में यों किया, सुधार का संचार॥३७॥

इसके सिवाय माण्डवी, पितृदेव का हाथ–
शासन में थी बँटाती, रह उनके भी साथ ॥३८॥

२१० उसमें ऐसी थी सूझबूझ, मन्त्रीगण भी लखकर जिसको–
विस्मित रह जाते थे, वैसी चतुरा कह पाते भी किसको ??

२११ सचमुच उपमा-रहिता हो थी माण्डवी, मण्डिता, महिमा से।
भण्डार भरे उसके भीतर हों मानों गुण की गरिमा के ॥

२१२ नृप कुशध्वज उससे परामर्श यों लेते थे ज्यों वह कुमार।
नारी तन में उनको उसका चेतन लगता था नर–उदार ॥

२१३ वे क्योंकि जानते थे रहस्य वैदिक, है इस बारे में जो–
'आत्मा तो सबका है यकसाँ, चोला चाहे जो धारे हो ॥'

२१४ जिसका है नाम, रूप, कुशध्वज, उसमें आत्मा संस्थित जैसा ॥
माण्डवी नामिका दुहिता के तनपिंजर में भी शुक वैसा ॥

२१५ जीवों के ही कर्मानुसार शिव अपनी न्याय–व्यवस्था से–
नर या नारी के चोले में अच्छी या बुरी अवस्था दे ॥

२१६ तन के यकसाँ होने पर भी ज्यों दुबले–तगड़े, कृष्ण–गौर।
दिखते हैं महिला–पुरुष सभी, रह लें विभिन्न हों तर्ज तौर ॥

२१७ त्यों चेतन हैं सबके इक-से, फिर भी ऊंचे नीचे का तो–
अन्तर, कर की अँगुलियों-तुल्य दिखता है, क्यों न भिन्नता हो ?

२१८ माण्डवी भले ही अब लड़की बनकर आयी मुझ कुशध्वज की।
पर निज उच्चता कहां, कैसे खो सकती सुभगा चिति उसकी ॥

२१९ स्वाध्यायशील सुविवेकी थे, सो लखा माण्डवी का महत्व।
यद्यापि सामान्य मनुज से यह ग्राह्य है नहीं अध्यात्म-तत्व ॥

२२० वे थे विदेह के अनुज तथा उतम संस्कारी मानव भी।
इसलिए परख पाये पुत्री माण्डवी में निहित रत्न सभी ॥

२२१ राजा से आदर पाकर भी छू सका न उसको अहंकार।
दम्भादि नहीं बिल्कुल पनपे उसके भीतर कोई विकार ॥

(दोहे) नृपवर से जब सत्कृता, हुई अनेकों बार।
सुता माण्डवी पूर्णतः एवम् विविध प्रकार ॥३९॥
प्रजाजनों ने तब दिया, उसे अधिक सम्मान।
उसकी बातों पर लगे, पूरा देने ध्यान ॥४०॥

२२२ पहले, बालिका समझकर ही थे सुनी-अनसुनी कर देते ।
उसकी सम्मति–पतवारों से जीवन की नाव न थे खेते ॥
२२३ कन्या के कन्धों पर मस्तक है प्रौढ़ा का, यह अब जाना ।
लख अपने भूपति का वर्तन, वास्तविक तत्त्व को पहचाना ॥
२२४ रुचि आध्यात्मिक सुसाधना में नृपवर की थी सर्वाधिक ही ।
इस कारण उनकी राजकाज में सावधानता न्यून रही ॥
२२५ फलतः न प्रजा का समुन्नयन हो पाता था अच्छे प्रकार ।
वे दूर नहीं कर पाये थे पिछले शासन के सब विकार ॥
२२६ उनके अग्रज में थी क्षमता, ज्ञानी–कर्मी रह सकने की ।
पर इनके जीवन में वैसी कर्मठता की थी बड़ी कमी ॥
२२७ मिथिला की बात निराली थी, सचिवादि जहां के थे उत्तम ।
सो, वहां न्यून कर्मठता भी काफी थी क्योंकि जमा था क्रम ॥
(दोहे) यहां निरंकुश था नृपति, अहंकार का धाम ।
किया प्रजा की प्रगति का उसने कब कुछ काम ??॥४१॥
विलासिता में लिप्त रह, दोष-पाप के पूर्व–
समारोह से मनाया करता था, रख गर्व ॥४२॥
राज्य-कोष इस भांति जब, था हो जाता रिक्त ।
कर-निर्धारण वह किया करता था अतिरिक्त ॥४३॥
२२८ थे चाटुकार स्वार्थाजन जो, वे ठकुरसुहाती कहकह कर–
बन बैठ थे राजा के प्रिय, जिम्मेदारी खुद गहगह कर ॥
२२९ शासन उनके ही सुपुर्द कर वह नृप विलास में डूबा था ।
सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति उसके कुराज्य से ऊबा था ॥
२३० मुँहलगे मुसाहिब, मंत्री बन, करते नियुक्त जो अधिकारी –
वे क्यों न कुटिल व्यवहारशील रहकर होते भ्रष्टाचारी ??
२३१ सौभाग्य, प्रजा का, उदित हुआ जो मारा गया दुष्ट राजा ।
अन्धेरपुरी में जिसकी, थे 'सब टके सेर, भाजी–खाजा' ॥
२३२ पर, केवल नृप के वध से हो शासन का तन्त्र कहां बदला ?
वह कहां स्वच्छ स्वयमेव बना जो पानी था मैला, गँदला ॥
२३३ माण्डवी यतः आधेपुर में घर घर पहुंची थी कई बार ।
शेषार्द्ध में गई थी उसकी अनुजा, ले सेवा–कार्य–भार ॥

२३४ निज निज कटु अनुभव दोनों ही आपस में नित्य सुनाती थीं।
संत्रस्त प्रजा के सौख्य हेतु योजना अनेक बनाती थीं ।।
२३५ फिर गुरुवर के घर पहुँच उन्हें योजना स-कारण बतलातीं।
शुचि राजधर्म के प्रकाश में उनसे मगदिग्दर्शन पातीं ।।
२३६ तदनन्तर वे माताजो से लेती थीं पावन परामर्श।
इसमें न दुराग्रह कर पाया माण्डवी को कहीं कभी स्पर्श ।।
२३७ योजना समर्थित इस प्रकार कोई भी जब थी हो जाती।
केवल तब ही श्रद्धेय पिताजी के समक्ष वह आ पाती ।।
२३८ माण्डवी अकेली ही चर्चा करती उस बारे में नृप से।
उनको भी पसन्द आने पर पूछती राय मन्त्रीगण से ।।
(दोहे) सबसे पीछे, सभा में करके उसको पेश–
बतलाती थी पूर्णतः जनता के सब क्लेश ।।४४।।
स्वीकृत होने के लिए देती उत्तम युक्ति।
(किन्तु कभी करती न थी कोई भी अत्युक्ति) ।।४५।।
२३९ भाषण इतना प्रभावशाली देती थी पक्ष समर्थन में–
जिससे कि बात घर कर लेता प्रत्येक सभासद के मन में ।।
२४० योजना सभी स्वीकृत होती रहती थीं सबकी सम्मति से।
(होने पाई एक भी नहीं अंगीकृत केवल बहुमति से ।।)
२४१ स्वीकृति के बाद, क्रियान्विति का रखती था पूरा ध्यान सदा।
प्र-स्थल पर पहुँच-पहुँच कर भी लखतीं रहती थी यदा कदा ।।
२४२ जब दण्डनीय पाया जाता था कोई शासनाधिकारी–
तब न्यायपालिका द्वारा थी दिलवाती उसे दण्ड भारी ।।
२४३ पर, कोई भी निर्दोष नहीं दण्डित हो जावे–इसकी नित–
पूरी सतर्कता रखती थी, साधन प्रयुक्त कर नीति–विहित ।।
२४४ [सर्वोपरि महत्व की जो थी योजना, उसी का हम वर्णन–
संक्षिप्त रूप में करते हैं, (सबका तो कैसे करें कथन ।।)]
२४५ मन्वादिक-निर्मित विधान का भरपूर सहारा ले उत्तम।
राजात्मक-प्रजातन्त्र पद्धति अपनाने हेतु किया उपक्रम ।।
२४६ मिथिला की शासन-परिपाटी प्रतिबिम्बित जिसमें रही अधिक।
ऐसी आदर्श योजना का निर्माण किया अति प्रामाणिक ।।

२४७ शासन, स्वायत्त हो प्रजा के, यह पूरा ध्यान रखा उसने।
स्वीकृति से पूर्व पसन्द किया इस शुभायोजना को सबने ॥
२४८ ज्योंही यह अंगीकृता सर्वसम्मति से हुई, सभा द्वारा–
त्योंही बँट गया नरेशप्रवर कुशध्वज का बड़ा भार सारा ॥
२४९ इसका सब श्रेय, माण्डवी को होने से, धन्यवाद उसको।
नृपसहित सभा ने दिया, विनय से उसने ग्रहण किया जिसको
२५० हार्दिक संतोष उसे यह था– "मैं यहां न रह पाऊंगी जब,
होगा न कष्ट श्रद्धेय पिताजी को एवं जनता को तब ॥
२५१ रख साधारणतः निगरानी, वे चला सकेंगे निज शासन।
केवल नेता रह लेंगे नृप, आपस में प्रजा करे पालन ॥
२५२ अधिकांश व्यवस्था करने का था उत्तरदायी, नगर-निगम।
स्वल्पांश जो रहा कार्य-भार, थे उसके भी वहनार्थ नियम ॥
२५३ सत्ता न एक में थी केन्द्रित, फिर भी न विकेन्द्रित पूर्णतया।
नृप और सभा में सदा परस्पर-तन्त्र-भाव शुचि वैदिक था ॥
२५४ पिछले शासन की विकृति सभी थोड़े ही दिन में हुई दूर।
जनकष्टों की भीषण-कारा हो गयी सर्वथा चूर चूर ॥
२५५ इसमें जिनका सहयोग मिला, उन सारे ही नारीनर को।
दिलवाया नृप से पुरस्कार माण्डवी ने बहुत कृतज्ञ हो ॥
२५६ श्रुतिकीर्ति को बड़ा विस्मय था इस पर कि माण्डवी दीदी ने-
कब कैसे ग्रहण कहाँ से कीं बातें सब राजनीति की, ये ??
२५७ " हैं पूर्वजन्म के ही उत्तम संस्कार, उदित हो पाये जो–"
गुरुवर से पूछ, किया ऐसा निश्चय, तब तोष हुआ उसको ॥
२५८ थी सुता माण्डवी, पर उसने सुत-सम पूरा सहयोग दिया।
जिससे राजा सुत विहीनता अपनी, बिलकुल ही भूल गया ॥
२५९ बैठती सभा में थी जब वह, तब कुमार–सा करके वर्तन–
आश्चर्यित करती थी सब को, लगता था दृश्य बहुत शोभन ॥
२६० उस बेला में नारी के ही कल्याण की नहीं बात कभी–
उसके मन तक में उठ पाती, रहते थे पुरजन इष्ट सभी ॥
२६१ महिलाओं को सैनिक शिक्षण देना अनिवार्य किया जैसे।
पुरुषों को भी वह देने का वैधानिक नियम रखा वैसे ॥

२६२ नारियों-तुल्य ही नरगण के व्यायाम-प्रेम को प्रोत्साहन–
समुचित प्रकार से दिया, जुटाकर सभी अपेक्षित शुभसाधन ॥
२६३ ज्यों 'महिला वाग्वर्द्धिनी सभा' वनितोन्नति-हेतु बनी उत्तम ।
त्यों 'भाषण-प्रोत्साहकमंडल' पुरुषों के लिए बना अनुपम ॥
२६४ उसके साप्ताहिक अधिवेशन रानीजी से ज्यों संचालित –
होते रहते थे इसके त्यों बनते थे इसके नृपवर से चालित ॥
२६५ माण्डवी, उभय आयोजन में, करती थी मन्त्री का सु-कार्य–
सबको लगता था दोनों में उसका रहना तो अपरिहार्य ॥
२६६ 'पुरजनविहार' भी बनवाया लम्बा चौड़ा अतिशय सुन्दर ।
सबके हितार्थ उसने, अपने श्रद्धेय पिताजी से कहकर ॥
२६७ उसमें पुरुषों, महिलाओं के सुविधा-संपन्न सुकक्ष अलग ।
बालाओं तथा बालकों हित उद्यान भी रखे वहां सुभग ॥
२६८ सांस्कृतिक चेतना जाग्रत कर जन-जन का सरस किया जीवन ।
नाटक नृत्यादि विधाओं को नृप से दिलवाया प्रोत्साहन ॥
२६९ साहित्य, कला, विज्ञान, धर्म, संगीत सुसाधक नर नारी–
निजनिज योग्यतानुसार बने शुभ पुरस्कार के अधिकारी ।,

(दोहे) इन सब में भी माण्डवी, रखती थी सु–महत्व–
क्योंकि सभी के थे उसे, विदित आन्तरिक तत्व ॥४६॥
अति विलक्षण बुद्धि थी उसमें, एवम् भाव–
थे आर्योचित जो सदा रखते भव्य प्रभाव ॥४७॥

२७० इतना सब कुछ करते पर भी विस्मरण कभी परमेश्वर का–
हो पाता न था अपितु प्रतिपल चिन्तन था मानो विभुवर का ॥
२७१ प्रातः सायं तो वेद-विदित सन्ध्या ऽग्निहोत्र वह करती थी ।
पर शेष समय में वेदाज्ञा–पालन का पथ अनुसरती थी ॥
२७२ विश्वास था उसे पक्का ही जो प्रतिदिन बनता था दृढ़तर ।
ऐसा कि 'रीझता है श्रुति की आज्ञा के पालन से ईश्वर ॥'
२७३ शुचिमन्त्र 'तमीळत' शुभारम्भ वाला 'भरतं' संयुत उत्तम–
रह रह गूँजता हृदय में था, हो चाहे किसी कार्य का क्रम ॥
२७४ माण्डवी सोचती थी यह भी प्रायः कि भरत जी की भार्या–
ओङ्कार बनादे मुझे, विनय इस निमित्त है कैसे कार्या ॥

२७५ फिर मन ही मन कर लेती थी निश्चय कि नाम करने सार्थक-
जैसे वे करते हों सुकर्म, वैसे मैं भी करलूँ भरसक ॥
२७६ अन्यथा वन सकूँगी ऐसी सहचरी भला मैं किस प्रकार-
जो अर्द्धाङ्गिनी कहाने का पूरा ही रखले समधिकार ??
२७७ है 'भरत' नाम से जितने गुण, परमेश्वर के, होते वर्णित-
उनमें से यथा शक्ति करते होंगे श्री भरतदेव धारित ॥
२७८ वे मनोनीत भर्त्ता मेरे, हैं परमेश्वर से कुछ ही कम ।
ओङ्कार से उन्हें दूजा ही मानता वस्तुतः चेतन मम ॥
(दोहा)-इसी भाँति के भाण्डतो, रखती थी सु-विचार ।
जिनसे प्रेरित हो, किया करती थी उपकार ॥

अनुजा को उपदेश (चतुर्थ-प्रकरण)

(दोहा)-इक दिन बोली माण्डवी, अनुजा से यों बैन ।
उसके आनन पर गड़ा, अपने दोनों नैन ॥४९॥
२७९ क्यों री श्रुत्तो ! यह तो मुझसे कह तू कि अनमनी क्यों रहती ?
पीड़ा क्या है तेरे उर में ? किस वड़े कष्ट को तू सहती ??
२८० मैं नहीं छुपाती हूँ तुझसे कुछ भी निज हिय की बात, अरी !
फिर तूने क्यों न कही अबतक जो तेरे भीतर व्यथा भरी ??
२८१ श्रुतिकीर्ति कभी गँभीर नहीं रहती थी, सदा स्मितिमयी ही-
उसकी मुखमुद्रा थी दिखती, पर आज बनी गांभीर्यमयी ॥
२८२ कह उठी कि-"दीदी ! मन मेरा एकाग्र नहीं रह पाता है ।
चेतन का शासक बना हुआ, नित उसको नाच नचाता है ॥
२८३ जब से गुरुवर ने कहा कि 'जो मन के वश में चलता चेतन-
वह पाता निचली गति, उसका सर्वथा वृथा मानव जीवन ॥
२८४ बस, तब से ही मैं आत्म निरीक्षण बहुधा करती रहती हूँ ।
'मन का अब दास न तू रह ले' यह निज चेतन से कहती हूँ ॥

२८५ पर यह तो ऐसा दास बना चंचल मन रूपी चाकर का ।
अनुभव न करे गौरव अपना, पल भर भी रहे न ठाकुर-सा ॥
२८६ पहले थी व्यर्थ समझती मैं इन आत्मा वाली बातों को ।
खिल्ली भी खूब उड़ाती थी उनकी, ये बाते करते जो ॥
२८७ पर, गुरुवर का प्रवचन सुनकर मुझ में परिवर्तन बहुत हुआ ।
तुम भी जो करो साधनाएँ, मुझपर उनका अब असर पड़ा ॥
२८८ अनमनी इसलिये रहूँ कि लखपड़ता कोई न मुझे साधन–
जिससे मेरे मन पर मेरा चेतन रखले अपना शासन ॥
२८९ परिणाम स्वरूप, मिटे मेरी व्याकुलता, जो मन उपजाता ।
सच्ची भीतरी शान्ति से हो मेरा इस जीवन में नाता ॥
२९० जब तुमने बड़े स्नेहपूर्वक मम पीड़ा पूछी है कृपया ।
तब, मेरी विचक्षणा दीदी ! अब इतनी कर दो और दया ॥
२९१ यह कहदो समझाकर कि मुझे करने हैं क्या उपाय, कैसे ?
विवरण भी उनका सब दे दो, कर लूं जो जो जैसे जैसे ॥ ”
२९२ ऐसा कह अनुजा हुई मौन, तब कहा अग्रजा ने उससे–
“अनुभूत प्रयोग बताती हूँ जो करके तू सजले सुख से ॥
२९३ मैं भी मिथिला में तुझ-सी ही बेचैन हो गई थी कुछ दिन ।
इसलिये कि मम चेतन पर भी शासन करता था मेरा मन ॥
२९४ पर, आज तुझे लखकर उदास, मैंने तुझसे पूछा जैसे ।
इक दिन दीदी सीताजी ने की थी पृच्छा मुझसे वैसे ॥
२९५ मैंने भी लगभग यही बात कहकर यह किया निवेदन था–
'ऐसा उपाय कहदो कि मिटे मेरी व्याकुलता-युता व्यथा ॥
२९६ जो कहा उन्होंने, वही तुझे अपने शब्दों में बतलाऊं ।
वैसी अच्छी शब्दावलि तो ज्यों की त्यों कैसे कहपाऊं ॥

(दोहे) उनसे जो साधन सुने उनका सतत प्रयोग–
करके जीवन्मुक्ति-सा, मैं करती सुख-भोग ॥५०॥
उस अनुभूत प्रयोग पर, श्रुत्तोधर ! तू ध्यान ।
परे न रह शुभ ज्ञान से, बल्कि बढ़ा विज्ञान ॥५१॥
कर्म तत्परा तू बहुत फिर भी है बैचेन !
ज्ञान–कर्म की साथ रत, मैं पाती हूँ चैन ॥५२॥

२९७ जैसे कि एक पहिये से ही गाड़ी चल पाती कभी नहीं ।
बस वैसे, केवल कर्म या कि है ज्ञान मात्र ही सुखद नहीं ॥
२९८ जो इन्हें समन्वित रख पावे, जीवन वह करे सफल अपना।
गुरुवर ने सत्य कहा कि 'रहे साफल्य, विना इसके, सपना ॥
२९९ मन के शासन में, कर्म अकेला ही, महत्व पाया करता ।
चेतन यदि हो शासक तव तो ज्ञानी रहना भी वह वरता ।
३०० दूजे शब्दों में, समझ अरी ! ऐसे कि जहां मन हो शासक–
वह जीवन तो श्रद्धाविहीन श्रम का ही रहता आराधक ॥
३०१ पर, चेतन करे जहाँ शासन, होता है वहाँ सुराज्य सदा ।
श्रम को अनुशासित रखे वहाँ, 'श्रद्धा कल्याणमयी वरदा ।'
३०२ जब कहूं कर्म को श्रम, तब तो सामान्य तुझे लगता होगा।
पर, ज्ञान और श्रद्धा कहना पर्याय, नहीं जुँचता होगा ॥
३०३ सो, इसका थोड़ा वर्णन सुन, फिर बतलाऊँगी वह साधन-
जिससे, तन मन पर चेतन के शासन का होवे सु-स्थापन ।
३०४ हां तो 'श्रद्धा' शब्द ही वना 'श्रत्' के 'धा' सँग जुड़पाने से।
मेरे माध्यम से दोनों के तू अर्थ, स्वमति में आने दे ॥
(दोहे) 'श्रत्' का आशय 'सत्य' है, 'धा' का 'धारण' अर्थ ।
इन्हीं उभय के जोड़ से 'श्रद्धा' शब्द, समर्थ ॥५३ ॥
सचमुच 'श्रद्धा', सत्य के धारण का ही नाम ।
जिससे जीवन वन सके, शांति–सौख्य का धाम ॥५४॥
नहीं सत्य के विना हो, श्रद्धा का अस्तित्व ।
और सत्य के लिए है, शुद्ध ज्ञान ही तत्व ॥५५॥
३०५ इस तरह, ज्ञान को श्रद्धा का पर्याय सर्वथा जानूं मैं ।
श्रद्धामय श्रम के सँग उपासन भी आवश्यक मानूं मैं ॥
३०६ जो सर्वोपरि श्रद्धास्पद है उसकी समीपता का अनुभव–
प्रातः सायं करने से ही देती उपासना शुभ–गौरव ॥

[ज्ञातव्य] { ● हमारी ही आशुरूपेण रचिता पद्यमयी स्वतन्त्र, मौलिक बृहद्काय, दार्शनिक रचना 'श्रद्धा कल्याणमयी वरदा' की ओर भी यहाँ संकेत है। (ओ० प्रे०)

३०७ सद्ज्ञानी, सत्कर्मी अवश्य हो जाता है सदुपासक भी ।
क्रमशः बढ़ते बढ़ते बनता अनिवार्यतया सद् विज्ञानी ।।
३०८ है यज्ञ, श्रेष्ठतम कर्म तथा श्रुतिविवेक है सर्वोच्च ज्ञान ।
ब्रह्मोपासन ही सर्वश्रेय, परमात्म–बोध हो सुविज्ञान ।।
६०९ मैं यज्ञ, विवेक इन उभय का; थोड़ा-सा करदूँ यहाँ कथन।
जिसके सँग सँग हो जाएगा संयमसाधन का भी वर्णन ।।
३१० है पंच महायज्ञों में से पहला जो 'ब्रह्मयज्ञ' पावन–
उसके अन्तर्गत ही आता श्रुति मन्त्र युक्त सन्ध्योपासन ।।
३११ उसमें भी प्रमुख महत्वपूर्ण है प्राणायाम--प्रक्रिया ही ।
जिसके तजने से उपासना--विधि में रहती है त्रुटि भारी ।
३१२ अनिवार्य है कि सब नारी नर संध्योपासन के संग संग–
प्राणायामों को करें, न्यूनतम तीन बार तो, रख उमंग ।।
३१३ जब प्रातः सायं तीन तीन यों विधिवत् प्राणायाम करें ।
तब कालान्तर में सत्वर ही मन की निश्चलता सहज वरें ।।
३१४ मैं तुझे सिखा दूँगी करना, कुछ ही दिन में सध भी जावे ।
यह सुसाधना तव जीवन को आनन्द सुधा से सरसावे ।।
३१५ उस प्राणायाम–प्रक्रिया से निःसंशय मन वश में आता ।
चेतन अपने शासकपन का विस्मृत गौरव फिर से पाता ।।
३१६ दीदी सीता जी ने मुझको बतलाई वह उस दिन जैसी–
मैं, बिना प्रमाद, उभय संध्या–बेला में करती हूँ वैसी ।।
३१७ तू भी यदि मम कहना माने तो मोद अनूठा पाएगी ।
यह बेचेनी तो निरी कहानी--सी बन तव रह जाएगी ।।
३१८ है ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत स्वाध्याय भी बहुत आवश्यक ।
यदि वेदों का हो तो सबसे उत्तम एवं शुभ फल दायक ।।
३१९ वेदानुकूल जो आर्षग्रन्थ, उनका स्वाध्याय गिनूँ मध्यम ।
केवल आप्तों के चरित्र ही पढ़ना सुनना, स्वाध्याय अधम ।।
३२० इन सबसे ही बढ़ता विवेक, जिस पर है श्रद्धा भी निर्भर ।
श्रम अथवा कर्म सदैव रहें अवलम्बित सच्ची श्रद्धा पर ।।

३२१ तू ये बातें सुन रही आज है यतः कदाचित् प्रथम बार।
समुचित समझूँ न अतः करना मैं इससे बढ़कर सुविस्तार॥
(दोहे)—शिक्षण लेने का समय, आने लगा समीप।
आते होंगे विप्रवर, उरधर ज्ञान–प्रदीप ॥५६॥
सुनकर ही साधन, हुई; व्याकुलता कुछ दूर।
सत्प्रयोग से लाभ तू पाएगी भरपूर॥
लो, गुरु जी आ ही गये, करके उन्हें प्रणाम–
शिक्षण लें उन देव से जो हैं विद्या–धाम" ॥५८॥
३२२ गुरुवर के जाते ही पुनरपि, श्रुतिकीर्ति ने कहे विनय-वचन-
अग्रजा माण्डवी के प्रतियों, जिनमें श्रद्धा थी सनी गहन॥
३२३ बोली कि "तृप्ति मेरी न हुई, दीदी! उतना सब सुनकर भी
'कुछ और कहो' ऐसी मेरी तुमसे है सानुरोध विनती॥
३२४ क्या निराकार ओङ्कारनाथ आनन्द रूप विभु नारायण–
उनपर भी करते कृपा कि जो करलें मन्त्रों का पारायण?
३२५ अर्थात् उन्हीं के परम ज्ञान - वेदों-- में से कर मंत्र–चयन–
जो भक्ति भाव से उच्चारण करके अर्थों पर करें मनन॥
३२६ उन सब नारी नर को भी क्या प्रभु से प्रसाद मिल पाता है?
वैदिक मंत्रों का अर्थ सहित पढ़ना, क्या फल दिलवाता है??
३२७ यदि हां, तो ऐसे प्रमुख मन्त्र कतिपय तुम अवश्य बतला दो?
उनके सँगसँग करणीय अगर कुछ हो तो वह भी जतला दो"।
३२८ सस्मित हो कहा माण्डवी ने-" श्रुत्तो! अब चस्का लगा तुझे।
उत्साह निरख तेरा, अद्भुत आनन्द, अरीं, हो रहा मुझे॥
३२९ सँप्रीति सहित मैं देती हूँ तेरी पृच्छा का अब उत्तर।
उससे भी पहले शाबासी देदूँ कि सुप्रश्न किया शुचितर॥
३३० 'गुरुमन्त्र' नाम से जो प्रसिद्ध वह "गायत्री" ही अर्थ सहित–
है जपने–योग्य विनयपूर्वक, रहकर सर्वथा प्रमाद रहित॥
३३१ आप्तों ने इसके जप का फल, सर्वोत्तम ही बतलाया है।
मैंने भी अपने अनुभव से इसको वैसा ही पाया है॥

३३२ जो करलें अर्थमननपूर्वक इस महामन्त्र का पारायण ।
उन पर अवश्य होवें प्रसन्न, परमेश्वर अकाय % नारायण ॥
३३३ पर, केवल मौखिक जप से ही फल नहीं अपेक्षित मिल पाये ।
अनिवार्य है कि साधनाशील नारीनर, पावन बन जाये ॥
३३४ अन्यथा वृथा गायत्री का जपना, यह भी सुसिद्ध कहते ।
लाभेच्छु, कहां आडम्बर का थोथा, दिखावटी पथ गहते ??
३३५ इसके अतिरिक्त, मँत्र हैं छः जो यजुर्वेद में आये हैं ।
चौंतीस अनुक्रमयुत अध्यायारम्भ में छटा पाये हैं ॥ ★
३३६ वे 'शिवसंकल्प सूक्त' के भी नाम से छहों जाने जाते ।
पठनीय हैं शयन वेला में, ऐसा विद्वद्जन बतलाते ॥
३३७ मन की महिमा का इनमें है विभुवर ने दिया हुआ विवरण ।
प्रतिनिशि, पारायण-योग्य लगे सचमुच यह सारा ही प्रकरण ॥
३३८ ये भी मैं तुझे लिखा दूंगी, शब्दार्थ और भावार्थ सहित ।
इनसे कुछ दिन में निश्चय ही मन बन लेगा चाञ्चल्यरहित ॥
३३९ पर, वही शर्त इनके सँग भी लगी हुई अनिवार्यतया ।
शुचितामय जीवनक्रम वाली, जिसका ऊपर संकेत किया ॥

(दोहे) इतने में ही आ गयी, सखी यशोदा, याद ।
जिसके आज विवाह में जाना है साह्लाद ॥५९॥
इस कारण अब तो वहां चलना, पहला कार्य– ।
क्यों न तू व मैं समझलें श्रुत्तो ! यह अनिवार्य " ॥६०॥

३४० ऐसा कहकर माण्डवी उठी, अनुजा ने भी अनुसरण किया ।
तैयार हुई दोनों; अनुमति जननी से लेकर, गमन किया ॥

% "स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपाप विद्धम् ।"
[यजुर्वेद ४०।८ (पूर्वार्द्ध)] ("ओ० प्रे०")

[ज्ञातव्य] ★ यजुर्वेद के ३४वें अध्याय में प्रथम से छटे तक ये छहों मन्त्र अपने अन्त में 'तन्मेमन शिव संकल्पमस्तु' रखते हैं और मनोविज्ञान की दृष्टि से अतिशय महत्वमय हैं ।
("ओ० प्रे०")

३४१ रथ में सवार हो, जा पहुँची निज सखी यशोदा के घर वे।
जाते ही दर्शन हुए सामने स्वस्थ सौम्य सुन्दर 'वर' के ॥
३४२ उसके सँग जितने व्यक्ति बराती बनकर वहाँ पधारे थे।
उन सब में ही था आकर्षण, कपड़े भी विशिष्ट धारे थे ॥
३४३ आपस में जो बातें उनकी होती थीं, उनको सुनकर भी–
आनन्द, माण्डवी को, आया; लेहजे की दिखी बड़ी खूबी ॥
३४४ यह पहला ही अवसर था जब लखने को विवाह आयी थी।
ये दोनों बहिनें, जिन्हें वहाँ की गतिविधि अतिशय भायी थी॥
३४५ उनमें से भी माण्डवी अधिक मुग्धा-सी बनी लख रही थी–
सब दृश्यों में से बरात की हर हलचल उसे रुच रही थी ॥
३४६ उसमें से भी दूल्हे पर ही उसने सर्वाधिक ध्यान दिया।
अनुजा ने तुरत अग्रजा का यह भाव सहज ही भाँप लिया॥
३४७ कान में कहा यों धीरे से–"दीदी ! ये अवध–निवासी हैं।
क्या इसीलिए रुचिकर लगते ? पर ये तो सभी प्रवासी हैं॥
३४८ कल या परसों, इस प्रवास को पूराकर, वापिस जाएंगे।
हाँ, वर तो कभी कभार यशोदा को लेने भी आएंगे ॥
३४९ इकटक देखो मत इन सबको, स-विशेष वर महोदय को तुम।
इससे हो सकता है इनको तव असभ्यता का भारी भ्रम ॥
३५० छोटे मुँह बड़ी बात मैंने कहने का साहस कर डाला।
अब निकट जशोदा के पहुँचूँ जिसके है कर में वर माला ॥

(दोहे)--बनी कृतज्ञा माण्डवी, बोल उठी " शाबाश--
तोड़ा अति चातुर्य से, मम असभ्यता--पाश " ॥६१॥
हौले हौले बोलकर, ये थोड़े से बैन।
गई यशोदा के निकट, मिले नैन से नैन ॥६२॥

३५१ आँखों ही आँखों में दोनों, तत्काल कर उठीं यह निश्चय--
'एकान्त में मिलेंगी हम तुम, जब पूरा हो लेगा परिणय ॥'
३५२ श्रुतिकीर्ति ने वधू की माँ से बातें करना प्रारम्भ किया--
तब था, सो वह न देख पायी दृग्--संभाषण उन दोनों का ॥
३५३ वैदिक विवाह विधि के द्वारा शुभ पाणिग्रहण-संस्कार हुआ।
उस नूतन आर्य दम्पती को सब वृद्धों ने दी खूब दुआ ॥

३५४ जो थे बराबरी वाले, वे मँगल–कामना कर रहे थे।
छोटे भी, शुभ–सँवचन बोल सब में संमोद भर रहे थे॥
३५५ माण्डवी कुमारी ने समुचित उपहार सखी को भेंट किया।
उसकी अनुजा ने भी जो कुछ देने लाई थीं, तुरत दिया॥
३५६ पर, तभी अग्रजा को उसने एकान्त में वधू–सँग देखा।
उस अनुजा के चेहरे पर यह लख दृश्य, खिंची स्मिति की रेखा॥
३५७ चाहती शरारत करना थी, पर, शालीनता–वशात् रुकी।
(वर्ना दीदी की मीठी-सी कुछ वह लेने को थी चुटकी॥
३५८ उसके मन में यह कहने को आई थी अपनी दीदी से–
'जा रही यशोदा रहने को अब संग, अयोध्यावासी के॥
३५९ सो, इसके हाथ सँदेशा क्या कोई हो भिजवाने वाली ?
उत्तर भी जब यह लौटे तब, क्या तुम हो मँगवाने वाली??)
३६० फिर, मंत्र 'तमीलत' वाला भी जिसमें 'भरतम्' आया पावन।
कहने को थी पर कहा नहीं, यद्यपि हठ-सी करता था मन॥
३६१ चेतन का मन पर क्यों न रहे शासन, यह भी आया सु-ध्यान।
इसलिए नहीं मन का आग्रह माना, अनुचित ही उसे जान॥
(दोहे) उधर, यशोदा–माण्डवी; उससे थोड़ी दूर।
खड़ी खड़ी हो रही थीं, वार्त्ता–रस में चूर॥६३॥
सुन तो पायी कुछ नहीं, उन दोनों की बात।
पर, देखी, होती हुई, नैनों से बरसात॥६४॥
३६२ कुछ समय बाद, रथ में; वापस जाने को, सवार होने पर–
माण्डवी स्वयं बोली मग में अनुजा से वचन बड़े प्रियतर॥
३६३ "तुझसे न छुपाऊँगी वह सब जो कहा यशोदा से मैंने।
एवं उत्तर में आश्वासन जो मुझको दिया अभी उसने॥
३६४ प्रस्ताव रखा मैंने उसके सम्मुख यह था कि वहां रहकर–
तू लखना आर्यभरतजी को, तव भर्त्ता से मम गति कहकर॥
३६५ सम्भव हो तो 'उन' की प्रतिकृति जब आवे तब लेती आना।
पर ध्यान रहे, यह सब रहले श्री भरतदेव से अनजाना"॥
३६६ आश्वस्त किया है पूर्णतिया उसने कि जिस समय आएगी–
'उन' को निज नयनों से लखकर प्रतिकृति भी उनकी लाएगी॥

३६७ प्रिय श्रुत्तों ! मैं तुझसे हटकर कुछ दूर, यही कह-सुन आई।
इससे मेरी चिति ने सचमुच है शान्ति अनूठी ही पाई ।।"

३६८ यह सुन श्रुतिकीर्त्ति मुस्कराकर बोली–'तुम बहुत चतुरा हो
दीदी ! जासूस बनाकर जो भेजा यों सखी यशोदा को ।।"

३६९ इसके सँग-सँग उस अनुजा ने अपने मन की प्रेरणा कही।
यह भी कि "जीत चेतन की ही मेरे भीतर थी, अहा, रही।।"

३७० गंभीर भाव धारण करके बोली माण्डवी कि "साधन तो–
आरम्भ किया ही नहीं अभी, करने पर अविजय कभी न हो

(दोहे) रथ आ पहुँचा महल तक, सो यह वार्त्तालाप–
हुआ बन्द, होने लगा नियमित कार्य–कलाप ।।६५।।
कालान्तर में, एक दिन मिला सुखद सम्वाद–
यह कि 'यशोदा आ गयी' सुन उपजा आह्लाद ।।६६।।
सुविधापूर्वक माण्डवी, उर में भर उल्लास ।
निज माता से पूछकर, पहुँची उसके पास ।।६६।।

३७१ इस बार अग्रजा के सँगसँग, यह सोच, न अनुजा स्वयं गई–
'कह देंगीं दीदी ही आकर, होगी यदि कोई बात नई ।।

३७२ माण्डवी-यशोदा घुलमिल कर एकान्त में बहुत-सी बातें–
करती रहलीं पर्याप्त समय, चमकातीं दाँतों की पाँतें ।।

३७३ यह कहा यशोदा ने कि "अरी ! श्री भरतदेव से बड़ा सख्य-
मेरे भर्त्ता का है, उनके प्यारे मित्रों में 'ये' सुमुख्य ।।

३७४ इस कारण, आते रहते हैं वे 'इन' के पास नित्यप्रति ही।
लख परख सकी मैं भली-भाँति प्रायः सब गतिमति भी उनकी

३७५ 'इन' के सँग उनके चित्र कई हैं खिचे हुए पर एक नया–
उनका, एकाकीस्वरूप में 'इन' से कह मैंने खिचवाया ।।"

३७६ अति कृतज्ञतायापन करके माण्डवी समुत्सुकता--पूर्वक ।
(इतना सुनकर) कह उठी कि "वह पहले देदे, है मुझे ललक।

३७७ इस पर हस पड़ी यशोदा, फिर बोली कि 'प्रतीक्षा में सुख है।
प्रतिकृति दूंगी कुछ देर बाद, अब सुन, कैसा उनका मुख है ।।

३७८ कैसा है रूपरंग, कैसी बातें हैं, कैसा है स्वभाव ?
क्या रुचि है ? कितनी आयु तथा कैसे हैं उनके हावभाव ??

३७९ मैं कई वार देखकर स्वयं आई हूँ सो जो शब्द-चित्र–
खींचकर बताऊँगी तुझको, उसके समक्ष वह गौण, चित्र" ॥
३८० ऐसा कहकर बतलाया सब श्री भरतदेव के बारे में।
वाक्यों से मूर्त्त किया ऐसा मानो वे स्वयं पधारे हैं ॥
३८१ "आदर्श आर्य, देवोपम वे" यह कहा अन्त में वाक्य मधुर।
"मम भर्ता को सुमित्र मानें, गौरव है, मुझको भी इस पर ॥"
३८२ कुछ देर चुप रही, फिर बोली "हैं बिल्कुल तेरे योग्य, अरी।
ऐसे होते यदि वे न विरल, तो कह देती मैं बात खरी ॥
३८३ अतिशयोक्ति उनके बारे में कोई भी कैसे कर पावे ?
न्यूनोक्ति सर्वदा रह लेगी, यश कोई कितना ही गावे ॥
३८४ बूढ़े बूढ़े नारी नर भी इकस्वर से कहते यही वहीं।
'लखने में क्या, सुनने तक में आया न भरत सम श्रेष्ठ, कहीं' ॥
३८५ हाँ, एक बात भूली हीं थी, अब याद आगई तो कह दूँ।
क्यों नहीं उसें भी तुझसे कह अनुपम आमोद तुरत गह लूँ ??
३८६ उनके अग्रज श्रीरामचन्द्र कुछ समय से नहीं विद्यमान।
कौशिक मुनि के मख-रक्षण हित हैं गये हुए, पितु वचन मान ॥
३८७ सो, पूज्य पिता दशरथ जी के सहयोगी बन, सब राजकार्य–
अति कौशल से हैं चला रहे इन दिनों श्री भरतदेव आर्य ॥
३८८ फिर भीं, घर कोई नहीं बचा ऐसा जिसमें वे गये न हों।
आत्मीय भावना, परिजन-सी, करते जाकर अभिव्यक्त न हों ॥
३८९ इस पुर में सबसे कुटुम्बियों-सा तू व्यवहार करे जैसा।
उस नगरी में उनका मैंने वर्तन देखा बिल्कुल वैसा ॥
३९० तुझसे भी बल्कि तनिक बढ़कर उनमें जन सेवा की प्रवृत्ति।
अभिमान शून्य, सीधी सादी, सात्विक ही उनकी दिखी वृत्ति ॥
३९१ वर्णन कितना ही करूँ, अधूरा लगता है मुझको यह सब–
दर्शन का जो महत्व है उधका स्थान ले सकेगा यह कब ??
३९२ संध्योपासन का समय निकट आ रहा अतः अब करें बन्द–
यह प्रिय चर्चा जिससे तुझको आनन्द मिल रहा शुचि, अमन्द" ॥

३९३ हो गई यशोदा खड़ी, 'नमस्ते' कहा, (विदा-संकेत रूप)
(थी उपासना की उसे त्वरा, जाती दिखती थी क्योंकि धूप॥
३९४ सायं के संध्योपासन की वेला अतिवाहित होने का–
भय था, बस, इसी लिये उसने संकेत किया था जाने का ॥)
३९५ पर, नहीं माण्डवी उठी, बल्कि अपने आसन पर जमी रही।
याचक–समान स्वर में उसने इस भाँति सखी से बात कही॥
३९६ "कब तक सुख मुझे प्रतीक्षा का, देने की तूने ठानी है ?
यह सौख्य अब न सह पाऊँ मैं, क्यों दशा न मेरी जानी है"??
(दोहे)–यह सुनते ही यशोदा, समझी अपनी भूल ।
हँसकर बोली, "सुख बना क्या वह तुझको शूल ??॥६८॥
क्षमा चाहतीहूँ, मुझे नहीं रही थी याद ।
ले, अब चित्र स्वरूप में देदूँ तुझे प्रसाद" ॥६९॥
जाकर खोली पेटिका, उसमें से वह चित्र–
निकाल, निज कर में गहा, जो था भव्य, पवित्र ॥७०॥
फिर सौंपी माण्डवी को, ला प्रतिकृति, तत्काल ।
(जिसे प्राप्त कर नृप सुता, मानों हुई निहाल) ॥७१॥
३९७ आँचल में छुपा लिया कसकर, फिर कहा नमस्ते;किया गमन
जाने से पहले किया सखी की जननी को भी सविधि नमन॥
३९८ आने पर, सबकी दृष्टि बचा, वह चित्र पेटिका में, फौरन–
धर दिया सावधानी पूर्वक, सन्तुष्ट-प्रसन्न हुआ चेतन।।
३९९ तब संध्योपासनादि करके श्रुतिकीर्ति से अकेले में वे–
बातें कहदीं ज्यों की त्यों सब, दिखलाया भी वह चित्र उसे॥
४०० इस पर शैतानी के स्वर में अनुजा बोली कि "सुनो दीदी !
ये अगर नहीं बन सके तुम्हारे पति या मेरे जीजाजी ॥
४०१ तो, यही चित्र, क्या नहीं भ्रान्ति मनमानी उपजा पाएगा ?
तुम सफाइयाँ कितनी ही दो, विश्वास तब किसे आएगा ??"
४०२ गम्भीर बनी माण्डवी, बात यह सुनकर अपनी अनुजा की।
फिर दृढ़ता से, यों निज उर के भावों को उसने भाषा दी–

४०३ बोली कि "अभी चेतन की ही गरिमा है तुझको नहीं ज्ञात ।
चिति के अंतर्यामी की तो कैसे तू समझे बड़ी बात ??
४०४ शायद बाहर के नभ में ही तू भी सामान्यों के समान–
विचरण करती है, तुझे नभो वाणी का असली कहाँ ज्ञान ??
४०५ तन में जो हृदयाकाश, अरी, मुख्यतः रहे उसमें चेतन ।
यद्यपि सारे ही शरीर में सर्वत्र रखे अपना व्यापत ।।
४०६ चेतन के भीतर उसी उर-गगन में रहते ओङ्कारेश्वर ।
शिव, जीव; उभय हैं निराकार, पहला ठाकुर, दूजा चाकर ।।
४०७ जो चेतन उसकी शरण गहे उसके प्रति हृदय देश में ही–
विभु की गूँजे शुचिगिरा कि जो कहलाती शुभा नभोवाणी ।।
४०८ इसके अतिरिक्त, बुरे जब जब करना चाहता कर्म चेतन–
तब तब शंका, भय, लज्जा की भावना भरे शिव, दे कम्पन ।।
४०९ सत्कर्मों की इच्छा जब जब चिति में होती है, तब तब ही–
उत्साह, अभय, आनन्द– बढ़ाता उसमें विभु अन्तर्यामी ।।
४१० सो, प्रथम तो मुझे चेतन ही विश्वस्त कर चुका है मेरा ।
फिर, हृदय–गगन में हुई नभोवाणी, उसने भी तो प्रेरा ।।
४११ सबसे बढ़कर परमेश्वर के संकेत सु–पावन वे मानूं–
जो उत्साहादि रूप में उठते हुए स्वयं में पहचानूँ ।।
४१२ इस कारण, पूर्ण प्रतीति मुझे ऐसी कि साध पूरी होगी ।
अन्यथा न मम चेतन खिंचता उनके प्रति, बनने सहयोगी" ।।
(दोहा)–माता जी ने बुलाया, सो, दोनों तत्काल ।
गईं वहाँ से दौड़कर, धीमी रखी न चाल ।।७२।।

वर्षग्रन्थि – समारोह (पंचम–प्रकरण)

४१३ साँकाश्यपुरी में चहलपहल प्रातः से आज दिख रही थी ।
आबालवृद्ध नारी नर थे पुलकित, सुसज्जिता नगरी थी ।।

४१४ व्यापारी एक, उसी दिन आ, जो टिका धर्मशाला में था।
उसने मग–चलते एक नागरिक से उत्सुक होकर पूछा–
४१५ "क्या उत्सव कोई यहां आज, क्यों नई बहू-सी पुरी सजी ?
नृप के द्वारे तो विशेषतः शहनाई–नौबत अभी बजी ॥
४१६ अन्यान्य वाद्य भी वहाँ मुझे सुनने को मिले मधुर ऐसे–
कितनी ही पुरियों में ठहरा, पर अब तक नहीं सुने जैसे ॥
४१७ मांर्गों, बाजारों, गलियों में जैसी लख रहा सजावट मैं।
वैसी भी कहीं नहीं देखी, अत्यन्त यहाँ सब हर्षित हैं ॥

(दोहा)–मोद, स्वयं–संस्फूर्त यह, रखता नहीं मिसाल।
आज ठहरकर मैं यहाँ, सचमुच हुआ निहाल ॥७३॥

४१८ लगता है मानो हर घर में उल्लास जमाये हो डेरा।
सब नरनारी के उर को हो जैसे प्रमोद ने हो प्रेरा ॥"
४१९ उत्तर में कहा नागरिक ने–'हे भद्र पुरुष ! थोड़े–से में–
इसका बतलाता हूँ कारण, इसलिये कि व्यस्त बहुत हूँ मैं ॥
४२० होने वाला है आज नागरिक अभिनन्दन सुभव्य उनका–
शुभ जन्म दिवस हैं मना रहे सब, विविध प्रकारों से जिनका ॥
४२१ हाँ, ज्येष्ठ सुना वे कुशध्वज कों जो शासक-श्रेष्ठ हमारे हैं।
कुछ वर्ष पूर्व ही, विनय हमारी पर, कर कृपा, पधारे हैं ॥
४२२ मिथिलेश जनक नृप विदेह के हैं अनुज, स्वयं भी ज्ञानवान्।
चाहे जैसे कोई परखे पाएगा ही उनको महान् ॥
४२३ यद्यपि उनका है पुत्र नहीं, पुत्री तथापि ज्येष्ठा ऐसी–
अब तक न किसी ने गुणवाली सुन भी पाई होगी वैसी ॥

(दोहे)–ज्ञान, कर्म, का समन्वय, रखती सदा अनूप।
वैसा ही उज्ज्वल हृदय, जैसा उत्तम रूप ॥७४॥
राजनीति में जिस तरह पूर्णतया निष्पात।
उसी तरह सं-सेविका; विचित्र है यह बात ॥७५॥
इसी वर्ष उसने किये, भारी यहां सुधार।
प्रजातन्त्र की रीति का, रख पूरा आधार ॥७६॥

त्यों नृप को सहयोग दे, ज्यों हो राजकुमार।
वँटवा डाला प्रजा को, उनसे शासन-भार ॥७७॥
इनके पहले थी प्रजा जितनी विशेष त्रस्त।
है उतनी ही अब सुखी, स्वतन्त्र, निर्भय, मस्त ॥७८॥

४२४ बस, इसीलिए नृप की ज्येष्ठा कन्या–माण्डवीकुमारी का–
मन रहा जन्मदिन विशेषतः इस वर्ष, प्रजा की प्यारी का ॥
४२५ है सायंकाल समायोजित, पुरजनविहार में एक सभा।
जिसमें माण्डवीकुमारी को अभिनंदन पत्र भेंट होगा ॥
४२६ आइये आप भी वहां, देखिये समारोह निज नयनों से।
कीजिये कृतार्थ कान अपने उन सुकुमारी के बैनों से ॥
४२७ वक्तृत्वकला में भी उन सम शायद ही कोई मिले कहीं।
जब अभिनन्दन के उत्तर में बोलें तब यह जाँचिये वहीं ॥
४२८ मेरे सुपुर्द हैं कई काम, आयोजन की तैयारी के।
जैसा कह चुका शुरू में ही, व्यस्तता मुझे अतिभारी है ॥
४२९ पर, आप बाहरी सज्जन हैं, इस कारण देना पड़ा समय।
अन्यथा कदापि न रुकता मैं, चाहे थोड़ा होता अविनय ॥
४३० अच्छा तो अब मैं चलूँ, ध्यान रखिये मेरे आमन्त्रण का।
जाते जाते यह बतला दूँ उपमहापौर हूँ मैं पुर का ॥

(दोहे) सविनय करके नमस्ते, गये उपमहापौर।
व्यापारी विस्मित चकित, खड़ा रहा उस ठौर ॥७९॥
इधर, नृपति के भवन में, पावन वैदिक यज्ञ–
रचा रहे थे पुरोहित सह अनेक द्विज विज्ञ ॥८०॥

४३१ उस निराकार ओंकारनाथ परमेन्द्रदेव को धन्यवाद।
इस शुभ अवसर पर देने को गूँजा मंत्रों का दिव्यनाद ॥
४३२ दी गइ विशेषाहुतियाँ भी ऋत्विज्गण के निर्देशन में।
था सर्वाधिक उल्लास नृपति एवं रानीजी के मन में ॥
४३३ फिर यज्ञशेष सबमें यथेष्ट वितरित वह मोह न भोग हुआ।
जिसकी सुरभित सुगंध ने ही जन जन के मन को मोह लिया ॥
४३४ समुपस्थित महिला पुरुषों में संपन्न हो चुका जब वितरण–
तब हुआ पाठशालाओं में उस यज्ञ-शेष का शुभ प्रेषण ॥

४३५ म.ण्डवी–जन्मदिन की छुट्टी होने से केवल प्रसाद ही–
लेने को थे आहूत वाल-वालाएं, सो आ गये सभी ।।
४३६ जो टिके धर्मशालाओं में, उन सबको राजपुरुष जाकर–
बाँटने सु-यज्ञप्रसाद लगे, उसका निमित्त भी बतलाकर ।।
४३७ उपमहापौर से पूछी थी जिस व्यापारी ने अभी अभी–
इस चहल पहल की वजह, मिला वितरक-दल को वह सज्जन भी
४३८ देकर प्रसाद जब राजपुरुष कारण बतलाने लगा उसे ।
तब उसने हाल बताया सब, फिर कहा–'बुलावा मिला मुझे ।।
४३९ अभिनन्दन-समारोह में है रहना अत्यन्त इष्ट मुझको ।
मैंने कर दिये निरस्त इसी कारण बाहरी पुरोगम दो ।।"
४४० इतना कहते कहते वितरित खा गया प्रसाद सभी, सज्जन ।
थाल पर जमाये था अब वह अपने लालच से भरे नयन ।।
४४१ इक वितरक ने यह भाँप लिया, हँसकर दोना दूसरा दिया ।
व्यापारी थोड़ा सकुचाया, पर प्रसाद उसने तुरत लिया ।।
४४२ फिर धीरे से बोला कि "मुझे अत्यन्त सुस्वादु प्रसाद लगा ।
ऐसा तो कभी न खाया था, सौरभ में भी यह लगे पगा ।।
४४३ दूसरी बार पुनरपि देकर उतना ही, की है बड़ी कृपा ।
दूजा दोना देते न आप तो अतृप्त रहती मम इच्छा ।।
४४४ जो जो कोई थे आसपास, वे सब यह सुनकर बहुत हँसे ।
मसखरा एक बोला कि 'बुरे के बजाय तुम हो भले फँसे ।। "
४४५ थे अस्वस्थ कुछ दिन से गुरुवर इसलिए यज्ञ के अवसर पर–
वे नहीं पधार सके थे, सो माण्डवी खुद गई उनके घर ।।
४४६ उनके एवं गुरुपत्नी के, उसने जाते हीं, चरण छुए ।
दोनों देकर आशीष बहुत उसको, अत्यन्त प्रसन्न हुए ।।
४४७ कुछ देर बैठकर, निकली वह गुरु के घर से बाहर ज्योंही–
श्रुतिकीर्ति, यशोदा सहित उसे आती दिख पड़ी इधर, त्योंही ।।
४४८ यह कहा यशोदा ने कि 'अरी, मुझको तो देता कौन बता ?
छोटा भाई जब यज्ञ शेष लाया तब पाया अभी पता ।।
४४९ सो, तुरंत पहुँची राजभवन, पर तू तो यहां आ गई थी ।

इस कारण तेरी अनुजा को संग लेकर हूँ दौड़ी आई ।।

४५० कुछ सोच, पुनः गुरुगृह में ही बैठी माण्डवी, संग उनके ।
गुरुवर से कहा यशोदा के बारे में सुगंभीर बनके—
४५१ "हे भगवन् ! यह मम सखी यशोदा विवाहिता हो चुकी अभी
ससुराल-वासिनी रहे, यहां भी आ जाती है कभी कभी ॥
४५२ चाहते हुए भी आगे कुछ माण्डवी नहीं जब कह पाई !
तब यों बोली श्रुतिकीर्त्ति (जिसे वह परिचय-रीति नहीं भायी)
४५३ "दीदी ! क्यों पूरी बात न कह गुरु से रखती हो, अहो, कपट ?
देखो, मैं परिचय पूर्णतया इसका दे देती हूं झटपट ॥
४५४ सुनिये गुरुवर्य ! आपने जो कैकेयी जी की बात कही—
इक दिन शिक्षण की बेला में, सो हम दोनों को याद रही ॥
४५५ उसके ही संग भरतजी का थोड़ा विवरण था बतलाया ।
जिसके पश्चात् प्रसंग नहीं वह पूरा सुनने का आया ॥
४५६ आप तो सुनाते वही कि जो आपने किसी से सुन पाया ।
पर देखा स्वयं यशोदा ने उनको, फिर उनका यश गाया ॥
४५७ इसकी ससुराल अयोध्या में, इसके पति, मित्र भरतजी के ।
तब दीदी से यह नित्य मिले जब दें फल, वचन, आप श्री के ॥
४५८ मैं स्मरण दिलाती हूं कि "सास, कैकेयी जी हों दीदी की ।
भार्या हो भरतदेव की ये, आपने शुभाकांक्षा की थी ॥
४५९ अब पुनः जन्म दिन पर इनके, मंगल—कामना करें वैसी ॥
उस दिन माताजी के समक्ष, चिति-प्रतीति से की थी जैसी ॥
४६० साक्षी रह सके यशोदा भी, जब आप आज फिर वही कहें ।
आपके समान सुसिद्धों के विश्वास-वचन कब वृथा रहें ??"
(दोहा) यह सुन, गुरुवर ने कहे, उस दिन वाले बैन ।
वैसी ही सु-प्रतीति से चमके उनके नैन ॥
४६१ फिर कहा यशोदा से कि 'मुझे बेटी ! तुम विवरण दे जाओ ।
श्री भरतदेव का, पूर्णतया, लो सुनो प्रिये ! तुम भी आओ ॥'
४६२ निज भार्या से ऐसा कहकर श्रवणार्थ बुलाया भरतकीर्ति ।
कहचली यशोदा भी सबकुछ, विस्मृत करके विस्तार भीति ॥
४६३ सारा वर्णन सुनकर, फिर से गुरुवर ने बात वही कह दी ।
(मानो कहकर तीसरी बार, पूरी निश्चिति उसमें भर दी ॥)

४६४ माण्डवी नहीं बोली कुछ भी, पर मन ही मन थी हर्ष–भरी ।
पक्का विश्वास जमा उर में, 'गुरुजी की निकले बात खरी ।।'

(दोहे)–तब गुरु भार्या ने कहा, " अब खाओ मिष्टान्न ।
यद्यपि हैं प्रासाद में, विविध मिष्ट पक्वान्न ।।८२।।
प्रथमवार ही था मुझे, यह कहना अनिवार्य ।
पर भूली मैं क्योंकि हैं अस्वस्थ ये देवार्य ।।८३।।
इनकी चिन्ता से हुई, विस्मृति पिछली वार ।
रहा बड़ा अच्छा कि तुम, आयीं दूजी वार ।।८४।।

४६५ श्रुतिकीर्ति, यशोदा; एक साथ बोलीं कि "अहो गुरुआनीजी !
तब आप मिठाई देतीं तो खा लेती बस यह एकाकी ।।
४६६ तदनन्तर हास्य-विनोद मध्य उन त्रय ने मिष्टान्नाहार किया ।
श्रद्धापूर्वक अभिवादन कर दोनों को, वह गृह छोड़ दिया ।।
४६७ आग्रह कर पुनः यशोदा को माण्डवी साथ अपने लाई ।
मिष्टादि विविध पक्वान्न खिलाये उसे, तभी वह जा पाई ।।
४६८ अभिनन्दन–समारोह सायं वेला में हुआ समायोजित ।
पुरजनविहार था सारा ही नारियों नरों से सु–सम्भरित ।।
४६९ थे महापौर उस दिन बाहर, उपमहापौर ने इस कारण ।
अभिनन्दन पत्र पढ़ा जिसमें माण्डवी-कीर्ति का था विवरण ।।
४७० फिर किया समर्पित स्नेह सहित एवं कुसुमादिक भेंट किये ।
शतशः नारीनर ने आकर मंच पर स्वयं उपहार दिये ।।
४७१ कुछ तपस्वियों ने साधुवाद-मण्डित सुभव्य भाषण द्वारा–
उपहार समर्पण किया, सुयश चारण भाटों ने उच्चारा ।।
४७२ कतिपय कान्ता कन्याओं ने एवं विदुषी वनिताओं ने–
उपहारों के संग किये स्वल्प भाषण, मान्या महिलाओं ने ।।
४७३ कुछ कलाविदों ने कौशलयुत कृतियाँ कीं भेंट कुमारी को ।
विज्ञों ने अपनी रचित पुस्तकें दीं उस राजदुलारी को ।।
४७४ ये चले समर्पण–प्रभृतिकार्य पूरे दो घण्टे लगातार ।
(फिर भी यों होता था प्रतीत ज्यों बीते हों पल तीन चार ।।)

(दोहे)–देर बहुत होने लगी, तो "प्रशेष उपहार–
देदे जनता बाद में–" घोषित हुआ विचार ।।८५।।

तदनुसार वह क्रम रुका, सब थे ऊपर शान्त ।
पर, भाषण के श्रवण को भीतर बने अशान्त ॥८६॥

४७५ बोलने खड़ी भाण्डवी हुई, जा ध्वनि विस्तारक तक ज्योंही ।
करतल ध्वनि द्वारा किया गया सत्कार प्रेमपूर्वक त्यों ही ॥
४७६ 'माण्डवी कुमारी की जय' भी अगणित कण्ठों में से निकली ।
तब हुई शान्ति जब शानदार भाषणकर्त्री बोलने लगी ॥
४७७ "सबसे पहले तो परमेश्वर ओङ्कारदेव को धन्यवाद ।
जिसकी सुकृपा से प्रजाजनों के दूर हुए सारे विषाद ॥
४७८ उसने ही ऐसी क्षमता दी जिसके द्वारा अकिंचना मैं—
भरसक जनसेवा कर पायी, यद्यपि कमियाँ भी मुझ में हैं ॥
४७९ फिर धन्यवाद है विदेह जी एवं मम पूज्य पिता जी को ।
माता जी को, गुरुवर्य तथा जनता के सब नर नारी को ॥
४८० जिनसे मार्गदिग्दर्शन एवं सहयोग प्रभूत मिला मुझको ।
सो वास्तव में चाहिये श्रेय मिलना, मेरे बजाय, इन को ॥
४८१ इतने पर भी, वात्सल्य, प्रेम एवं सुस्नेहमय अभिनन्दन—
आपने किया जो यह मेरा, करती हूँ तदर्थ अभिवन्दन ॥
४८२ पर, एक विनय भी करूँ, मानिये उसे कृपाकर आप सभी ।
बस, यही कि 'जिम्मेदारी को भूलिये न कोई कहीं कभी' ॥
४८३ उसके निवाहने में पूरे ईमानदार सब नर नारी—
सर्वदा रहें बनकर सुखदा वरदा श्रद्धामय श्रमधारी ॥
४८४ जब यहां रहूं मैं नहीं, पिताजी की सहायता करने को—
तब भी, विधानतः कार्य चले, शासन का, गड़बड़ तनिक न हो ॥
४८५ इसका, मेरी लघुमति से तो, है केवलमात्र यही साधन—
अन्यथा दुःखमय होगा ही स्वार्थी बेढंगा जन-जीवन ॥"
४८६ आगे चलकर यह बतलाया—कहते किसको जिम्मेदारी ।
कैसे रहकर ईमानदार, होते श्रद्धायुत श्रमधारी ॥
४८७ नूतनविधान की हैं क्या क्या खूबियां और क्या गूढ़ तत्व !
उससे अधिकार मिले कितने जनता को, उनका क्या महत्व !!
४८८ आधे घण्टे में यह सब कुछ ऐसे कौशल से बतलाया ।
जिससे अनाड़ी-अनभिज्ञ को भी तात्पर्य समझमें घुस पाया ॥

४८९ था अद्भुत उस नृपकन्या का धाराप्रवाह अलिखित भाषण-
जो वरवस ही श्रोताओं के उर में भरता था आकर्षण ॥
४९० हो गया मुग्ध वह व्यापारी जिसने दो तर्जे पुरोगम थे।
उपमहापौर ने जिसे दिया आमन्त्रण था अत्याग्रह से ॥
४९१ भाषण समाप्त होते ही वह आ गया मंच पर, भीड़चीर।
(कहने को एक बात उर की, था बड़ी देर से ही अधीर ॥)
४९२ जा निकट, कहा उसने कि "बधाई तुमको राजकुमारी जी।
शुभ जन्मदिवस पर एक प्रार्थना सुनलो इस व्यापारी की ॥
९४३ मैं हूँ सुदूर गुजरात प्रान्त का वासी, लेकिन इसी समय–
'नागरिक यहाँ का बनूँ,–किया मैंने है यह पक्का निश्चय ॥
४९४ हो प्रजातन्त्र–पद्धतिवाला जिस वरद राज्य में शुभविधान।
एवं शासन करने वाले हों सेवाभावी, नयनिधान ॥
४९५ सविशेष, जहां तुम समविदुषी हो परामर्शदात्री पावन।
जनता भी यहां कृतज्ञतादि गुणवाली हो अति मनभावन ॥
४९६ सो, करो प्रार्थना मान्य और ध्वनिविस्तारक पर श्रीमुख से-
तुम अभी घोषणा भी करदो इसमें, जनता जो सम्मुख है ॥"
४९७ सस्मित होकर माण्डवी पुनः बोलने हेतु आगे आई।
गमनोद्यत नारीनर ठिठके, उत्सुकता सबने दर्शाई ॥
४९८ तब, उन श्री सेठ सुदर्शन को रख निकट खड़े, परिचय उनका-
जनता को दिया और घोषित यह कियाकि 'गहो नागरिकता'।
४९९ अभिनन्दित राजकुमारी ने अभिनन्दन, सेठ सुदर्शन का–
दस मिनिटों में कर दिया, लिखित सम्मान पत्र से भी बढ़िया ॥
५०० दो चार मिनिट कुछ कहा सेठ ने भी; पर बोली–विभेद से–
वे पूरी तरह बात अपनी, जनसमूह को समझा न सके ॥
५०१ उपमहापौर जी ने आशय, संक्षिप्त रूप में बतलाया–
जो यही कि–"मैं एकाकी ही व्यापार के लिए, था आया ॥
५०२ अब कुटूम्ब को बुलवा लूँगा, खोलूँगा कई कारखाने।
सांकाश्यपुरी की समृद्धि में त्रुटि रखूँ न मैं अपने जाने ॥"
५०३ करतल ध्वनि हुई तथा जय जय गूँजी माण्डवीकुमारी की।
एवं जय बोली गयी सुदर्शनजी महान् व्यापारी की ॥

(दोहे) घर पहुंची जब माण्डवी, बोली तब श्रुतिकीर्त्ति—
"दीदी ! तुमने आज तो, कि भारी त्रुटि-पूर्त्ति ।।८७।।
भाषण का सु-प्रभाव मैं, यह समझूँ अतिश्रेष्ठ ।
जो कि सुदर्शनजी धनिक, हुए नागरिक-श्रेष्ठ ।।८८।।
कला, शिल्प, साहित्य सब मना सकें तब मोद ।
लक्ष्मीमाता की मिले, प्रिय सुखदा जब गोद ।।८९।।
याद रखें तब जन्मदिन, क्यों न यहां के लोग ।
भविष्य में भी सर्वदा, क्योंकि हुआ धन—योग ।।९०।।



अग्रजा से प्रेरणा (षष्ठ प्रकरण)

५०४ रात्रि में, शयन से पूर्व, नृपतिवर ने माण्डवी सु-दुहिता को—
बुलवाया अपने पास और पूछा उससे, अति प्रसन्न हो ।।
५०५ "बेटी माण्डवी ! जन्मदिन के उपलक्ष में तुझे मैं दूं वह—
जिसकी तू प्रकट करे इच्छा; बस, मनोकामना मेरी यह ।।
५०६ वैसे, उपहार सैकड़ों ही मिल चुके तुझे सारे दिन में ।
अब तक हैं चले आ रहे वे, कतिपय तो अमूल्य भी जिनमें ।।
५०७ पर, मैं तो वही चाहता हूं जो बुलवा, कहा अभी तुझसे ।
उपहार माँगले मनचाहा, पाएगी निश्चय ही मुझसे ।।"
५०८ बोली माण्डवी कि "यों तो है आशीष आपका सदुपहार ।
जिससे बढ़कर दिखता न मुझे, कितना ही मैं करलूँ विचार ।।
५०९ फिर भी, जब आप चाहते हैं तब कुछ न कहूं—यह नहीं उचित ।
सो, कहती हूँ मैं वही कि जो सर्वाधिक है मेरा इच्छित ।।
५१० ताऊजी से जाते जाते मैंने जो किया निवेदन था ।
उस पर कृपया दे दिया उन्होंने मुझे तभी आश्वासन था ।।
५११ यानी, दीदी सीताजी को लेकर पधारने हेतु विनय—
मैंने की थी, जो हुई मान्य उन सपूज्य द्वारा उसी समय ।।

(दोहे) अकस्मात् श्रुतिकीर्त्ति ने प्रवेश करके, बात–
कहीं बीच में यह कि 'लें मेरी भी सुन, तात ॥९१॥
ताऊ जी ने मुझे भी, तभी किया आश्वस्त ।
'लाएंगे उर्मिला को', जो मम भगिनी, दोस्त ॥९२॥

५१२ दीदी माण्डवी कह रही थीं आपसे बात आधी केवल ।
इसलिए विन बुलाये आकर मैंने पूरी करदी अविकल ॥
५१३ यद्यपि असभ्यता है कि अनाहूता प्रविष्ट मैं हुई यहाँ ।
पर, पिता के निकट आने में पुत्री को है प्रतिबन्ध कहाँ ??
५१४ फिर, है असभ्यता यह भी, जो मैं बात काटकर बोली हूँ ।
पर, भाव शुद्ध मेरा, इससे इसकी भी तनिक न दोषी हूँ ॥"
५१५ माण्डवी तथा कुशध्वज, दोनों श्रुतिकीर्त्ति की सफाई सुनकर-
हँस पड़े ठहाका मार और माण्डवी कहचली तदनन्तर–
५१६ 'श्रुतो ! क्यों अविश्वास मुझपर तूने कर लिया बीच ही में
पूरी तो अपनी बात नहीं अब तक प्रस्तुत की है मैंने ॥
५१७ बन गई अधीरा तू वर्ना मैं भी थी वह कहने वाली--
जिसकी सुसंधि तूने, करके उजलत, है इस प्रकार पा ली ॥
५१८ हां, तो श्रद्धेय पिताजी ! वह आश्वासन उनको दिला याद-
सन्देश भेजिये मिथिला को, बस, यही माँग मम, पूज्यपाद !!
५१९ सम्भव है, ताऊजी न स्वयं आ सकें, असुविधा होने से ।
तो दुहिता-द्वय को ही भेजें-- यह भी चिट्ठी में बात रहे ॥
५२० अद्‌भुत-सी मांग श्रवण करके नृप मुग्ध बने, शुचि स्नेहनिरख।
(जिसको मिथिला में ही अनेक अवसर पर वे थे चुके परख ॥)
५२१ उनकी आंखों में हर्षजन्य आंसू आ गये अचानक ही ।
उत्तर में 'तथास्तु' बोल सके, दूजी न बात मुँह से निकली ॥

(दोहे) मुदित-मना दोनों सुता, करके उन्हें प्रणाम ।
निज निज कक्षों में गईं, पा संतोष ललाम ॥९३॥
नृप ने प्रातः पत्र लिख, दिया दूत के हाथ ।
जिसमें थी साग्रह विनय 'आवें मिथिला-नाथ ॥९४॥

५२२ यदि स्वयं पधार न भी पावें तो दोनों भतीजियों को ही--
कृपया भेजिये, मांग मुझसे यह मेरी सुता, माण्डवी की ॥

५२३ उसको एवं श्रुतिकीर्त्ति-मम-सुता- को समक्ष में आश्वासन–
जो आप दे गये थे, उसका रख ध्यान, मानिये सु-निवेदन ।।
५२४ आशा है, आप निराश नहीं इन दोनों को होने देंगे ।
मेरी इस नम्र प्रार्थना को मानने-योग्य ही समझेंगे ।।
५२५ कल जन्मदिवस था सुता माण्डवी का, जिस पर उपहार यही
उसने मुझसे मांगा, जो मैंने दिया, प्रेरिका वही रही ।।
५२६ इस कारण आज पत्र लिखना अनिवार्य हुआ, अन्यथा कभी–
लिखता भविष्य में किन्तु उक्त संस्थिति में हूँ लिख रहा अभी'।।
५२७ मिथिलाधिपकी शुचि सेवा में भेजकर दूत को पत्र सहित ।
फिर किये दूसरे कार्य, नृपति कुशध्वज ने, जो जो थे निश्चित ।।
५२८ कुछ दिनों वाद, उत्तर आया ऐसा कि "माण्डवी से कहना–
"आश्वासन पर चाहिये, उसे विश्वासयुक्त बिल्कुल रहना ।।"
५२९ यदि करती नहीं माँग भी तो मैं खुद वचनानुसार आता ।
इतना अवश्य है, समय अधिक उसमें निश्चय ही लग जाता ।।
५३० अब पत्र कराया है प्रेषित उसने, तो लगता यही उचित–
भेजूँ दोनों दुहिताओं को, आश्वासन फिर भी है रक्षित ।।
५३१ यह तो इच्छित जो मांग, माण्डवी की है, पूरी उसे करूँ ।
निज आश्वासन पर भविष्य में सुविधापूर्वक मैं ध्यान धरूँ ।।
५३२ सीता एवं ऊर्मिला, कुछ समय वाद, वहां आ जाएँगी ।
यह तुम जानो, वापस कब तक वे पुनः यहां आ पाएँगी ।।
५३३ इतना ही ध्यान रहे कि तुम्हारी भाभी व्यग्र हो सकेंगी ।
यदि उनकी दोनों कन्याएँ अत्यधिक समय तक रुक लेंगी ।।
५३४ सो, न तो बहुत जल्दी, न बहुत ही विलम्ब से, वापस अपनी-
दोनों भतीजियों को मिथिला भेजना, प्रेरणा करूँ यही ।।"
५३५ यह पत्र, विदेह नृपत्तिवर का, लेकर जब दूत यहां आया–
तब स्वयं कुशध्वज राजा ने, जा, रानीजी को बतलाया ।।
५३६ फिर वहीं बुलाया दोनों ही कन्याओं को अतिहर्ष सहित ।
दिखवाया पत्र, तथा स्वागत-विषयक सम्मति भी दी समुचित ।।
५३७ रानीजी ने यह कहाकि 'अबतक कहाँ किसी ने बतलाया ।
मेरे अनजाने ही मिथिला वह पत्र गया था भिजवाया ।।

५३८ वनों में भी विदेह-पत्नी भाभीजी को संग लाने की-
लिखवाती अपनी विनय, पूर्ण आशा रख उनके आने की ॥
५३९ अब, सीता और उर्मिला जब मिथिला को वापिस जाएँगी।
भेजूँगी तब सन्देश कि उनकी माताजी भी आएँ ही ॥
५४० फिलहाल जेठजी भी तो हैं आरहे नहीं, सो सँग उनके-
जेठानी जी भी आ जाएँ—कहलाऊँगी ऐसा उनसे ॥"
५४१ दोनों दुहिताओं समेत नृप हो गये, कथन यह सुन, लज्जित।
यों बोले तीनों साथ-साथ– 'यह सचमुच हुआ बहुत अनुचित
५४२ पर हरेक ने यह समझ लिया, बाकी दो में से समाचार–
दे दिया किसी ने होगा ही, था कहीं न कोई दुर्विचार ॥
(दोहे) 'शत चतुरों का एक मत' हुआ यहाँ चरितार्थ ।
इस पर लज्जित हम सभी, अन्य कथन है व्यर्थ" ॥९५॥
रानीजी का सर्वथा मिटा तब तुरत रोष ।
सत्यकथन सुनकर हुआ, पूर्णतया सन्तोष ॥९६॥
५४३ दोनों कन्या दौड़ती हुई जा पहुँचीं तब गुरुवर के घर–
'मिथिला से बहिनें आएँगी'– यह देने सुसम्वाद संत्वर ॥
५४४ खेलते दिखे दर्वाजे पर दो बच्चे बिल्कुल नये वहां ।
इस पुर के बच्चों से उनका होता था कुछ भी मेल कहां ??
५४५ दोनों ही नन्हे मुन्नों ने इन दोनों को अभिवादन कर–
पूछे जाने पर कहा कि 'हम आये हैं नानाजी के घर ॥"
५४६ होकर विस्मिता, गई दोनों भीतर, तो दिखी एक नारी–
जो सब प्रकार से थी लगती उन बालक-द्वय की महतारी ॥
५४७ आयु में बड़ी इन दोनों ही बालाओं से थी, अतः प्रथम–
इन दोनों ही ने कहा 'नमस्ते– उसने, पर न रुका गति-क्रम ॥
५४८ गुरुवर के समीप जाकर ही ठहरीं, कर उनको अभिवादन–
पूछा कि "अतिथि ये तीन कौन, सबसे पहले कीजिये कथन ॥"
५४९ तब तक गुरुभार्या एवं वह तरुणी भी थीं आ गईं निकट ।
उनमें से गुरुआनीजी को दोनों ने किया नमन झटपट ॥
५५० गुरुवर बोले कि "तुम्हारा मैं पहले दे दूँ इसको परिचय ।
इसपुर में क्योंकि तुम्हें आये ही पाया कब है अधिक समय ॥

५५१ ससुराल जा चुकी थी जब यह उसके भी अनेक वर्ष बाद।
तुम दोनों आकर यहाँ बसीं, इसलिए अपरिचय निर्विवाद ॥
५५२ हाँ, तो बेटी शोभा ! तुमको परिचय इनका देता हूँ मैं।
ये दोनों, वर्तमान राजा कुशध्वज की प्यारी बेटी हैं ॥
५५३ 'माण्डवी' बड़ी का नाम तथा छोटी 'श्रुतिकीर्त्ति' कहाती है।
इन दोनों ही से प्रजा सदा सुख चैन सब तरह पाती है ॥
५५४ आत्मीयभाव से जनजन की सेवा में ये रत रहती हैं।
शिक्षण भी बड़ी भक्तिपूर्वक दोनों ही मुझसे गहती हैं ॥
५५५ इनकी जननी-श्री रानीजी-शिक्षण-वेला में विद्यमान–
रहकर देती हैं भलीभाँति मेरे प्रवचन पर पूर्ण ध्यान ॥
५५६ इनमें से भी माण्डवी अधिक सहयोग नृपति को देती है।
शासन की नैया को हो यह मानो बन केवट खेती है ॥"
५५७ कहते रहते गुरुवर्य बहुत, रोकती न यदि माण्डवी उन्हें।
'क्यों अतिशयोक्ति करते भगवन् ! कृपया अब इनका परिचय दें" ॥
५५८ श्रुतिकीर्त्ति लगी कहने कि 'अभी सम्बोधन क्या न सुना तुमने?
दीदी ! ये गुरुवर का पुत्री, पर जाना प्रथम बार हमने ॥
५५९ यह तो न कभी गुरुवर ने या गुरुआनीजी ने बतलाया।
सो, तुम्हें या मुझे पता न था इनकी है भी कोई दुहिता ॥
५६० परिचय पाने से पहले ही, इन दोनों से इसका उत्तर–
लें क्यों न भला; हाँ तो कहिये हे गुरुआनीजी ! हे गुरुवर !"
५७१ "छोटी कन्या है तेज बहुत" यों बोली शोभा यह सुनकर।
कुछ देर चुप रहे विप्र–दम्पती, अभियुक्तों जैसे बनकर ॥
५६२ तब मौन तोड़ गुरुवर बोले "बेटी श्रुतिकीर्ति ! कथन तेरा–
है बिल्कुल ठीक, शिकायत भी सच्ची है, दोष रहा मेरा ॥
५६३ देवी जो तो समझी होंगी मनमें कि कहा होगा मैंने।
इसलिये मुझे दोषी मानो, अपराध से करो मुक्त इन्हें ॥
५६४ पर मैंने भी यह बात छुपाई जानबूझकर नहीं, अरी !
कोई प्रसंग ही नहीं छिड़ा, अ-कथन की, बस यह वजह खरी ॥
५६५ अब सुनो उभय मम शिष्याओं ! जब यहाँ 'सुधन्वा' शासक था।
तब ही इसको, विवाह करके, हम पतिपत्नि ने किया विदा ॥

५६६ तदनन्तर विदेह नृपवर ने उस दुष्ट 'सुधन्वा' को मारा।
तव पिता को बनाया शासक, पर लखा न इसने यह सारा
५६७ इसके दो बच्चे हैं जिनको तुमने देखा होगा बाहर।
जो बड़े सौम्य, शालीन; हमें लगते पुत्रों से भी प्रियतर ॥"
५६८ आ गये खेलते हुए उभय बालक भी सहसा वहाँ तभी।
उनको लख, हुए प्रसन्न, माण्डवी सहित, उपस्थित व्यक्ति सभी
५६९ यद्यपि बाहर थे अभिवादन कर चुके तथापि विनय पूर्वक-
पुनरपि दोनों अतिथिनियों से कह उठे 'नमस्ते' वे बालक॥
५७० गम्भीर बात कुछ होनी हैं, यह समझ, न ठहरे अधिक वहाँ
(सामान्य बालकों में रहती है ऐसी अच्छी सूझ कहाँ ??)
५७१ गुरुवर फिर कहने लगे कि "तुम इतने पर से ही जान सकीं-
हैं कितने होनहार दोनों ये बच्चे; यह पहचान सको ॥
५७२ केकय नरेश की शुभा राजधानी में है विवाहिता यह।
मेरी इकलौती बेटी जो शोभा है चतुरा सभी तरह ॥
५७३ मैं तुम्हें एक दिन सुना चुका रानी कैकेयी की सुकीर्ति।
हैं कंकयेश की पुत्री जो, विख्याता जिनकी क्षात्र-प्रीति ॥
५७४ उस अवसर पर भी, पता नहीं क्यों, छूटा शोभा का वर्णन।
अन्यथा सहज था, मैं तुमसे करता इसका संक्षिप्त कथन ॥
५७५ मेरी अस्वस्थता का सुनकर सम्वाद, स्वयं हो आई है।
बस, एक मास तक ठहरेगी, इतनी ही अनुमति लाई है ॥
५७६ अब, तुम दोनों क्यों आई हो, यह भी तो मुझको बतलाओ।
पर, इससे पहले दुग्ध पियो, थोड़े से फल भी ये खाओ ॥"
५७७ यह सुनते ही, दौड़ी-दौड़ी दोनों तुरन्त पहुँचीं बाहर।
इक इक बच्चे को खिलाया अपने सँग स्नेह सहित ला कर ॥
५७८ फल, दुग्ध उन्हें देकर पहले, फिर उन दोनों ने किये ग्रहण।
तदनन्तर अपने आने का माण्डवी लगी कहने कारण ॥
५७९ "श्रद्धेय गुरो ! सीता दीदी एवं उर्मिला आ रही हैं।
अनुजा समेत, यह समाचार देने को, चलकर आई मैं ॥
५८० मिल गयीं यहाँ शोभा दीदी, कितना अच्छा संयोग रहा।
इससे तो हम दोनों ही ने एक भी न अबतक शब्द कहा ॥"

५८१ श्रुतिकीर्ति, शरारत भरी बात, यों बोल उठी बीच में, तभी–
"मैं ही इनसे बातें करलूँ, तुम चाहोतो मत करो अभी ।।
५८२ फिर जब श्री भरतदेव की बन भार्या, उनके नाना के घर –
जाकर हो रहने का अवसर, तब होंगी ही बातें अक्सर ।।
५८३ मिलती रहलेगी तुम्हें यशोदा, अवधपुरी में रहने पर ।
शोभा दीदी से रहे मिलन, यदि जाओ केकयनृप के घर ।।"

(दोहे)–इस पर गुरुवर ने दिया, बन गंभीर, जवाब ।
सच्चा होकर ही रहे, यह मजाकिया ख्वाब ।।⊙।।९७।।
तीन वार मैं कर चुका, प्रकट आत्म–विश्वास–
यह कि 'माण्डवी की बने कैकेयी ही सास ।।९८।।
आज और भी बढ़ाकर कहता हूँ फिर बात ।
पहले से ही कह चुके जो हैं तेरे तात ।।९९।।

५८४ बेटी श्रुतिकीर्त्ति ! ध्यानधरकर सुनले कि तुझे भी नित्य, अरी
माण्डवी के निकट रहना है, मुझको यह आत्मप्रतीति खरी ।।
५८५ इसलिए यशोदा, शोभा से तू भी मिलती रह पाएगी ।
माण्डवी जहां भी जाएगी, सँग तुझे वहाँ ले जाएगी ।।"
५८६ इस पर शोभा हँस पड़ी, बहुत श्रुतिकीर्त्ति हुई जिससे लज्जित ।
उसने सोचा तक न था कभी, होना पड़ सकता, यों व्रीड़ित ।।
५८७ इन चर्चाओं में था व्यतीत हो चुका यतः पर्याप्त समय ।
गुरुवर से अतः प्राप्त करके अनुमति, प्रस्थित हो गईं उभय ।।
५८८ चलते चलते, फिर मिलने की शोभा दीदी से बात कही ।
(माण्डवी अकेली ही बोली, श्रुतिकीर्त्ति सर्वथा मौन रही ।।)
५८९ इस घटना के छः दिवस बाद, सीता–ऊर्मिला अचानक ही–
आ गईं साँझ को, जब मँगल वेला थी सन्ध्योपासन की ।।
५९० कितनी हर्षित माण्डवी हुई सीता दीदी के आने से ।।

⊙ यतः उस समय सारी बातचीत देववाणी संस्कृत में होती होंगी, यह सुनिश्चित ही है अतः उस किसी भी वार्तालाप को उर्दू शब्दों से युक्त हिन्दी में अनूदित–सा करके लिखना कोई अधिक आक्षेप के योग्य बात नहीं है– अस्तु । ("ओ. प्रे ")

कोई भी कभी न माप सके वह मोद, किसी पैमाने से ॥
५९१ ऊर्मिला-मिलन से जो प्रमोद श्रुतिकीर्त्ति को हुआ तन मन में
उसका भी लेखा हो न सके अच्छे से अच्छे अंकन में ॥
(दोहे) नाच उठा माण्डवी का, मानसरूपी मोर।
मनमयूर श्रुतिकीर्त्ति का भी करता था शोर ॥१००॥
अपनी अपनी प्रिप-घटा, पाकर अपने पास–
दोनों के मन-मोर थे, सुखपूरित सोल्लास ॥१०१
इन दोनों के साथ ही, उन दोनों के नैन–
बरस रहे थे झमाझम, कहीं छुपे थे बैन ॥१०२॥
५९२ कुछ देर बाद, वे चारों ही जब स्वस्थ हुईं, चर्चाएँ तब–
इतने वर्षों की हुईं कई–कैसे क्या हुआ कहां कब कब ॥
५९३ दूजे दिन से, निज कार्यों का विवरण माण्डवी लगी देने।
सीता भी सुप्रश्न कर करके, रस उसमें बहुत लगी लेने ॥
५९४ श्रुतिकीर्ति भी, उधर, अलग; उर्मिला को बतलाने लगी सभी
अब तक वाली गति मति एवं जो प्रवृत्ति रहली चेतन की ॥
५९५ (हम यहां माण्डवी–सीता की बातों का ही संक्षिप्त–सार–
अंकित कहते हैं क्योंकि हमें सीमा का रखना है विचार ॥)
५९६ जब कई दिनों तक वर्णन कर माण्डवी चाहने लगी राय।
सीता दीदी की, ताकि बदल दे भविष्य में अनुचित उपाय ॥
५९७ तब जेष्ठा वैदेही बोली, कर सराहना उस अनुजा की
(श्रुतिकीर्ति और उर्मिला, उभय की ही जो शुभा अग्रजा थी)
५९८ (हां उसी माण्डवी को) सच्चे दिल से, वास्तविक प्रशंसा की
पर एक बड़ी त्रुटि भी, पूरे आत्मीय भाव से, जतलादी ॥
५९९ सीता ने कहा कि "गांवों की एवं विशेषतः खेतों की–
तुमने जो रखी उपेक्षा है, वह, मेरे मत से गलती की ॥
६०० ग्रामों में आर्यावर्त्त रहे, यह महादेश है कृषि–प्रधान।
इसके सारे ही राज्यों में इन दोनों पर हो पूर्ण ध्यान ॥
६०१ ये अत्यावश्यक, मूलभूत हैं तत्व, किन्तु इन पर न कहीं।
तुमने बिल्कुल भी दिया ध्यान, दुर्लक्ष्य कभी यह क्षम्य नहीं ॥

६०२ अब भी है अवसर, इधर ध्यान देकर इस त्रुटि को दूर करो।
केवल नागरिक समुन्नति से मत अपने उर में तोष भरो॥
६०३ मैं दिव्यदृष्टि से लखती हूं—'तुम कीर्त्तिमती बन पाओगी।
निज यशोदेह से अजरामर सचमुच अवश्य हो जाओगी॥
६०४ पर, जैसा मैंने अभी कहा, दुर्लक्ष्य उक्त है क्षम्य नहीं।
सो, दण्ड मिलेगा यही तुम्हें, सत्कीर्त्ति पा सको शीघ्र नहीं॥
६०५ थोड़ा योगज सामर्थ्य मुझे साधना—शीलता ने सौंपा।
उसके द्वारा भविष्य मैंने तुम तीनों बहिनों का देखा।
६०६ केवल यश की ही बात कहूं—किसकिस का होगा कब कैसे ?
अन्यान्य बताऊँ क्यां बातें—देखी तो बहुत अधिक वैसे॥
६०७ है 'कीर्त्तिर्यस्य स जीवति' की जो उक्ति, सत्य उसको जानो।
सो देख रही हूं जैसा कुछ, वह प्रकट करूँ, तुम सच मानो॥
६०८ उर्मिला निरन्तर निकट रहे मेरे, जानूं त्रुटियां उसकी।
कुछ हैं अक्षम्य अपराध तुल्य, भुगतेगी क्यों न सजा उसकी ?
६०९ सबसे भारी जो दण्ड मिले उसको, वह यही कि उसका यश—
फैलेगा लाखों बरस बाद, इस भविष्य में क्या मेरा वश ??
६१० इस वैवस्वत मन्वंतर का यह त्रेता अष्टाविंशतितम—
पूरा समाप्त हो चुके और द्वापर युग भी हो जाय खतम॥%
६११ तब अष्टाविंशतितम कलियुग के प्रथमचरण में * यश होगा।
'उर्म्मिला' नाम का महाकाव्य, हिन्दी में तभी रचित होगा॥
६१२ संस्कृत रहते तब लुप्तप्राय, होगी स्वराष्ट्र--भाषा-- "हिन्दी"-
जो आर्यावर्त देश भर के शुचिभव्यभाल की हो बिन्दी॥
६१३ हाँ, संस्कृतनिष्ठ वही भाषा, कविवर 'नवीन' करके प्रयुक्त—
उस महाकाव्य के प्रणयन से हो पाएँगे सुप्रसिद्धि--युक्त॥

% दोहा क्र० ९७ की पादटिप्पणी को यहां तथा ऐसे ही अन्य सब स्थलों पर लागू मानिए। ('ओ० प्रे०)

* सुप्रसिद्ध 'संकल्प' वाले श्लोक की ओर ध्यान देने से सारी बातें सरलतया समझ में आ सकेंगी अर्थात् मन्वन्तर इत्यादि की बातें। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी इसका उल्लेख किया है—अस्तु। ('ओ० प्रे०')

६१४ उर्म्मिला-कीर्ति हो यों पहले, तदनन्तर सुयश तुम्हारा भी-
फैलाएगा हिन्दी में हीं साधारण व्यक्ति– "ओ३म्-प्रेमी" ॥
६१५ पद्योपन्यास (नव-विधा) में रचना कर देगा वह ऐसी–
देखी या सुनी किसी ने भी कृति मौलिक न हो कभी जैसी ॥
६१६ 'माण्डवी' नाम रखकर उसका● तुमको अजरामर कर देगा।
सत्कीर्ति जब तुम्हारी फैले तब उसका भी सौरभ होगा ॥"
६१७ अतिचकित, चमत्कृत-सी, होकर माण्डवी पूछने लगी बात–
क्या शोभादीदी तथा यशोदा का भावी यश तुम्हें ज्ञात ??
६१८ वह सेठ सुदर्शन गुजराती क्या भविष्य में यश पाएगा ?
अथवा इन तीनों का जग से नामोंनिशान मिट जाएगा ??"
६१९ उतर में यों बोली सीता–"हे सखी ! हे बहिन ! तुमसे ये–
तीनों ही जुड़े हुए रह लें, कैसे मर सकें नाम इनके ??
६२० 'माण्डवी' नाम की जो होगी हिन्दी में पद्यमयी रचना।
वह, संग तुम्हारे ही देगी इन तीनों को भी अमर बना ॥
६२१ पर, अधिक भविष्यत् की बातें कहना, सुनना, अच्छा न कभी।
इसलिए कहूं बस, इतना ही; वर्ना बिगड़ें क्रियमाण सभी ॥
६२२ फिर से, इस त्रेता में ही ला तुमको, मैं करती हूं प्रेरित।
ग्रामों की एवं खेती की उन्नति के हेतु बनो चिन्तित ॥
६२३ यज्ञात्मक पावनसेवा के सत्कार्यों को शुभज्ञान सहित–
परमेशपरायणतापूर्वक इस दिशा में करो परिवर्तित ॥
३२४ वे भी न भूलना शिक्षाएँ, मैंने दी थीं मिथिला में जो।
शायद उनके अनुसार साधना पूर्णरूप से करती हो ॥"
(दोहे) इस पर बोली माण्डवी– "मैं पालूँ वे सर्व।
उनसे तो जीवन रहे मेरा, मानो पर्व ॥१०३॥
फिर भी, यदि कुछ हो कमी, तो कृपया निर्देश–
करो, साथ ही दो मुझे सुधार का उपदेश ॥१०४॥"

● प्रकाशन-पूर्वीय प्रकथन' में देखिए कि (मूलतः) 'माण्डवी' नाम से बाद में 'माण्डवी यह गाथा' क्यों कर दिया गया है। ("ओ० प्रे०")

"एवमस्तु" कहकर उठीं, तब सीता शयनार्थ ।
पीछे पीछे माण्डवी गई इसी कार्य्यार्थ ।।१०५।।



योजनाएं (सप्तम प्रकरण)

(दोहे) दशदिन तो प्रासाद में, सीताजी के संग–
रही माण्डवी प्रीति से, मनमें लिए उमंग ।।१०६।।
पर ग्यारहवें दिन उन्हें लेकर अपने साथ –
गई वहाँ, रहते जहां थे, गुरुवर द्विजनाथ ।।१०७।।
रोगी तो अब थे नहीं तथापि दुर्बल देह–
थी अब भी, इस हेतु वे न थे छोड़ते गेह ।।१०८।।
शिक्षण देने को नहीं, आ पाते थे नित्य ।
पहले जैसे कर नहीं, पाते थे कृतकृत्य ।।१०९।।

६२५ इसलिए माण्डवी गई वहीं सीता दीदी को साथ लिये ।
बाहर थे टहल रहे दोनों बच्चे, हाथों में हाथ दिये ।।
६२३ अब तो परिचिता पूर्णतः थी उनसे माण्डवी, अतः लेकर–
सँग उसे और सीता जी को, वे बालक उभय गये अन्दर ।।
६२७ अभिवादनादि हो चुकने पर यों कहा माण्डवी ने सबसे–
"नृपविदेह की ज्येष्ठा कन्या, मेरी सीता दीदी हैं ये ।।
६२८ इनमें ताऊ जी की प्रतिभा, प्रति विम्बित होती पूर्णतया ।
उन समही इन्हें सुरुचिपूर्वक है ज्ञानार्जन की उत्सुकता ।।
६२९ मिथिला में धर्म–नीति–विषयक जो होते रहते आयोजन–
उन सब में प्रमुख भाग लेकर ये करती उन्नत निज चेतन ।।
६३० सारे मुमुक्षु नारीनर हैं इससे प्रेरणा लिया करते
अनजाने इनके अनुयायी बन, हैं सोत्साह जिया करते ।।
६३१ केवल 'पुत्री, विदेह की, हैं' इतनी ही विशेषता कब है ?
इनमें तो अपितुल्यमं की भी साधनामयी विरली छब है ।।

६३२ योगज सामर्थ्य प्राप्त इनको अद्भुत, जिसका कुछ मुझे पता।
चल सका तब कि जब हम तीनों बहिनों का दिया भविष्य बता॥
६३३ इतने पर भी, अभिमान इन्हें छू तक है गया नहीं बिल्कुल।
हां, आत्म हीनता का मारक विष भी करता न कभी व्याकुल॥
६३४ जब मैं थी मिथिला में, तबही 'मन को वश में करना कैसे ?'
यह मुझे सिखा पायीं ऐसे, उत्तम गुरु कोई हो जैसे ॥
६३५ अब यहाँ पधारीं तो मेरी लेना भूलीं न परीक्षा ये।
सन्तुष्टमना हो गईं कि जब मैं हटी न दिखी सुदीक्षा से ॥
६३६ गुरुआनी सम गौरव रखकर मेरी हैं रहती बनी सखी।
ज्येष्ठाभगिनी रहने में भी मुझको न तनिक-सी कसर दिखी॥
६३७ यों, बहिन-सखी-गुरुआनी के तीनों ही नाते संग संग–
ये, अहा, निबाह रहीं मुझसे, (सात्विक ही सबमें रखें ढंग ॥)
६३८ यह नहीं कि इनकी रहती हो केवल आध्यात्मिक ही गतिमति।
है अपितु ध्यान पूरा पूरा इनका, व्यवहार–क्षेत्र के प्रति ॥
६३९ आत्मीय भाव से त्रुटि मेरी, बतलाकर शुभ–निर्देश दिया।
प्रेरणा पावनी मुझको दे, कृषि में रुचि का उपदेश किया ॥
६४० ग्रामों की ओर उपेक्षा जो मैं अबतक हूँ रखती आई–
वह इन्हें बहुत अखरी, उस पर इनसे झिड़की मैंने पाई ॥
३४१ 'अब ग्राम-विकास तथा कृषि के उन्नयन हेतु योजना बना–
मैं कार्य करूँगी यथाशक्ति,' यह सुन, हा पाईं तुष्ट-मना ॥
६४२ योजना बनाने में देना सहयोग मुझे माना कृपया।
सचमुच इनके आजाने से पाया सेवा न मोड़ नया ॥
६४३ है मुझे नम्र गौरव कि इन्हें मम सेवाकार्य लगा अच्छा।
सब लखा-सुना बारीकी से, कर करके अपेक्षिता पृच्छा ॥
६४४ आपके समक्ष पुनः सादर इनको देती हूँ आश्वासन–
'त्रुटि उभय करूँगी दूर शीघ्र मैं मान इन्हीं का अनुशासन।
६४५ क्या जानूं क्यों मेरा चेतन इनके प्रति अतिशय आकर्षित।
'इनका सदैव रह सके संग' यह रखे साध, बनकर हर्षित ॥
६४६ भीतर ही भीतर है कोई, मेरे आत्मा से कहता यों–
'तेरी इच्छा होगी पूरी, संशय इसमें रखती है क्यों ??'

६४७ जो हो, पर यह तो निश्चित है–मम श्रद्धा सदा रहे इन पर।
इसकी भी आत्म प्रतीति है कि ये स्नेह सदैव रखें मुझपर ॥"
६४८ फिर सीता से यह कहा कि "ये शोभा दीदी हैं सुशोभना।
गुरुवर की इकलौती पुत्री, सौम्या, आर्या, समुदार-मना ॥
६४९ विख्यात 'अश्वपति' राजा की जो शुभा राजधानी, उसमें-
इनकी ससुराल है तथा ये दोनों इनके नन्हे-मुन्ने ॥"
६५० परिचय होने पर लगीं बात करने शोभा एवं सीता।
पर्याप्त समय उन दोनों की रोचक चर्चा में ही बीता ॥
६५१ माण्डवी रही सुनती केवल, उसको रस बहुत आ रहा था।
शुभ वार्त्तालाप, दीदियों का; उर में अत्यन्त भा रहा था ॥
६५२ सहसा यों पूछ उठी सीता–"हे शोभा दीदी! बतलाओ।
क्या त्रुटि-विशेष तुम यहां राज्यशासन या प्रबंध में, पाओ ॥
६५३ दूजे शब्दों में यहकि माण्डवी ने जो किया बहुत कुछ है।
उसमें भारी न्यूनता कहीं क्या कोई दिखती सचमुच है ??"
६५४ (सीता ने सोचा था कि 'नहीं उत्तर ये कुछ दे पाएंगी।
या, मैंने जो त्रुटि बतलाई, बस, उनको ही दुहराएंगी ॥
६५५ पर, यह अनुमान सही न रहा, शोभा ने ऐसे कहे वचन–
जिनसे हो गये प्रभावित सीता और माण्डवी के चेतन ॥)
६५६ बोली शोभा कि "सुता हूं मैं ब्राह्मण की, भार्या ब्राह्मण की।
क्या समझूँ वतलाता त्रुटियां नृपकन्या की या शासन की ॥
६५७ फिर भी, रहती हूं यतः अश्वपति नृपवर की सुप्रजा बनकर–
कहती हूं अतः बड़ी-सी त्रुटि जो मैंने पाई है लखकर ॥
६५८ 'कोई भी अनाहिताग्नि + कहीं दिखपड़े नहीं मम शासन में।'
यह घोषित करते केकयपति, रखकर सबको अनुशासन में ॥
६५९ घोषणा मात्र ही नहीं, अपितु है यथार्थ भी सम्पूर्णतया।
मैं साक्षी हूं कि यज्ञमय है जीवन उस पुर में जनजन का ॥
६६० पुर में ही क्यों, ग्रामों तक में हैं यज्ञशील सब नरनारी।
जनता के धार्मिक विकासहित होते हैं सुयत्न सरकारी ॥

+ अग्निहोत्र न करने वाला। (" ओ. प्रे. ")

६६१ बच्चे से लेकर बूढ़े तक वर्णाश्रम का शुभ 'अष्ट-वाद' ∅
मानते और श्रद्धामयश्रम करते सब हैं, तजकर प्रमाद ॥
६६२ वैदिक सूक्तियाँ, सदर्थ सहित, बालक-बाला छोटे छोटे–
करते हैं याद गुरुकलों में, फिर जीवनभर न बनें खोटे ॥
६६३ शुचि 'ब्रह्मयज्ञ' के सर्वमन्त्र बचपन से ही, सत्क्रिया सहित
हैं नरनारी को सिखलाये जाते, भावार्थयुक्त समुचित ॥
६६४ मेरे छोटे बच्चों को भी सूक्तियां तथा हैं, मन्त्र, याद।
इनके सम ही राज्य के सभी बच्चों में गुण हैं निर्विवाद ॥
३६५ हैं वहां अनेक ओ३म्-प्रेमी; जो परमेश्वर के सत्साधक।
पर, सुधर्म-प्रेमी तो समस्त जन, सेवा-सरि के अवगाहक ॥
६६६ प्रौढ़ों में तथा किशोरों में सच्ची धार्मिकता बसती है।
शालाओं में नैतिकता की शिक्षा बच्चों को मिलती है ॥
६६७ कितना मैं वर्णन करूँ, वहाँ आर्यत्व पनपता सब प्रकार।
सारे ही नरनारी अपने जीवन रखते वेदानुसार ॥
६६८ इस दिशि में कुछ भी प्रगति यहां मुझको दिखपाई नहीं, अ
माण्डवी बहिन! तू यह सुनकर मुझपर बिलकुल भी रुष्ट न हो
६३९ करना चाहिये बल्कि तुझको इन तत्वों पर पूरा विचार।
यदि जँचते हों तो शीघ्र करादे यहाँ, अरी, इनका प्रचार ॥
६७० यह सुनकर तुरत माण्डवी ने योजना बनाना ठान लिया।
सीता ने भी शोभा के शुभ वचनों को पूरा मान दिया ॥
६७१ अगले दिन, सखी यशोदा को बुलवा, दीदी से मिलवाया ॥
कुछ हाल अवध के शासन का उसने दोनों को बतलाया ॥
६७२ (पर, थी कुछ ही दिन रही वहां इसलिए अधिक बतला न स
शोभा की बात दूसरी थी, यह वैसा कुछ दिखला न सकी ॥
६७३ अब सेठ सुदर्शन शेष रहे जिनसे परिचित करवाना था।
सीता दीदी को, तथा उन्हें परिचय, दीदी का, देना था ॥

∅ प्रसंगवशात यहां प्रकट करते हैं कि हमारे पूज्यपाद पिता श्री [श्रद्धेय स्वामी सूर्यानंद जी सरस्वती आर्य सन्यासी (अब दिवंगत)] अपने पावन प्रवचनों में इस 'अष्टवाद' की बड़ी ही उत्तम रोचक एवं प्रामाणिक व्याख्या करते थे। ("ओ० प्रे०)

६७४ पर, इसके लिए माण्डवी ने उपमहापौर को बुलवाया।
उनके द्वारा ही आमन्त्रण उनको, आने का, दिलवाया॥
६७५ निज पूज्य पिताजी के समक्ष बातें करना समुचित जाना।
सो, नृप से किया निवेदन, जो तत्काल उन्होंने भी माना॥
(दोहे) सहसेठानी, आ गये, नियत समय पर सेठ।
निश्चित आसन पर गये वे दोनों ही बैठ॥११०॥
नृपवर, सीता, माण्डवी तथा उपमहापौर।
ये भी सब जब जम चुके अपने अपने ठौर॥१११॥
तब सीता का सु-परिचय देकर भले प्रकार–
परिचित आपस में किया, कह सबके गुण-सार॥११२॥
६७६ फिर कहा माण्डवी ने कि "मुझे सीतादीदी ने जो शिक्षा–
मेरी त्रुटि बतलाकर दी है, उसका वर्णन कर दूँ थोड़ा॥
६७७ सचमुच, गांवों की ओर ध्यान मैंने बिल्कुल था दिया नहीं॥
कृषि के विकास का भी कोई सु-प्रयास भूल से किया नहीं॥
६७८ अब, इनके शुचि निर्देशन में योजना बनाई है मैंने।
जो क्रमशः देखें आप सभी, फिर सभा में रखूँ शीघ्र उसे॥
६७९ इनके सिवाय, शोभा दीदी जो मम गुरुवर की दुहिता हैं।
केकयनरेश की शुभा राजधानी में जो विवाहिता हैं॥
६८० वे यहाँ पधारी हैं कुछ दिन के लिये; उन्होंने भी मेरी–
भारी त्रुटि दर्शाकर ममचित्ति नैतिकशिक्षण दिशि में प्रेरी॥
६८१ सो, वह भी मुझे मिटानी है त्रुटि जो दिखलाई उन्हें यहाँ।
वे श्वसुरालय की बात सुनाती हैं कि प्रगति है बहुत वहाँ॥
६८२ मैंने उनसे कर परामर्श, योजना दूसरी भी निर्मित–
करली है जिसे आप निरखें परखें, तब सभा करें स्वीकृत॥
६८३ कुछ सेठ सुदर्शन जी देना चाहें सुझाव तो दें कृपया।
वास्तव में इसी हेतु उनको, सह सेठानीजी, कष्ट दिया॥"
(दोहे) यह सुन, बोले सुदर्शन– 'धन है सुख का मूल।
पर, तब ही, जब धर्म के, वह रह लें, अनुकूल॥११३॥
धर्म–रहित धन, व्यर्थ है और धन–रहित धर्म।
'दोनों पूरक परस्पर'– यह विकास का मर्म॥११४॥

६८४ इसलिए धर्म के साथसाथ धन पर भी हम दें क्यों न ध्यान ?
व्यापार और पशु-पालन से कौनसा न होता समुत्थान ??
६८५ 'लक्ष्मी व्यापारे वसति सदा' यह सूक्ति अविस्मरणीया है।
पशुओं के संवर्द्धन से भी उन्नति अवश्य करणीया है ॥
६८६ योजना बनाकर मैं दूँगा इस बारे में निज अनुभव से।
विश्वास मुझे पूरा पूरा, वह सबको प्रभूत वैभव दे ॥
६८७ माण्डवीकुमारी ! आप धन्य, जो आत्म निरीक्षण करती हैं।
त्रुटि बतला दे कोई सुविज्ञ तो पुनर्परीक्षण करती हैं ॥
६८८ सुविवेकवती रहकर सच को गह लेने में तत्पर सदैव।
एवं असत्य के तजने को उद्यत, हठ की बिल्कुल न टेव ॥
६८९ सबसे व्यवहार प्रीतिपूर्वक रख यथायोग्य, धर्मानुसार–
आप्तोंसम ही सर्वदा रहे आपका हृदय अतिशय उदार ॥
६९० उपकार-शीलता, जनसेवा, सौम्यता और सन्मित्र-भाव–
आपमें सदा ही रहते हैं, जिनका मिटता कब सत्प्रभाव ॥"
६९१ इतने में गौ का दुग्ध और मिष्टान्न सुस्वादु रखे लाकर–
सबके सम्मुख अनुचरगण ने, संकेत माण्डवी से पाकर ॥
६९२ तब, खानपान से पूर्व, सेठ बोले अपनी सेठानी से–
'क्या तुम्हें नहीं दर्शन करने माण्डवी–मातु रानीजी के ??
६९३ नृपवर तो यहां विराजमान जिनकी हैं ऐसी शुभा सुता।
पर, वह जननी क्यों नहीं दिखे जिनसे उपजी श्रेष्ठा दुहिता ॥
६९४ तुम उठो, उन्हें खोजो, लेकर आओ सादर, तब खान-पान–
दुगुना चौगुना मोद सबको निःसंशय कर पावे प्रदान ॥
६९५ वैसे तो, उस दिन वर्षग्रंथि-उत्सव, माण्डवीकुमारी का–
जब यहां मना था जोरों से, तब यज्ञशेष अत्युत्तम का ॥
६९६ मैं एकाकी था यहां किन्तु दोने दो दो थे प्राप्त किये।
वह मोहनभोग अनूठा था, वाणी कैसे वर्णन कर दे ॥
६९७ अब तुम भी यहीं आ गई हो इसलिए न दुगुना भाग मिले।
पर, ले आओ रानीजी को, तो एक भाग ही दुगुन बने ॥
६९८ यानी, उनके दर्शन से जो होगा सुमोद, वह जुड़ने पर–
स्वादुता बढ़गी कई गुनी, चाहे 'दो' का न मिले अवसर ॥"

(दोहे)–विनोद में भी सेठ ने कही पते की बात ।
सुन जिसको, पुलकित हुए उपस्थितों के गात ॥११५॥
पति की आज्ञा मानकर सेठानी तैयार–
ज्योंही उठने को हुईं त्योंही महिला चार–॥११६॥
सम्मुख से आती दिखीं, दो बच्चे थे साथ ।
"स्वयं वे लखो आगईं"– बोल उठे नरनाथ ॥११७॥

६९९ श्रुतिकीर्ति, उर्मिला, शोभा; ये तीनों सँग थीं रानी जी के ।
दोनों प्यारे प्यारे बच्चे श्री गुरुवर के नाती ही थे ॥
७०० जब पारस्परिक 'नमस्ते' सब कर चुके सु-परिचय भी पाकर ।
तब खान पान प्रारम्भ हुआ, तत्पर थे सेवा में चाकर ॥
७०१ होती जाती थीं विनोद की बातें भीं सब में खूब वहाँ ।
(पर आर्योचित मर्यादा का हो पाया कुछभी विलय कहाँ ??)
७०२ बनगये स्वयम्भू नेता थे श्री सेठ सुदर्शन विनोद के ।
सारा ही वातावरण वहां भर उठा अनूठे प्रमोद से ॥
७०३ तदनन्तर बोलीं रानी जी–"मैं उपाध्याय जी के घर को–
श्रुतिकीर्ति, उर्मिला, सहित गई थी, मिलवाने उनसे इसको ॥
७०४ केवल सीता के साथ वहां माण्डवी उस दिवस हो आई ।
पर नहीं उर्मिला बेटी तो उनके दर्शन थी कर पाई ॥
७०५ फिर, जबसे वे बीमार हुए तब से मिल सकी न थी मैं भी ।
शिक्षण वेला में प्रवचन हूँ सुनती, सो मम गुरु भी हैं ही ॥
७०६ उनकी यह इकलौती पुत्री–शोभा–वर्षों में आई है ।
अपने सुत–द्वय को प्रथमवार निज पितृनगर में लाई है ॥
७०७ सुन रखी प्रशंसा थी इसकी, सो मिलना, जाकर ही, ठाना ।
मैंने अनुचित समझा इसको नौकर चाकर से बुलवाना ॥
७०८ ये बच्चे, कई मन्त्र एवं वैदिक सूक्तियाँ सुनाते हैं ।
कितने ही उत्तम श्लोक बड़े ही मधुर कण्ठ से गाते हैं ॥
७०९ शोभा एवं इन बच्चों को साग्रह सँग लेकर आई हूँ ।
अपनी अनुपस्थिति की इससे क्या सच्ची अधिक सफाई दूँ ॥"

७१० उप महापौर बोले कि "माण्डवी जी ! बच्चों को प्रेरित क
कृपया सुनवाएँ हम सबको रानी जी- शंसित इनका स्वर।
७११ कर प्यार-भरा अनुरोध, कहा बच्चों से तुरत माण्डवी ने।
अनुमति, आँखों से ही देदी पुत्रों को शोभा देवी ने ॥
७१२ तब वैदिक सूक्ति, मन्त्र एवं श्लोकों का उत्तम हुआ गान।
आनन्द सिन्धु में सब डूबे, अगजग का रहा न तनिक भान।
७१३ गा चुके उभय बालक, तब सब इक साथ कह उठे- 'वाह वा
फिर पुरस्कार भी दिया कि जिससे कई गुना हो समुत्साह
७१४ बोली शोभा कि "अश्वपति शुचि केकय नरेश के शासन में
सारे बालक बालाएँ हैं अत्यन्त कुशल वर गायन में ॥
७१५ हाँ, वहाँ पाठशाला में ही यह पाठ पढ़ाया जाता है।
जिससे प्रत्येक नागरिक में शुचि धर्म भाव जम पाता है ॥
७१६ मैंने सब कुछ विस्तार सहित माण्डवी से कहा था उस दिन
इसने योजना बनाली है, अब यहां भी उगेगा शुभ दिन ॥
७१७ जब धार्मिक भाव युक्त होने लग जाएँगे बच्चे सारे।
केकय–सुदेश के बच्चों सम होंगे तब उत्तमता धारे ॥
७१८ मैंने एवं सीता ने वह योजना, माण्डवी की, देखी।
उसमें आवश्यक हेरफेर करने की सलाह भी देदी ॥
७१९ अब, आप करायें संसद् में स्वीकृत उसको सब मिलजुलकर
फिर क्रियान्वयन में सहयोगी, माण्डवी के, बनें, सब जुटकर।
७२० यह नहीं यहां रह पाएगी, वैसे ही मैं न रहूँ जैसे।
पर इसकी चलती रहें योजनाएँ, कीजिये जतन ऐसे ॥"
७२१ नृप तभी बीच में बोले यों–"मैं धार्मिकता की सु–योजना–
करवाना चाहूँ कार्यान्वित श्री उपाध्याय जी के द्वारा ॥
७२२ निज विशेषाधिकारों से इसका मन्त्री उन्हें बनाता हूँ।
इस नियुक्ति की संपुष्टि, सभा कर देगी, प्रतीति रखता हूँ ॥
७२३ दूसरी योजना पशु पालन एवं व्यापार हेतु सत्वर–
श्री सेठ सुदर्शन कर देंगे तैयार, कहा जब खुद होकर ॥

७२४ मैं उस विभाग का इन्हें बनाता हूँ मंत्री आज से, अहो ।
ये ही देखें कि क्रियान्विति में उसकी, बिल्कुल भी ढील न हो ।।
७२५ ग्रामोन्नति एवं कृषिवाली योजना तीसरी उत्तम जो–
उपमहापौर जी की नियुक्ति करता हूँ उसकी सु-पूर्त्ति को ।।
७२६ माण्डवी यहीं जब तक है, यह सम्भव तब तक तो रह लेगा–
इसकी प्रतिभा एवं श्रम से लाभान्वित होना हम सबका ।।
७२७ पर, विवाहिता होकर यह जब जाए तब भी हों बन्द नहीं–
इसकी सिंचिता योजनाएं, पड़ जायँ न कुछ भी मन्द कहीं ।।
७२८ बेटी शोभा के समान ही जब कभी माण्डवी फिर आवे–
तो क्रियान्वयन इन सभी योजनाओं का, भलीभाँति पावे ।। "
७२९ यह सुनकर सीता ने भी, ले नृप से अनुमति, यों कहे वचन–
(जिनका महत्व सबने आँका, जो थे रसमय, पावन, शोभन)
७३० बोली कि "नारियों की विशेष उन्नति दिख पड़ती नही यहाँ ।
महिलाओं के उन्नयन बिना, सच्चा विकास हो शक्य कहाँ ??
७३१ सो; मेरा है प्रस्ताव कि 'सेठानीजी पर कार्यभार इसका–
डाला जावे' जिनके पति ने स्वेच्छा से गही नागरिकता ।।
७३२ चाचीजी करें मार्गदर्शन इनका, एवं माण्डवी सदा–
(यानी जब तक है यहां) इन्हे (तब तक) दे योगदान पूरा ।।
७३३ आशा करती हूँ, चाचीजी एवं सेठानी जी मिलकर–
महिलोन्नति की दिशि में देंगी परिणाम शीघ्र ही अतिहितकर ।।
७३४ नृप ने तुरन्त स्वीकार किया प्रस्ताव, भतीजी का, उत्तम ।
था समय बहुत हो चुका, अतः कर दिया समाप्त कार्य का क्रम ।।



नवल विधान (अष्टम प्रकरण)

७३५ दोनों वैदेही को आये, इक मास हुआ पूरा जिस दिन ।
बिल्कुल प्रभात में सीता से माण्डवी लगी कहने उस दिन ।।

७३६ "हे दीदी ! पहली वार आज आया है स्वप्न, वह कहूँ मैं-
देखा कि हो रहीं व्यग्र बहुत, तुम उभय हेतु ताई जी हैं ॥
७३७ क्षण में हूं निकट तुम्हारे मैं, क्षण भर में उनके पास वहां-
ताऊजी से आग्रह लीना मुझको ताई जी दिखें जहाँ ॥
७३८ कहती जाती हूँ आ आकर तुमसे कि अब कहा किसने क्या
तव जननी तथा जनक में जो मुझको लेकर सम्वाद हुआ ॥
७३९ ताईजी कहती थीं कि "माण्डवी सहित बहिन चारों ही ये-
रहने वाली हैं एक जगह जीवन भर, यह तो निश्चित है ॥
७४० फिर उसके पास रहे सीता, श्रुतिकीर्त्ति समीप उर्म्मिला हो
यह अभी अनावश्यक विल्कुल, सो कन्याद्वय को बुलवा दो।
७४१ वे दोनों मेरे निकट और कुछ समय क्यों नहीं रह पाएँ।
बाद को पता क्या है कि यहाँ श्वसुराय से न कभी आएँ ॥'
७४२ ताऊजी कहते थे कि 'अगर सच यह अनुमान तुम्हारा हो।
तब भी मैं नहीं माण्डवी का दिल तोड़ूँगा, चाहे जो हो ॥'
७४३ इस पर झुंझलाकर ताईजी बोलीं कि 'हृदय को, जननी के
तुम नहीं परख सकते, कितने हीं बड़े विवेकी हो चाहे ॥
७४४ अन्यथा, बात ऐसी न कभी कहते कि माण्डवी के दिल को-
तोड़ूँगा नहीं; भला सोचो, मेरे प्रति क्या न यह अनय हो?
७४५ उसके दिल का तो ध्यान तुम्हें, पर माँ के दिल को भुला दें
क्या उपाय ऐसा है कोई जिससे मुझको मम इष्ट मिले ॥
७४६ यह सुन, ताऊजी फिर बोले—'यदि करे माण्डवी ही अनुभव-
व्यग्रता तुम्हारी किसी भांति, तो इष्ट-प्राप्ति होनी सम्भव ॥
७४७ बस, इतने में खुल गई आँख, तबसे ही नींद नहीं आई।
यह पहला सपना, जीवन में, देखा है जिस पर घबराई ॥"
७४८ सीता बोली कि "न जाने क्यों, मेरा जी भी उचटा जाता।
कहना चाहती न थी तुझसे, पर चित्त बहुत है अकुलाता ॥
७४९ मिथिला वापिस जाने का मैं कल से हो करती हूं विचार।
पर तेरे डर से प्रकट नहीं कर पाई अपना हृदय-भार ॥"
(दोहे) तभी आ गये अचानक वहाँ [illegible] भूप।
जिनके आनन पर सदा, व्यापा तेज अनूप ॥११८॥

पत्र एक था हाथ में, नृप थे चिन्ता–लीन ।
नित्य-समान दिखे नहीं वे संताप विहीन ॥११९॥
वल्कि वड़े ही खिन्न थे और वहुत गम्भीर ।
ऐसा लगता था कि हैं उर में अमित अधीर ॥१२०॥

७५० आते ही कहा कि "तुम दोनों, वेढव यह सुनो वात मेरी ।
दोनों वैदेही को वापिस भेजूँ, मैं अब न करूँ देरी ॥
७५१ मन, ईश भजन में, लगा नहीं मेरा, व्यग्रता बढ़ी भारी ।
सो, आया हूँ इन दोनों के जाने की, करने तैयारी ॥
७५२ ऐसा अनुभूत हुआ मुझको- भाभी हैं मेरी, परेशान ।
कन्याओं के न पहुँचने से वे वहुत ही अधिक बनीं ग्लान ॥
७५३ अग्रज ने भेजा था मुझको जो पत्र, वह पुनः अभीं दिखा ।
दैनिक स्वाध्यायग्रंथ में ही उस दिन मैंने था उसे रखा ॥
७५४ सहसा प्रातः से पृष्ठ वहीं मेरे समक्ष आ गया आज ।
अग्रज का पत्र, मौन बनकर, था रहा, अहो जिसमें विराज ॥
७५५ उसकी विशेषतः एक पंक्ति ले आई यहाँ अभी मुझको ।
सीते ! पढ़कर देखो इसको, माण्डवी ! पुनः तुम भीं पढ़लो ॥
७५६ में पूज्या मानूँ माता-सी जिनको, उन भाभी विषयक ही–
पत्र की पंक्ति मानो कहती--'वैदेही–द्वय चल पड़ें अभी ॥
७५७ इक मास हो गया पूर्ण आज, सो न तो वहुत जल्दी, न देर–
वापिस लौटाना उचित इन्हें, अब करूँ न कुछ भी हेरफेर ॥
७५८ निश्चय है मेरा अटल, तुम्हें सूचना–मात्र देने आया ।
चाहे मैं क्रूर लगूँ तुमको, पर मैंने तय कर सुख पाया ॥"
७५९ माण्डवी तथा सीता नें तब अपने अपने स्वप्नादि कहे ।
तिहरा संयोग निरख नृपवर बनकर अति विस्मित, खड़े रहे ॥
७६० कुछ समय रही चुप्पी बिल्कुल, फिर अनुचर एक उधर आया ।
'हो समुपस्थित उर्मिला अभी' यह नृप ने उससे कहलाया ॥
७६१ आदेश सुना अनुचर द्वारा चाचा जी का उसने ज्योंही ।
आगई तुरन्त उर्मिला भी, सब अन्य कार्यक्रम तज, त्योंही ॥

७६२ नृप-निर्णय सुनकर विस्मित हो सीता से पूछा नैनों में-
बतलाया सब विस्तार सहित उत्तर दे जिसने बैनों में ॥
७६३ तब तक रानी जी भी आईं, नृपवर ने थोड़े में उनसे-
कह दिया सभी जो हुआ यहाँ था, उनके आने से पहले ॥
७६४ पति से कर व्यक्त पूर्ण सहमति, वैदेही-द्वव को रानी जी-
करने तैयार लगीं झटपट, जिससे न खिन्न हों जेठानी ॥

(दोहे)-रथ मँगवाया भूप ने, रखवाया सामान ।
मग-सुविधा पर भी दिया पूरा पूरा ध्यान ॥१२१॥
दुग्ध सहित करवादिया, उत्तम स्वल्पाहार ।
चाची जी ने बहुत फिर किया उभय को प्यार ॥१२२॥

७६५ उनके द्वारा सन्देश भेजना भी वे नहीं भूल पायीं ।
जो बातें सोच रखी थीं वे अविकल रूपेण कहलवायीं ॥
७६६ माण्डवी दिखी तो सर्वाधिक ही उदास फिर भी बोली यों-
"सीता दीदी ! सपना मुझको यह प्रथमबार आया ही क्यों?!
७६७ फिर, तुम्हें सुनाया क्यों मैंने ? अन्यथा कुछ दिनों अधिक ठहर-
तुम नेक सलाह मुझे देतीं, एक से एक जो बढ़चढ़ कर ॥
७६८ सुख एक साथ आ गया बहुत, फिर एक साथ ही चला गया।
शोभा दीदी जा चुकीं, यशोदा ने भी तो प्रस्थान किया ॥
७६९ तुम तथा उर्मिला, कुछ क्षण की अब अतिथि रहगई हो, दीदी !
हाँ, एक नई संगिनी मिलीं मुझको गुजराती सेठानी ॥
७७० तुमने उनको नारी-विकास वाले विभाग की मन्त्राणी-
प्रस्तावित करके बनवाया; घटना यह रही सु-कल्याणी ॥
७७१ उपमहापौर, गुरुवर एवं श्री सेठ सुदर्शन जी; मन्त्री-
तव समक्ष पूज्य पिता जी ने हैं घोषित किये श्रेष्ठ-कर्मी ॥
७७२ एवं पूज्या माता जी पर जो डाली है जिम्मेदारी-
तुमने, करके पूरा विचार, इस पर है मुझे मोद भारी ॥
७७३ आश्वस्त मैं तुम्हें करती हूँ, भरसक इनका सहयोग करूँ ।
अपनी सेवायें इन सबको अर्पित करने पर ध्यान धरूँ ॥

७७४ इसके अतिरिक्त, पिताश्री की पूरी सहायता सब प्रकार–
करनी है इष्ट सदैव मुझे जिससे इनका घट सके भार ।।
७७५ श्रुतिकीर्त्ति भ्रान्ति में पड़ जाया करती है सो उसकी भी तो-
रखनी है चिन्ता नित्य ताकि उसका जीवन उपयोगी हो ।।
७७६ इतना सब कुछ करती रहकर आत्मोन्नति के सदुपाय सदा–
मैं करूँ यत्नपूर्वक, रखकर श्रद्धा कल्याणमयी वरदा ।। ∅
७७७ बस, यही महत्वाकांक्षा है मेरी – इसको ओंकारनाथ –
करदें कृपया पूरी, उनसे मांगती यही मैं झुका माथ ।।
७७८ तुम भी मँगलकामना करो ममहित, दीदी ! एवं मुझको–
आशीष दो कि मैं सफल बनूँ, मुझसे आमोद मिले सबको ।।"
७७९ केवल "तथास्तु" ही कहपाई सीता, रुँध गया कण्ठ उसका ।
पर पीठ थपथपाकर शाबाशी देना अपना प्रकट किया ।।
(दोहे) [आपस में सब अन्य भी मिले, किन्तु विस्तार–
करें न हम, रख विषय की सीमा का सु-विचार ।।]।।१२३।।
सीता एवं उर्म्मिला, रथ में हो आसीन ।
मिथिला को प्रस्थित हुई, रह न स्वचनाधीन ।।१२४।।
७८० वैदेही-द्वय के जाने पर माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति उभय ।
कुछ दिन तो बहुत उदास रहीं, फिर किया कार्यक्रम का निश्चय
७८१ 'कोई न समय खोया जावे' इस पर उनका था नित्यध्यान ।
'क्या वर्त्तमान का है महत्व' इसका रखती थीं पूर्णज्ञान ।।
७८२ परमेश्वर निराकार का जो हैं 'महाकाल' शुभसत्यनाम ।
उसका सक्रिय पूजन करना, था इष्ट, माण्डवी का, ललाम ।।
७८३ अनुजा से उसने कहा कि 'जो प्रातः सायं सन्ध्योपासन⊙
ओंकारेश्वर प्रभुवर का मैं करती हूँ सो आंशिक अर्चन ।।

∅ पीछे, प्रियछंद क्र० ३ १ में जो पादटिप्पणी हमने लिखी है, वही यहाँ भी सम्बद्धा समझिये । ("ओ० प्रे०")

⊙ प्रातःकाल एवं सायंकाल ही संधिवेलाएं आप्तों ने मानी हैं । इनमें जो परमेश्वरोपासन किया जाता है उसे सन्ध्योपासन कहते हैं, यह सन्ध्योपासन मात्र नहीं है । ("ओ० प्रे०)

७८४ उसमें समग्रता लाने का यह उपाय मैंने तो ठाना–
'रख समय विभाग नियत अपना, सर्वदा कर्मरत रह पाना॥'
७८५ शोभा दीदी भी कहती थीं ऐसा ही तो मुझसे उस दिन–
धार्मिक-विकास की बना योजना मैंने बतलाई जिस दिन॥
७८६ उसमें आवश्यक संशोधन करके यों कहा उन्होंने था–
'माण्डवी ! सदा तुम रखो याद–'ज्यों हो राजा त्यों बने प्रजा'।
७८७ राजा से एक व्यक्ति का हो आशय चाहिये नहीं लेना–
इसमें सम्मिलित सभी वे जो शासन द्वारा करते सेवा ॥
७८८ किंवा जो राजतन्त्र के हैं पुर्जे, वे सारे नरनारी।
अर्थात् रहे जिन पर कोई राजा–प्रेरित जिम्मेदारी– ॥
७८९ उन सबका है कर्त्तव्य कि वे बिल्कुल खोवें न समय अपना।
अन्यथा रहे राष्ट्रोन्नति का सुन्दर विचार, कोरा सपना ॥"
७९० केकय के नृपति अश्वपतिजी का उदाहरण उन दीदी ने–
था दिया मुझे जिसकी सराहना भी की सीता दीदी ने ॥
७९१ शोभा दीदी ने कहा कि 'वे भूपति सर्वदा कार्य–रत ही–
रहते हैं, इतनी अधिक आयु उनकी हो चुकने पर अब भी ॥
७९२ उनके सुपुत्र, युवराज युधाजित् भी बिल्कुल उनके समान–
रखते हैं, उत्तम क्रियाशील रहने का ही पूर्णतः ध्यान ॥
७९३ फलतः उनके समस्त परिजन, बच्चे से लेकर बूढ़े तक–
हैं करते रहते एक एक क्षण, मानव जीवन का, सार्थक ॥
७९४ मन्त्रीगण एवं अन्य राज पुरुषों को भी तो इस कारण–
करनी पड़ती है समय-पालिका–सुवृत्ति पूर्णतया धारण ॥
७९५ यों 'राजा' में जो जो शामिल, वे जबकि समय का ध्यान रखें-
तब क्यों न प्रजा के नारीनर करते, उनका अनुकरण दिखें ॥"
(दोहे)–उभर उठा श्रुतिकीर्ति में शैतानी का भाव ।
यद्यपि पहले सा नहीं अब था उग्र प्रभाव ॥२२५॥
फिर भी, कहदी तुरत ही, यह शरारती बात–
(बिन सोचे कि न हो कहीं पुनः करारी मात ॥१२६॥
गुरुवर के घर मात जो उस दिन खायी एक।
भूला था बिल्कुल उसे अनुजा का सुविवेक) ॥१२७॥

७९६ बोली अग्रजा माण्डवी से अनुजा श्रुतिकीर्ति बात ऐसी–
पहले भीं जब–तब कई बार वह कहती आयी थी जैसी ।।
७९७ यों कहा कि "दीदी ! उनमें ही कैकेयी जी भी तो होंगी ।
जब तक न बनीं दशरथ जी की वे विवाहिता भार्या तीजी ।।
७९८ तब उनकी भी सबके सँग सँग होगी यह उत्तम पड़ी टेव ।
सीखे होंगे उनसे उसको उनके सुपुत्र–श्री भरतदेव ।।
७९९ क्या नहीं यशोदा से तुमने पूछा इस बारे में कुछ भी ?
निज समय बिताने की दैनिक है रीति नीति कैसी उनकी ??
८०० तब मनोनीत भर्तासम ही यदि करो तो बहुत उत्तम हो ।
आदत पड़ जाय अभी से, तो आगे रहके सुविधा तुमको ।।"
८०१ इस पर बोली माण्डवी-"बात, प्यारी श्रुतो ! क्यों भूली वह-
जो गुरुवर ने थी कही कि दोनों साथ रहोगी एक जगह ।।
८०२ उनकी यह आत्म प्रतीति कभी हो सकती नहीं असत्य, अरी ।
अब सोच कि तू निज घेरे में क्या नहीं इस तरह स्वयं घिरी ??
८०३ इसके सिवाय, उत्तम गुण तो यों ही क्यों, सारे नर नारी–
धारें, यह परमावश्यक है, वह टेव सर्वथा हितकारी ।।
८०४ श्री भरतदेव निःसंशय ही उनकी माता जी से शिक्षण–
पाकर ऐसे रहते होंगे जिससे न व्यर्थ हो कोई क्षण ।।
८०४ पूछा तो नहीं यशोदा से मैंने विशेषतः यह सवाल ।
पर, कहा कार्यक्रम जो उसने उनका, उस पर से यही ख्याल ।।
८०६ हाँ, मेरा दृढ़ अनुमान है कि वे सदा समय का सदुपयोग–
सम्पूर्णतया करते होंगे, लखने का पाऊँगी सुयोग ।।"
८०७ झेंपी श्रुतिकीर्ति, बात उसने यों बदली, झेंप मिटाने को–
"दीदी ! उद्यत हूँ गाँव गाँव में संग तुम्हारे जाने को ।।
८०८ जो ग्राम विकास तथा कृषि के उन्नयन हेतु है बना रखी–
तुमने योजना बड़ी अच्छी, अब चर्चा अपन करें उसकी ।।
८०९ सीता दीदी ने भी जिसको देखा है बल्कि सुधारा है ।
भाती वह मुझे, क्योंकि निर्भर खेती पर स्वदेश सारा है ।।

८१० यदि अपना यह लघुराज्य स्वावलंबी रहता है कृषि द्वारा-
तो इसको लखकर सुधरेगा क्रमशः यह महादेश प्यारा ॥
८११ स-विशेष किया इसका मैंने उल्लेख यों, कि है सर्व प्रथम-
राजात्मक प्रजातन्त्र पद्धति इसमें ही शासन की, अनुपम ॥
८१२ जिसका सर्वाधिक श्रेय तुम्हें, यह मैं ही नहीं कहूँ केवल।
अति कृतज्ञ अपितु प्रजा सारी कहती, रख श्रद्धाभाव अचल॥
८१३ तव जन्मदिवस पर समारोह उत्तम करके वह किया प्रकट।
जो उसे तुम्हारे प्रति हार्दिक विश्वास तथा आदर उत्कट ॥
८१४ पर, तुम से भी त्रुटि रही, सुधारी सीता दीदी ने जिसको।
निज भूल मानकर सत्यग्रहण करना, आहा,बस, तुम सम हो॥
८१५ दूजी त्रुटि, शोभा दीदी ने धार्मिक शिक्षण के बारे में—
जो बतलाई वह भी तुमने मानी, अरुष्ट रहकर मन में ॥"

(दोहे)—यह सराहना स्वयं की, आई नहीं पसन्द ।
कर सुयुक्ति माण्डवी ने उसे कराई बन्द ॥१२८॥
कहा कि "श्रुत्तो ! बदल तू चाहे जितनी बात ।
पर है खाई दूसरी बार करारी मात ॥१२९॥
शैतानी वाले वचन अब तो कहना छोड़ ।
मन-घोड़े को यत्न से उचित दिशा में मोड़ ॥१३०॥

८१६ कैसे चेतन का मन पर हो शासन, यह सब मैंने तुझ से—
तब थोड़े में था कहा कि जब तूने प्रतिप्रश्न किया मुझ से ॥
८१७ क्या इतनी जल्दी भूल गई चिति के गौरव की वह शिक्षा—
सीता दीदी के समुल्लेखपूर्वक जिसकी दी थी दीक्षा ॥
८१८ हाँ, तो जिन शोभा दीदी की तूने छेड़ी है बात अभी--
उनकी ही बातों का वर्णन तेरे प्रति करती थी मैं भी ॥
८१९ पर, तूने उसे बीच में ही काटकर, शरारत--भरे वचन—
कहने आरम्भ किये, जिनसे मेरा अगला रुक गया कथन ॥
८२० अब वही सूत्र, अनजाने ही, जुड़ सका पुनः तेरे द्वारा ।
जब शोभा दीदी का तूने शुभ नाम लिया प्यारा प्यारा ॥

८२१ सो आगे बात बढ़ाऊँ मैं वह, कालार्चन की ही पावन ।
जो अतिशय भाती है मुझको, सँवरे भी जिससे जन-जीवन ॥
८२२ धार्मिक शिक्षण की सु-योजना, शोभा दीदी की सहमति से--
मैंने जो बना रखी है, वह इस बारे में भी नियम रखे ॥
८२३ व्यर्थ ही समय खोने वाले, अपराधी माने जाएँगे ।
राष्ट्रीयहानि के दोषी ही शासकगण उनको पाएँगे ॥
८२४ गप्पें, व्यर्थ की, हाँकने में जो अपना समय गँवाएँगे–
वे, अर्थदण्ड भारी, विधानतः होकर विवश, चुकाएँगे ॥
८२५ हो रहा समय का सदुपयोग या होता रहता दुरुपयोग ।
इसकी चाहें जब जांच कर सकेंगे शासन के नियत लोग ॥
८२६ 'निज निज वर्णाश्रम के स्वधर्म, पालन करने में पूर्णतया–
रहकर तत्पर नारीनर सब करलें नित काल-क्षेप अपना' ॥
८२७ अनिवार्यतया प्रत्येक व्यक्ति यह नियम सदा मानेगा ही ।
ऐसी मैंने पूरी पूरी उसमें स-विवेक व्यवस्था की ॥
८२८ फिर, पूज्य पिताश्री ने भी तो यह विभाग सौंपा गुरुवर को ।
जिनसे अनुशासित रहने पर इस ओर प्रगति अतिसत्वर हो ॥
८२९ शिक्षण वेला में ही कितना वे रखते ध्यान, समय का, हैं ।
अतिकाल नहीं होने देते, चाहे माताजी भी चाहें ॥
८३० अब तो धार्मिक विभाग के वे मंत्री हैं अतः कुछ अधिक ही–
पालन करने में, समय, और पलवाने में होगी सख्ती ॥"
८३१ इतने में रानीजी आकर बोलीं दोनों दुहिताओं से–
'माण्डवी और श्रुत्तो ! सुनलो, शिक्षणक्रम चलना है फिर से ॥
८३२ सन्देश मिला था गुरुवर का– आज से करें वे शुभारम्भ ।
पर भूल गयी थी मैं, इससे कहने में हो पाया विलम्ब ॥
८३३ जो समय कहलवाया था सह सन्निकट आ चला है बिल्कुल ।
वे पधारने ही वाले हैं, उनका तो निश्चित है पल-पल ॥"

(दोहे) इतने ही में आ गये, गुरुवर भी उस ठौर।
(मन्त्री अब थे, पर नहीं बदले जिनके तौर ॥) ॥१३१
तीनों को देने लगे, शिक्षण, पूर्व–समान।
योंकि उँडेले जा रहे मानों अपना ज्ञान ॥१३२॥

(नवम प्रकरण) विद्यालंकृता और मन्त्राणि

८३४ श्री उपाध्याय जी ने दोनों शिष्याओं को ऐसा शिक्षण–
इस बार दिया जिससे उनकी योग्यता रही बढ़ती प्रतिक्षण।
८३५ शिक्षण बेला में कोई भी ऐसा क्षण कभी न था जाता–
जिसमें न अधिक वृद्धिगत हो उन दोनों की बौद्धिक क्षमता॥
८३६ वैसे तो, थीं रानी जी भी, शिष्या-समही उन गुरुवर की।
पर कन्याओं को तैयारी करवाई गई परीक्षा की ॥
८३७ माता केवल सुनती रहतीं, जैसा था नृप का समादेश।
इतने से ही मिल सका उन्हें श्री उपाध्याय का सदुपदेश ॥
८३८ माण्डवी तथा श्रुतिकीर्त्ति, परीक्षा देने पहुँचीं यथा समय।
कन्या-गुरुकुल की प्राचार्या ने अनुमति दे दी बन मुदमय ॥
८३९ गुरुवर ने क्योंकि पाठ्यक्रम वह, शिक्षण में सम्यक् तया रखा।
जो था कन्या गुरुकुल की पाठनविधि में विवरण सहित लिखा
८४० सर्वोच्च परीक्षा में दोनों सम्मिलित हुई थीं राज-सुता।
('विद्यालंकृता' नामवाली जो थी अतिशय सम्मान-युता ॥)
८४१ गुरुवर अस्वस्थ कुछ मास रहे, वैदेही-द्वय भी थीं आई।
इन दो कारण से नहीं पढ़ाई बहुत समय तक हो पाई ॥
८४२ फिर भी, विचक्षणामति वाली माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति उभय।
बैठीं सर्वोच्च परीक्षा में, था उनको नहीं तनिक संशय ॥
८४३ लेखिक मौखिक दोनों ही जब हो चुकीं परीक्षाएं उनकी–
तब आत्मप्रतीतिमयी उनको रहे गयी प्रतीक्षा थी फल की ॥

८४४ इस बीच, माण्डवी ने श्रम से तैयार स्वरूप किया अन्तिम।
उन उभय नवीन योजना का, दीदियों-प्रेरिता जो उत्तम ॥
८४५ श्री सेठ सुदर्शन से कहकर व्यापार और पशु-पालन की–
योजना तीसरी भी सत्वर बनवाई, कसक मिटी मन की ॥
८४६ अब तक थी उर में यही टीस, माण्डवीकुमारी को प्रतिपल।
'तैयार नहीं योजना अभी हो पाई, शुरू न हुआ अमल ॥'
(दोहे) पर, अब दिल का दर्द यह, दूर हुआ सब तौर।
बना हुआ था जो सभी दर्दों का सिरमौर ॥१३३॥
सेठ सुदर्शन-कृत लखी सु-योजना तत्काल।
निज संशोधन भी दिये, कर कुछ कठिन सवाल ॥१३४॥
८४७ विधिपूर्वक रखीं सभा में वे, स्वीकृत भी सयत्न करवाई।
पहले जैसी ही सर्वसम्मता ये तीनों भी हो पाईं ॥
८४८ नृप ने की थीं जो नियुक्तियाँ, उनकी संपुष्टि, माण्डवी ने–
प्राप्त की सभा से, करतल ध्वनि के मध्य (शुभा सुकुमारी ने)
८४९ उपमहापौरजी सुस्थायी कृषिमंत्री बने आज से थे।
श्री सेठ सुदर्शन भी मन्त्री, व्यापार और पशुपालन के ॥
८५० उनकी पत्नी (सेठानी जी) नारी विकास के विभाग की–
मंत्राणी सुखदायिनी बनीं तत्काल सभा की मुहर लगी ॥
८५१ श्री उपाध्याय जी भी मंत्री, धार्मिक विभाग के, सु-स्थायी–
हो गये आज से (जो कि धर्म-धारक, ज्ञानी थे वरदायी)
८५२ इन चारों की नियुक्तियों के अतिरिक्त, माण्डवी को नृप ने–
बिन विभाग की मन्त्राणी ⋔ का पद सौंपा अति गद्गद् मन से ॥
८५३ 'माण्डवीकुमारी की जयजय'% ध्वनिगूँज उठी संसद में तब–
इस नियुक्ति की संपुष्टि की गई भारी समुत्साह से जब ॥

%न चाहते हुए भी, प्रचलनानुसार 'जय' को स्त्रीलिंगी पदमान कर लिखना पड़ रहा है। वस्तुतः यह पुल्लिंगी पद है। कदाचित 'वाह गुरु दी फतेह' की नकल में स्त्रीलिंगी कर दिया गया है। ("ओ० प्रे०")

⋔ मिनिस्टर विदाउट पोर्ट फोलियो। ("ओ० प्रे०")

८५४ अपनी सहमंत्राणी का पद श्रुतिकीर्ति के लिए प्रस्तावित-
कर दिया माण्डवी ने तुरन्त, प्रस्ताव हुआ यह भी पारित।
८५५ सहमंत्री तथा पांचमंत्री उस दिन हो जाने से नियुक्त-
पहले के पांच मंत्रियों की जिम्मेदारी अब थीं विभक्त ॥
८५६ थे प्रधानमंत्री सर्वाधिक सुप्रसन्न, भार यों घटने से।
बोले कि "आ गये अच्छे दिन, जन-कष्ट सर्वथा मिटने के॥
८५७ इसकी है मूल-प्रेरिका तो माण्डवीकुमारी निःसंशय।
पर अन्यों ने सहयोग दिया उनको, इसमें भी क्या संशय ??
८५८ पांचों अंगुलियों से पोंहचा यद्यपि समर्थ बनपाता है।
सुमहत्व उँगलियों का, तथापि, उसके बिन कब रह जाता है
८५९ नृपरूपी कर का 'पहुंचा–सा माण्डवीकुमारी का जीवन-
उसमें उँगलियों--समान अहो, सब अन्यों के सहयोगीपन ॥
८६० पोंहचा, प्रत्यंग हाथ का है, पर करांग में न जमे जब तक-
उतना उपयोगी हो पाता है तन के लिए नहीं, तब तक ॥
८६१ इस प्रजारूपिणी काया में नृपवर कर–तुल्य मानता मैं।
पोंहचा रूपिणी माण्डवी हैं, अवशिष्टसर्व, अंगुलियाँ हैं ॥
८६२ अब तक वे शासन कार्यों में सहयोग बहुत कुछ देती थीं।
फिर भी मंत्राणी होने से अब पूरी जिम्मदार बनीं ॥
८६३ सब प्रजाजनों का मुख-सा बन, देता हूं नृप को धन्यवाद।
इस नियुक्ति पर, एवं सँगसँग कुशध्वज कन्या को साधुवाद।
८६४ नृप को सविशेषनमन करके, सारे संसद को अभिवादन-
माण्डवी ने किया हाथ जोड़, तब गूँजे फिर जयकार-वचन॥
(दोहे) तभी परीक्षा–(सु) फल का, मिला शुभ समाचार।
प्रथम रही थी माण्डवी (मन्त्राणी समुदार) ॥१३५॥
गुरुकुल भर में प्रथन रह, सचमुच किया कमाल।
सविनय गौरवयुत हुआ, तत्क्षण उसका भाल ॥१३६॥
पहली श्रेणी में रही थी दूजी, श्रुतिकीर्त्ति। ø
दोनों बहिनों की हुई सहसा दुगुनी कीर्ति ॥१३७॥

ø माण्डवी, फर्स्ट डिवीजन में फर्स्ट और श्रुतिकीर्ति उसी श्रेणी में सेकण्ड। ('श्रोप्र०')

८६५ विद्यालंकृता और सँग ही मन्त्राणी, सहमंत्राणी भी–
बन गईं नृपसुताएं दोनों, यह प्रगति बड़ी कल्याणी थी ॥
८६६ होने पर सभा-समाप्ति, माण्डवी निज अनुजा को सँग लेकर-
सबसे पहले प्रणाम करने पहुँची श्री उपाध्याय के घर ॥
८६७ उनको एवं गुरु-भार्या को शिरसा दोनों ने किया नमन ।
आशीष प्राप्त करके उनसे, अपने घर के प्रति किया गमन ॥
८६८ तब तक आ पहुँचे थे राजा, सो दोनों गईं पास उनके ।
अब पितारूप में लखा उन्हें, संसद् में तो वे नृपवर थे ॥
८६९ कुशध्वज को उन दुहिता-द्वय ने अभिवादन श्रद्धासहित किया ।
वात्सल्य भरे स्वर में नृप ने दोनों को आशीर्वाद दिया ॥
८७० सविशेष, माण्डवी से बोले–"प्यारी बेटी ! तुमको पाकर–
ओंकार का बहुत ही कृतज्ञ मैं हूँ, वह रहे तुम्हें शिवतर ॥ □
८७१ श्रुतिकीर्त्ति का रखा यहाँ ध्यान जैसा है तुमने पूर्णतया–
सहमन्त्राणी पद पर नियुक्ति करने का भी प्रस्ताव किया ॥
८७२ वैसा ही रखना इसका तुम आजीवन पूरी तरह ध्यान ।
हो एक जगह रहने वाली तुम चारों भगिनी गुण-प्रधान ॥
८७३ भाभीजी एवं तब गुरुवर श्री उपाध्याय जी, कई बार–
कर चुके प्रकट, आत्मिक प्रतीतिपूर्वक, अपने ऐसे विचार ॥
८७४ इस पर से मैं भी यह मानूँ–श्रुतिकीर्त्ति और तुम, एक जगह–
जीवन भर हो रहने वाली, सो रखो ध्यान भी सभी तरह ॥'
८७५ दोनों बहिनें कुछ लजा गईं, फिर करके पुनरपि अभिवन्दन ।
माताजी के सन्निकट गईं, करने उनको भी अभिवादन ॥

(दोहे) रानी जी थीं सुन चुकी, इनका पूरा हाल ।
समुद कर रही दान थीं, पात्रों को उस काल ॥१३८॥
इन पर बरसाया बहुत, जाते ही, शुचि प्यार ।
फिर आशीषें दे, किये, यों निज प्रकट विचार ॥१३९॥

□ "नमः शिवाय च शिवतराय च ।" (यजुर्वेद अध्याय १६, मंत्र ४१ का अन्तिमांश ।) ["ओ० प्र०"]

८७६ "बेटी माण्डवी और श्रुत्तो ! बाहरी कार्य तो, दोनों ही-
तुम भलीभाँति करती रहतीं, रख शुभा टेक, जनसेवा की।
८७७ पर, गृहकार्यों में भी सुदक्ष होने की है आवश्यकता।
अन्यथा अधूरी ही रहले नारीजीवन की सार्थकता ।।
८७८ अब शिक्षण पूर्ण हो चुका है सो वही समय दो मुझको तुम।
थोड़े ही दिन में कर दूंगी उस दिशि में भी तुमको उत्तम॥
८७९ उत्तर में कहा माण्डवी ने– "आपकी समाज्ञा शिरोधार्य।
पर एक मास का अवसर दें जिसमें हम करलें बाह्य कार्य।
८८० गाँवों में जाकर सभी योजनाओं का है करना प्रसार।
सीता दीदी ने विशेषत: यह दिया बड़ा अच्छा विचार॥
८८१ उनको मैं वचन दे चुकी हूँ, सो उसे पूर्ण करना होगा।
तदनन्तर ही गृहकार्यों की शिक्षा लेना सम्भव होगा ।।
८८२ मेरे सँग हो सवदा रहे श्रुतिकीर्त्ति, यह पिताजी द्वारा–
आदेश अभी है दिया गया, जो माननीय पूरा पूरा ।। "
८८३ माता ने "एवमस्तु" कहकर दे दिया मासभर का अवसर।
कुछ समय बाद, पहुँचीं दोनों बहिनें, प्राचार्याजी के घर॥
८८४ स्वयमेव बधाई देने को आने वाली थीं वे; तब तक–
ये पहुँच गई तो बड़े स्नेहपूर्वक इनसे वे मिलीं ललक ।।
८८५ फिर कहा कि "शुभे माण्डवी जी ! उपहार आपको मैं क्या?
पर, इच्छा है कुछ देने की, तव इच्छित ही देना चाहूँ ।।
८८६ जो दे सकती हूं उनमें से कुछ भी लेने की बात कहें।
कृपया मेरा यह कथन मान, सत्वर ही समुचित उत्तर दें ॥'
८८७ सस्मित हो, कहा माण्डवी ने–'बस, एक मास का मुझे समय
दीजिये आप अपना, मेरी तो माँग यही सादर सविनय ।। "
८८८ श्रुतिकीर्त्ति ने किया भाष्य तभी इसका, थोड़े में, इस प्रकार
"प्राचार्याजी ! सहयोग आपका मिले हमें अतिशय उदार ॥
८८९ मेरे समेत, दौरा करने गाँवों का, जाएँगी दीदी ।
जैसाकि इन्हें आदिष्ट कर गई हैं मान्या सीता दीदी ।।
८९० है ग्राम विकास हेतु करना हम दोनों को भरसक प्रचार।
माताजी ने भी दे दी है अनुमति, कर अनुकम्पा अपार ।।

८९१ ग्रीष्मावकाश है अतः आप दे सकती हैं वह समय हमें।
आशय सीधा-सा यही कि सँग-सँग एक मास के लिए चलें॥
८९२ हम अनुभवरहिता हैं दोनों, सो यदि मिल पाए निर्देशन–
आपका हमें सँग सँग रहकर तो सुगम हो सके क्रियान्वयन॥
८९३ अन्यथा योजना का उतना जनता को होगा लाभ नहीं।
जितना हमसे तव सु-संग में रहकर हो पावे सभी कहीं॥
८९४ यह 'जनसम्पर्क-यज्ञ' पावन, देगा आपको पुण्य निश्चय।
इसलिए इन्हें उपहार यही दीजिये, करू मैं भी अनुनय॥"
८९५ दोनों बहिनों की सु-भावना, जन सेवा में, ऐसी लखकर–
प्राचार्या जी बोलीं "तथास्तु" केवल, अतिशय गद्गद् होकर।
८९६ 'ग्रामों के दौरे पर निश्चित दूजे दिन ही चल पड़ना था–'
यह सूचित किया और चल दीं, सेठानी जी से मिलना था॥
८९७ घर पहुँचीं सेठ सुदर्शन के, जब दोनों राजकुमारी ये–
तब वे भी प्राचार्या सम ही इनके प्रति जाने वाले थे॥
८९८ सेठानी जी को प्रसव कुछ दिनों में ही था होने वाला।
सो, गाँवों में सँग चलने का, उठता न प्रश्न, दोनों के, था॥
८९९ सेठ से माण्डवी यों बोली– "हम तो दोनों ही दौरे पर–
कल से गांवों में जाएँगी, प्राचार्या जी को भी लेकर॥
९०० पर, इसी बीच होगी प्रसूति आपके यहाँ सेठानी को।
जिस बारे में यह परामर्श देना है आप उभय ही को॥
९०१ मैंने शिकायतें सुनीं कई हैं प्रसूतिगृह के बारे में।
होता न प्रसूताओं के प्रति अच्छा वर्त्तन प्रायः उनमें॥
९०२ सेठानी जी द्वारा जँचवा सकने का अवसर है आया।
यह मेरे लिये नहीं संभव जो करू जाँच प्रत्यक्षतया॥
९०३ सो, प्रसव न घर पर करवाएँ, भेजें प्रसूतिगृह में इनको।
थोड़ा–सा वहाँ कष्ट सहलें, मंत्राणी जी ! आप भी, अहो॥
९०४ जब मैं दौरे से लौटूँगी तब आप कहेंगी ही मुझसे।
कितनी सच्ची हैं शिकायतें लोगों की, यह भी थाह मिले॥
९०५ तदनन्तर उचित उपाय अपन, मिलजुल सब, करना ठानेंगे।
लेकिन वह शक्य कहाँ तब तक, असलियत न जब तक जानेंगे॥

९०६ सेठ जी तथा सेठानी जी इक साथ कह उठे 'धन्य, धन्य'।
माण्डवी कुमारी ! जन सेवा का भाव आप में है अनन्य॥
९०७ हम दोनों ही आपका वचन पूरी निष्ठा से मानेंगे।
आपके लौटने पर विवरण सब इस बारे में सौपेंगे॥"
९०८ फिर सेठानी जो यों बोलीं-"मिष्टान्न खाइये थोड़ा-सा।
पर, तनिक बैठिये तो पहले, यह खड़े-खड़े का मिलना क्या ?!
९०९ हँसते-हँसते श्रुतिकीर्ति लगी कहने कि "लौटकर खाएँगे।
थोड़ा ही क्यों, मिष्ठान्न, खूब जो भर कर यहाँ उड़ाएँगे॥
९१० मुन्ना मुन्नी जो कुछ भी हो, पहली सन्तान आ चुकेगी।
तब तक, हम दोनों जब तक फिर दौरे से वापस आएँगी॥
९११ क्या तनिक बल्कि जमकर तब तो हम दोनों प्रहरों बैठेंगी।
इतनी कि सेठजी को अखरे, आप भी कदाचित् ऊबेंगी॥"
९१२ बोली माण्डवी कि "वास्तव में है समय नहीं बिल्कुल हमको।
अन्यथा क्यों न बैठी होतीं, आग्रह की भी क्या बात, अहो॥
९१३ मिष्ठान्न के विषय में तो जो श्रुतिकीर्ति ने कहा, ठीक वही।
आज की मिठाई भी उस दिन के लिये हमारी थाप रही॥"
९१४ यह कह दोनों चल दी तुरन्त, अभिवादन कर उन दोनों को।
जो विस्मित हो, देखते रहे इन दोनों की गतिविधियों को॥
(दोहे) कृषि मन्त्री जी का दिखा पथ में ही गृह भव्य।
खड़े द्वार पर थे स्वयं दे (जिनका उर दिव्य) ॥१४०॥
इनको लखकर विनय की, "रुकिये थोड़े काल—
मेरे घर भी, ताकि हों परिजन सभी निहाल" ॥१४१॥
९१५ इनसे भी कही माण्डवी ने थोड़े में बड़ी बात वैसे—
प्राचार्या जी से अभी अभी वह कहकर आई थी जैसे॥
९१६ श्रुतिकीर्त्ति, सूत्र-सम वचनों का, इस बार बनी फिर भाष्यकार
कुछ कुछ, बस, उसी प्रकार कि थी पहले बनपायी जिस प्रकार
९१७ दौरे में संग चलने का जो आग्रह था किया माण्डवी ने—
वह मान लिया सोत्साह तुरत उपमहापौर (कृषि मन्त्री) ने॥
९१८ तब उनका भी आग्रह माना माण्डवीकुमारी ने सादर।

घर में रहानुजा गई और बोली भाभीजी से हँसकर॥

९१९ "हम दोनों एक मास दौरा, गाँवों का, हैं करने वाली।
उन दिनों रहेगा यह घर भी श्री कृषिमँत्री जी से खाली ॥
९२० पकड़ो भाभीजी ! ये भैया कल हम बहिनों के सँग जाएँ।
आपके पास यदि रस्सी हो तो बाँधो, छूट नहीं पाएं ॥"
९२१ भाभीजी सहित हँस पड़े सब, सुन यह प्यारा न्यारा विनोद।
भर गया हवन के सुधूम-सा उस घर भर में पावन प्रमोद ॥
९२२ थोड़ी ही देर यहां भी वे रुक सकीं, समय का था अभाव।
पर इतने ही में प्रकट हुआ शुचि, सरल, सौम्य उनका स्वभाव।
९२३ घर आकर माताजी को सब विवरण ज्यों का त्यों सुना दिया।
माण्डवी नहीं बोली कुछ भी, अनुजा ने ही यह कार्य किया ॥
९२४ भोजन को पूज्य पिताजी भी इतने में ही आ गये वहीं।
सो, उनसे ज्येष्ठा कन्या ने सारी बातें स-विचार कहीं ॥
९२५ बोले नृप यों रानी जी से– "ये मंत्राणी, सहमन्त्राणी–
गांवों का दौरा करने को हैं कल ही से जाने वालीं ॥
९२६ हम तुम हैं पिता और माता इनके, इसलिये विचार करें।
मन्त्रीपद नहीं अपितु कन्या पद का ही पूरा ध्यान धरें ॥
९२७ मैंने तो सोचा है कि स्वास्थ्य मंत्रीजी को भेज दूँ साथ।
यद्यपि चाहूँ कि नित्य इनको नीरोग रखे ओंकारनाथ ॥
९२८ केवल मैं ही क्या बल्कि राज्य भर के सारे ही नारीनर–
चाहते निरन्तर यही कि ये रह स्वस्थ बनें सबको हितकर ॥
९२९ चिन्ता भी, तथापि, स्वाभाविक, देवी ! क्या सोच रही हो तुम ?
क्यों इस बारे में कुछ न कहा तुमने ? किसलिए बनीं गुमसुम ??

(दोहे) रानीजी बोलीं कि "जब हैं करते स्वयमेव–
चिन्ता दोनों सुता की, देवी के पतिदेव ॥१४२॥
तब क्यों बोले व्यर्थ ही, देवी कोई बात।
वैसे भी, अब तो रखें जिम्मेदारी तात ॥१४३॥

९३० 'माता पर पाँचवर्ष तक ही, सन्तानों की जिम्मेदारी।
फिर पिता करे निजपद सार्थक, बनकर सत्पालक, हितकारी ॥

९३१ मनुमहर्षि की यह शुभवाणी, गुरुवर के द्वारा जानी है।
इस प्रकाश में हे देव ! आपका उक्त वचन वे-मानी ø है॥
९३२ इतने पर भी, अध्यात्म-साधनालीन आप बहुधा रह लें।
उसमें कुछ बाधा पड़ने पर भारी भीतरी व्यथा सहलें॥
९३३ यह मैं जीवन भर से जानूँ सो मैंने कार्य आपका भी-
अपने पर लेकर सोच रखी इसकी सुव्यवस्था सारी थी॥
९३४ भेजना स्वास्थ्य मंत्रीजी को इनके सँग, सोचा मैंने भी।
मुख से आपके वही निकला, समविचार के, हम पति-पत्नी
९३५ इसके अतिरिक्त, भेजने हैं दो वाष्प-यान, यंत्रों-चालित।
ऐसे कि जो कहीं नहीं कभी बिगड़ें इतने हों दृढ़ तन्त्रित॥
९३६ ऊबड़ खावड़, अटपटे और बीहड़ मार्गों में भी जाएँ।
कोई न हानि, काँटे-पत्थर इत्यादि जिन्हें पहुँचा पाएँ॥
९३७ चालक एवं चालिका रहें अतिनिनुण, निज कला के ज्ञाता
साहस, कौशल, धैर्यादि गुणों से जिनका नित्य रहे नाता॥
९३८ हों एक यान में महिलाएँ, हों पुरुष सवार दूसरे में।
चालिका रहे पहले में एवं चालक रहले दूजे में॥
९३९ महिलाओं के सँग एक सेविका अतिविश्वस्ता भी जावे।
जिससे न असुविधा तीनों को यत्किंचित् कदापि हो पावे॥
९४० पुरुषों के संग एक सेवक रहले विश्वासपात्र उत्तम।
जिसने मग भी सब देखे हों एवं धारे श्रद्धामय श्रम॥
९४१ अब कहिये देव ! न्यूनता क्या रह गयी, करूँ जो पूरी मैं।
वस्तुतः आप ही तो चिन्ता मेरे माध्यम से करते हैं॥
९४२ फिर भी, मुझसे त्रुटि सम्भव है, पूछती आपसे इस कारण।
कृपया बोलिये आप भी तो, क्यों रहलें किये मौन धारण ?"
९४३ नृपवर बोले कि "भूल मुझसे प्रारंभ में हुई थी सचमुच।
मैं पश्चात्ताप कर रहा हूँ, देवी ! तुमसे सुन यह सब कुछ॥
९४४ सामान्य नारियों सम तुमको समझा था मैं, इसलिए कहा-
वह था मैंने, पर अ-सामान्य तुम हो, न ध्यान यह तनिक रहा॥

ø बेमआनी = व्यर्थ, अर्थहीन। ("ओ० प्र०")

९४५ माण्डवी-समान सुता की जो हो जननी, वह कब साधारण ?
वास्तव में था चाहिये मुझे, मानूँ मैं तुम्हें असाधारण ।।
९४६ मेरा भी कार्यभार तुमने है वहन किया, शक इसमें क्या ?
इनकी माता के संग संग कर्त्तव्य किया मम पत्नी का ।।
९४७ पर, इतना तो कहना चाहूँ- ये कार्यरूप में परिणत कब-
होंगे विचार ? अत्यन्त न्यून रह गया समय, जाने में अब ।।
९४८ क्या इसके बारे में भी कुछ करचुकीं प्रबन्ध, कहो रानी ?
अन्यथा ऐन मौके पर तो पड़ सकती बड़ी परेशानी ।।"
९४९ इस पर यों बोलीं रानी जी:"हे देव ! कहलवा रक्खा है-
सब अन्यों से तो किन्तु स्वास्थ्य मंत्री जी से कहलाना है ।।
९५० नृप ने सोल्लास कहा कि उन्हें मैं अभी कहलवाये देता ।
इतना-सा कार्यभार खुद पर हूँ स्वेच्छा से, देवी ! लेता ।।

(दोहे)-प्रणय-सनी आयी हँसी, दोनों को इसबार ।
वाणी का जिसमें न था बिल्कुल भी व्यापार ।।१४४।।
नैनों से भीं हो गईं, कुछ बातें तत्काल ।
कैसे कोई कह सके, उनका प्यारा हाल ।।१४५।।

९५१ कुछ क्षण पश्चात् गये राजा जिम्मेदारी निबाहने को ।
माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति चलीं अपना सामान जमाने को ।।
९५२ दूजे दिन प्रातःकाल, या न दोनों ही, खड़े द्वार पर थे ।
जाने वालों को बुलवाया नृप ने तब उन उनके घर से ।।
९५३ सबके आचुकने पर सवार अपने समक्ष ही उन्हें किया ।
जिस जिस को जो जो देना था उस उसको वह आदेश दिया ।।
९५४ स-विशेष माण्डवी से बोले नृपवर कि "भेजना सन्देशा ।
आठवें दिवस, रख ध्यान ताकि अशकुन का रहे न अन्देशा ।।"
९५५ रानी जी भी तब तक आईं, पति के समान हीं कही बात ।
बोलीं कि "याद रखना, जो हम कह रहे तुम्हारे तात-मात ।।
९५६ कैसा होता है मातृ-हृदय, इसको तुम अभी कहाँ जानो ।
इसलिये वचन से पड़ा मुझे कहना, क्यों इसे नहीं मानो ।।

९५७ हो सकती केवल बात पिता की यह जो सन्देशे वाली-
पर, माता की तो समझो तुम आज्ञा इसको; न कथन खाली॥
९५८ तीनों महिलाओं के प्रति भी यों कहा कि "रहना सावधान
दोनों कुमारियों का पूरा तुम तीनों रखना सदा ध्यान॥
९५९ क्या कहूँ अधिक, प्रौढ़ा हो तुम तीनों, सो खुद ही जानोगी
मेरे उर के भावों को तुम, बिन कहें, पूर्ण पहचानोगी॥"
९६० आँखें छलछला गयीं उनकी, बातें ये सब कहते कहते।
कर यत्न तुरत रोके आँसू जो मानों थे बहते बहते॥
९६१ आचार्या, भृत्या तथा चालिका, एक साथ ही, बोलीं यों-
"रानी जी! आप रखें हम पर विश्वास, कदापि अधीर नहीं
९६२ शुभ मन्त्र, स्वस्तिवाचन के, तब लग पड़ीं बोलने रानी जी
कुछ ऋचा, शान्ति प्रकरण की भीं, उच्चारीं अतिशय सु-पा
९६३ आदान प्रदान वन्दनों का आपस में सबने किया तभी।
जाने वाले चल पड़े तथा रहने वाले रह गये सभी॥
९६४ जब तक महिलाओं युक्त रहा आँखों से दिखता वाष्पयान-
तब तक रानी जी रहीं देखती ही कन्याओं को स-ध्यान॥

ग्राम भ्रमण (दशम प्रकरण)

९६५ सबसे पहले तो 'इभ्यग्राम' आया पथ में, सो रुके वहाँ-
ये राजकीय दौरे वाले, जिनको जाना था जहाँ-तहाँ॥
९६६ माण्डवी कुमारी ने सबका नेतृत्व स्वयं ही ग्रहण किया।
इस पर दोनों दल थे प्रसन्न, सबने यथेष्ट सम्मान दिया॥
९६७ बुलवाई सभा, ग्रामवासी नारी नर की, सेवक द्वारा।
पर नहीं उपस्थित कोई भी, डर के मारे ग्रामीण हुआ॥
९६८ जब करता राज्य, सुधन्वा था, तब दौरा करके एक बार-
ग्रामीणों के अतिशय ही था किया नृपति ने कु-व्यवहार॥

९६९ मानवता–विरहित प्रकार से वह, उसके मंत्रीगण समेत–
कर गया कई ग्रामों के प्रति अनुचित वर्तन, जो भय-निकेत ।।
९७० यह इभ्यग्राम था पहला, सो इसके वासी, नर नारी को–
वे संकट सहने पड़े विकट, जिनसे क्या कोई भारी हो ।।
९७१ इसलिये राज–मनुजों की तो छाया तक से थे सब डरते ।
पर, निराकरण कुछ भी न कभी मिलजुलकर इसका थे करते ।।
९७२ हो स-भय, राय कुछ ने यह भी देदी कि 'ये न जाएँ जबतक–
हम लोग चलें अन्यत्र भाग, वापस लौटें ही क्यों तब तक ??
९७३ अन्यथा, कष्ट देंगे हम को ये राजा के चाकर–नौकर ।
क्या पहले नहीं खा चुके हैं इनके जूतों से हम ठोकर ??'

(दोहे)–सेवक ने आकर कहा, नेता के प्रति हाल ।
सोचा था–'माण्डवी जी रूप धरें विकराल ।।१४६।।

आज्ञोल्लंघन का मिले, सबको भारी दण्ड ।
पहला ही यह ग्राम है, पर कितना उद्‌दण्ड' ।।१४७।।

किन्तु, सुगुण, नेतृत्व के, उसमें थे भरपूर ।
अतः माण्डवी रह सकी, रोष–क्षोभ से दूर ।।१४८।।

९७४ सस्मिता बनी, बोली कि "हमें कारण चाहिये, अहो, लखना ।
देखकर कार्य को ही केवल, अनुचित है बुरे भाव रखना ।।
९७५ क्यों हैं भयभीत ग्रामवासी, इस पर कर लें जब हम विचार ।
तब कुपित न उन पर हो सकते, चाहिये उन्हें तो सु-व्यवहार ।।
९७६ आश्चर्य, बल्कि, है मुझको तो, खेद भी बहुत होता उर में–
'क्यों ये प्रतिरोध नहीं करते ? सुनकर किस लिये रहें डर में ??
९७७ सच्ची मानवता का प्रतीक- है सुमन्यु को धारण करना ।
सर्वाधिक निन्दित है- अनीति सहते रहकर केवल डरना ।।
९७८ पापी ही नृपति सुधन्वा था जो करता नित अन्याय रहा ।
पर हैं ये क्या न महापापी जिन सबने अत्याचार सहा ।।"
९७९ इतने में, ध्वनि विस्तारक से यह उत्तम वाणी सुनते ही–
आगये झुण्ड के झुण्ड वहाँ नवयौवन धारी नर नारी ।।

९८० माण्डवी बोलती गई कि "जो अत्याचारों को सहते हैं-
वे अनजाने ही पापों को प्रोत्साहन देते रहते हैं ॥
९८१ इस तरह, महापापी हैं सब, अन्यायों को सहने वाले।
चाहे वे नगर निवासी हों या ग्रामों के रहने वाले ॥
९८२ हे युवकों और युवतियों! तुम यौवन को लज्जित करते क्यों
आत्मा तो मरता ⊙ नहीं कभी, फिर मरने से हो डरते क्यों
९८३ अन्यायों का प्रतिकार करो, उसमें मरना भी पड़े अगर-
तो समझो यही कि चल पाये तुम वेदों के पावन पथ पर।
९८४ ओङ्कार अकाय परम प्रभु को वे ही प्रसन्न कर पाते हैं-
जो मानवता के रक्षण में अपना सर्वस्व लुटाते हैं ॥
९८५ यह घोषित करती हूँ कि तुम्हें सहयोग पूर्णतः दूँगी मैं।
आओ, प्रतिकार करें उनका, अन्याय आज तुम पर जो हैं।
९८६ धीरे धीरे बढ़गई भीड़, सारा ही ग्राम उमड़ आया।
ऐसा न कभी प्रेरक भाषण था वहाँ किसी ने सुन पाया॥
९८७ "अब नहीं कु-राज्य सुधन्वा का" यों आगे कहा माण्डवी ने,
"उसका तो वर्षों पूर्व कर दिया वध, मेरे ताऊ जी ने ॥
९८८ मम पिता उन्हीं के अनुज-कुशध्वज-हैं इस समय नृपति अरे
जो सेवक ही सर्वदा, प्रजा सारी के, रहते, अहो, बने ॥
९८९ सन्देश, उन्हीं का, देने को हम आये हैं सब लोग यहाँ।
लखना है यह भी हमें कि अत्याचार सह रहा कौन, कहाँ
९९० अव तक सांकाश्यपुरी की ही उन्नति में रखी सावधानी।
स्वर्गोपम जिससे बनपायी वह नगरी जो कि राजधानी ॥
९९१ पर, ज्येष्ठा वैदेही कुछ दिन पहले थीं वहाँ पधारी जब।
'ग्रामों पर ध्यान दिया जावे' प्रेरणा उन्होंने यह दी तब ॥

⊙ हमें संस्कृत के तत्सम शब्द, उसी लिंग में रहने देना भाता है। आत्मा को पुल्लिंगी रखा है जैसा वह वस्तुतः है ही। हिन्दी में इसे और अन्य कितने ही शब्दों को स्त्री लिंगी माना जाता है, अस्तु। ('ओ. प्रे ")

९९२ योजना कराई संसद् से मैंने स्वीकृत इस बारे में।
अब क्रियान्वयन करने उसका हम निकले हैं सब दौरे में ॥"
९९३ तदनन्तर सबका अलग अलग परिचय भी दिय कुमारी ने।
करतलध्वनिपूर्वक अभिनन्दन तब किया सर्व नरनारी ने ॥
९९४ फिर तो, आग्रह करके उनको ठहराया अधिक, दो दिवस तक।
'है शुभारम्भ, साफल्य अर्द्ध % यह सोचा, गई माण्डवी रुक ॥
९९५ नेत्री थी अतः उसी के सँग दोनों दल वाले सभी रुके।
प्रारंभिक प्रभाव हीं उसका निज नयनों से थे देख चुके ॥
९९६ इन दो दिन में, पंचायत का निर्माण किया मन्त्राणी ने।
सहयोग दिया इसमें उसको पूरा ही सह-मन्त्राणी ने ॥
९९७ यों दोनों बहिनें कार्यरता रहकर सु-प्रेरणा देती थीं।
बिन कहे, अन्य साथीगण से वे सु-सहकार पा लेती थीं ॥
९९८ जिन राजकर्मचारीगण की साबित, शिकायतें हुई वहां–
कर दिया निलंबित उन्हें तुरत, थोड़ा भी किया विलम्ब कहां ??
९९९ कृषि में सुधार क्या, किस प्रकार हो सकते हैं, इस पर विचार–
नवनियुक्त पंचों से मिलकर माण्डवी लगी करने उदार ॥
१००० यह भी पूछा ग्रामीणों से– 'कितनी सहायता दे शासन ?
कितना, कैसे, कब तक धारण वे कर लेंगे सु-स्वावलम्बन' ??
१००१ ऐसी कितनी ही विकास की बातों पर हुए कई निश्चय।
माण्डवीकुमारी ने संशय कर दिये दूर, सब थे निर्भय ॥
१००२ जब लगी बिदा होने, अपने साथियों सहित, वह भूप-सुता।
जनता सब, इभ्यग्राम की, तब आई प्रकटा ने कृतज्ञता ॥
१००३ 'माण्डवीकुमारी की जय' का उद्घोष गूँजने लगा तभी।
आबालवृद्ध नारीनर थे अत्यन्त प्रसन्न, सुतुष्ट सभी ॥

(दोहे) किन्तु माण्डवी ने दिया, उन्हें पुनः उपदेश।
"मुझसे या नृप से बड़ा, 'आर्यावर्त' स्वदेश ॥१४९॥
यदि मेरी जय के लिये रखते हो उत्साह।
तो सुप लो पहले कि जो मम उर की है चाह ॥१५०॥

% आंग्ल-उक्ति 'वेल बिगन इज हाफ डन' का भाषान्तर। ('ओ॰ प्रे॰')

१००४ इस आर्यावर्त देश ने ही 'भारत' भी उचित नाम पा
'भा' में 'रत' पूर्वज रहे नित्य, निष्प्रभ रहना न उन्हें
१००५ शुचि वेद विहित शुभ गुणगण की सुप्रभा में रत वे र
गौरव से स्वदेश को 'भारत' उत्साहित होकर कहते
१००६ पर, अब तो भय-रत रहकर तुम वह 'भारत' नाम ल
सच पूछो तो पूर्वजगण का अति उज्जवल नाम डुवाते
१००७ भय-रत मत रहो कहीं कोई, इसके बजाय भयमुक्त र
रत रहते हुए सतत 'भा' में, शुचिता–निर्भयतायुक्त र
१००८ संसद् का 'सभा' नाम जो है, वह भी तो यही बताता है
'भा-युता रहे प्रतिनिधियों की मण्डली' सदर्थ जताता है
१००९ भारत में राजाधीन, सभा रहती आई है पूर्णतया।
पर, सभाधीन राजा भी तो रहता आया सर्वथा, सदा॥
१०१० इन दोनों में से कोई भी होता स्वतन्त्र, परतन्त्र, नहीं।
रख अपितु 'परस्पर-तन्त्र'-भाव, पड़ता विपदा में नहीं
१०११ उन सभा तथा राजा के ही आधीन, प्रजा रहती सुख से
वस्तुतः बोलती है जनता, इन दोनों के ही श्रीमुख से॥
१०१२ दूसरी तरह से देखें तो, इस विश्व का सभापति है जो-
ओंकारनाथ प्रभुपरमेश्वर, श्रुति 'भरत' भी पुकारे उस
१०१३ ऋग्वेद में दिखा मंत्र मुझे, प्रारंभ 'तमीळत' से जिसका
आया है उसमें 'भरत' नाम उस जगत्पिता जगदीश्वर
१०१४ यह भी है वहाँ कहा कि 'तमीळत' या उसका संस्तवन क
हे मनुजो ! उस जैसे गुणगण भरसक अपने में सविधि भ
१०१५ इस आज्ञा का पालन करके उस भरत के गुणों से जीवन
करते रहते जो युक्त सदा, वे 'भारत' कहलाते पावन॥

॥ "आर्याभिविनय" (द्वितीय प्रकाश) में यजुर्वेद ५।३२ के 'परिषद्य-पवमानः' का अर्थ करते हुए महर्षि दयानंद सरस्वती ने यों लिखा "हे न्यायकारिन् ! पवित्र परमेश्वर ! सभा के आज्ञापक, सभ्य सभाप्रिय सभारक्षक आप ही हो।" (आ० प्र०)

१०१६ ज्यों 'अर्य' शब्द से 'आर्य' बना, त्यों 'भरत' शब्द से 'भारत' भी।
ऐसे भारतगण जहाँ रहें वह भारतवर्ष स्वदेश यही ॥
१०१७ यदि कोई भरत नामवाला मानव, प्रभु के वे गुण कतिपय—
जो 'भरत' शब्द में हैं, रहकर श्रम श्रद्धामय, धारे सविनय ॥
१०१८ भारत में निवास करता हो बन जनसेवा का व्रतधारी।
तो मैं उसको भी विभुवर से मानूँ छोटा, थोड़ा-सा ही ॥
१०१९ पर, छोड़ो मेरी बात, भरत से भारत जो अपत्यवाचक—
बनता है, उसकी महिमा को, रह भारत में करलो सार्थक ॥
१०२० 'ओंकार' नाम के बाद यही परमेश्वर का शुभ नाम भजो।
इसमें जो गुण हैं निहित, उन्हें अपने जीवन में सरुचि सजो ॥
१०२१ मैं तुम्हें 'तमीळत भरतम्' का सन्देश सुनाये जाती हूँ।
संस्तुति सर्वदा उस भरत की तुम करो, सुझाये जाती हूँ ॥
१०२२ इसके सँग, भरसक यत्नशील बनकर सच्चा पूजन कर लो।
गुण, 'भरत' नाम वाले शिव के; धारण करके सुमोदवर लो ॥
१०२३ इस वेदमन्त्र के जप से ही मैंने यह सब कुछ पाया है।
जिसको लखकर तुम सबने भी सत्कृत करके अपनाया है ॥
१०२४ 'ओंकार' शुरु में बोल, इसे जपना मैं भूलूँ नहीं कभी।
सच मानों, इसके द्वारा ही वरदान मिले हैं मुझे सभी ॥
१०२५ यह छोटा राज्य, बड़े भारी भारत का अवयव-मात्र, अहो।
इसलिए प्रथम 'भारतमाता की जय' ही सब सोत्साह कहो ॥
१०२६ फिर बड़े प्रजापालक राजा कुशध्वज की जय बोलना, उचित।
चाहो तो मेरी जय कहना तदनन्तर अधिक न हो अनुचित ॥'
१०२७ साथी नरनारी तथा ग्रामवासी यह सुनकर मुग्ध हुए।
कितना महान् है देश प्रेम !! यह निरख, माण्डवी-भक्त हुए ॥
१०२८ (आगे भी घट-बढ़ इसी भांति सब गांवों में सत्कार हुआ।
माण्डवी जहां भी गयी वहां जनता का उसने मर्म छुआ ॥)
१०२९ ऐसी देखी न सहानुभूति, वृद्धों तक ने थी कभी कहीं।
जैसी ज्येष्ठा कुशध्वज-कन्या, आकर दे पाई उन्हें वहीं ॥
१०३० ग्रामीणों में से कुछ कहते—'यह राजसुता है सु-मानवी'।
अधिकांश रखा करते आग्रह—'माण्डवीकुमारी तो देवी ॥'

१०३१ उस इभ्यग्राम का एक सभ्य इस घटना के उपरान्त गया।
कौशिक मुनिवर के आश्रम पर, विवरण जिसने सब उन्हें दिया॥
१०३२ उस समय वहाँ थे राम तथा लक्ष्मण भी, जो मख-रक्षण-हित
आनीत हो महामुनि द्वारा, थे सभी कर चुके सदपेक्षित॥
१०३३ मुनि विश्वामित्र उन्हें सँगले, मिथिला को जाने वाले थे।
नृप 'विदेह' नामक जनक जहाँ शुचि यज्ञ रचाने वाले थे॥
१०३४ यह भी कौशिक ने उनसे कह रखा था कि "उस अवसर पर
लखपाओगे प्रसिद्ध, शोभन, भारी भरकम, शुभ, शिवधनु भी॥
१०३५ पहले भी, ऐसे कई यज्ञ, धर्मात्माजनक ने किये हैं।
जिनमें आने वाले नृप-सुत वह धनुष देखते रहते हैं॥
१०३६ यों भी, चाहे जब, सुप्राचीन उस धनु को लखने, नृप-कुमार
आते रहते हैं मिथिला में पर तौल सके उसका न भार॥
१०३७ कह जनक से, तुम्हें भी धनु वह मैं वहाँ दिखलवा पाऊँगा।
यद्यपि होने सम्मिलित यज्ञ में हो, तुमको ले जाऊँगा॥
(दोहे) विदेह मेरी बात पर तुरन्त देंगे ध्यान।
तुम दोनों लख सकोगे धनु, हे वीर सुजान ॥१५१॥
तनिक नहीं उस यज्ञ से धनु का है सम्बन्ध।
पर दिखलाने का तुम्हें कर पाऊँ सुप्रबन्ध ॥१५२॥
१०३८ मम कार्य बड़ा भारी तुमने आकर है पूरा यहाँ किया।
केवल इस कारण ही मैंने शिवधनु-विषयक यह भार लिया।
१०३९ इस तरह कह चुके थे कौशिक, इसके थोड़ी ही देर बाद-
आकर बोला वह इभ्यग्रामवासी, भर उर में समाह्लाद॥
१०४० "सांकाश्यपुरी के नृप कुशध्वज हैं विदेह के ही अनुज, अहो।
कोई गुण ऐसा दिखे नहीं जो उनमें अग्रज-तुल्य न हो॥
१०४१ उन कुशध्वज की ही कन्याद्वय अतिरूपवती गुणवती चतुर।
जिनमें से बड़ी—'माण्डवी'—तो है देवीसम प्रियतर, हितकर।
१०४२ 'श्रुतिकीर्ति' नाम है छोटी का; दोनों ही बहिनें आई थीं—
करने दौरा जब इभ्यग्राम में, तब मैंने लखपाई थीं॥
१०४३ सन्देश 'तमीळत्त भरतम्' का दे गई माण्डवी, शुचि वैदिक।
उपदेश भी दिया मन्युपरक जो था वास्तव में अतिप्रेरक॥

१०४४ वे दोनों मम नृप की दुहिता, इसलिये करूँ मैं नम्र विनय।
उन कुमारियों के लिये ध्यान रखिये कि हो सके शुभ परिणय॥
१०४५ यज्ञादि में कई जगह आप वहुधा पधारते रहते हैं।
भारत भर के नृपगण आदर आपका वहुत हीं करते हैं॥
१०४६ सो, यदि लख पाएँ गुणादि में उनके अनुकूल कुमार नहीं–
तो सुझाव उनके बारे में कृपया दें, रह ले भूल नहीं॥
१०४७ कुशध्वज की सारी प्रजा यहां कहती मानों मेरे मुख से।
बस, यही कि उनके लिये करें सुप्रयत्न आप निज श्रीमुख से॥"
१०४८ वह इभ्य ग्राम का सभ्य गया कहकर मुनिवर से इस प्रकार।
कुछ समय तक रहे तब कौशिक इन बातों पर करते विचार॥
१०४९ दो दिनों बाद, मिथिला के प्रति चल पड़े राम, लक्ष्मण एवं–
कितने ही मुनि गण के समेत कौशिक ऋषि विश्वामित्र स्वयं॥

(दोहा)–उधर, अयोध्या में, गया वशिष्ठ मुनि के पास–
एक दिवस, पति, यशोदा देवी का, सोल्लास॥१५३॥

१०५० बोला कि, "राज गुरुजी! मेरी यह बात पूर्णत, सुन लेवें।
यद्यपि हैं व्यस्त आप अतिशय, फिर भी कुछ समय मुझे देवें॥
१०५१ अनुमति दी, कहकर 'ओ३म्' तुरत, गुरु वसिष्ठ ने उसको ज्योंही–
वह कहने लगा बात अपनी, हो श्रद्धान्वित सविनय त्योंही॥ ×
१०५२ मुनि श्रेष्ठ! पूज्यवर! हे भगवन्! जो नृप सुत हैं श्री भरतदेव–
उनका अत्यन्त घनिष्ट मित्र हूँ अन्त रंग मैं एक मेव॥
१०५३ सांकाशपुरी में है मेरी ससुराल, जहाँ की मम भार्या।
आग्रह करती थीं कई दिनों से इस बारे में वह आर्या॥
१०५४ अत्याग्रह आज किया उसने, सो वही मानकर हूँ आया।
माण्डवी कुमारी का उसने विवरण है मुझको वतलाया॥
१०५५ वह कहती रही कि इसे राजगुरु जी की सेवा में प्रस्तुत–
करदें सत्वर ही ताकि रहे उनको यह सारी बात विदित॥

× उपनिषदों में 'ओ३म्' कहकर अनुज्ञा देने का वर्णन आया है, उसी पर से यहां इस प्रकार का विवरण दिया गया है। ("ओ. प्रे.")

१०५६ मैं कई वार सुनकर भी जब आजतक आपतक आ न सका-
तव प्रातः से ही आज प्रवल प्रेरण उसने प्रारम्भ किया ॥
१०५७ वोली कि "आज है वर्षग्रंथि, उस प्रिय माण्डवी कुमारी की-
जो सखी मायके में मेरी, नृप सुता शोभना प्यारी थी ॥
१०५८ जब पिछले वर्ष वहीं थी मैं, तव प्रजा वर्ग ने स्वेच्छा से-
था खूब मनाया शुभदिन यह, उत्सव अच्छा खासा करके ॥
१०५९ श्री भरतदेव से शत प्रतिशत उसके गुण कर्म स्वभाव मिलें।
दोनों के ही उर-कमल, प्रजासेवा-सुरश्मि से नित्य खिलें ॥
१०६० इन दिनों, राज्य के ग्रामों का दौरा, माण्डवी कर रही है।
निर्भयता और स्वावलंवन के पावन भाव भर रही है ॥
१०६१ मेरे भाई का पत्र वहुत विस्तृत कल ही तो आया है।
जिसमें उसने पूरा पूरा इसका विवरण वतलाया है ॥

(दोहे)-यह कह उसने दे दिया तुरत मुझे वह पत्र ।
पढ़कर मुझको भी लगा अत्युत्तम सुचरित्र ।।१५४।।
उसकी सहमति से रखा इसको अपने पास ।
और आपके निकट हूँ ले आया सोल्लास.।।१५५।।

१०६२ जो शिष्य आपके, भरतदेव दशरथ सुत हैं वहुगुणधारी ।
वे मेरे अनन्य मित्र, सदुन्नति उनकी, लगे मुझे प्यारी ॥
१०६३ इस कारण भी, श्यालक-प्रेषित यह पत्र आपको वतलाना-
मैंने स्वयमेव बड़ी रुचि से तत्काल निज हृदय में ठाना ॥
१०६४ सो, आया हूँ श्री सेवा में, कृपया पढ़ लें यह पत्र अभी ।
इससे नृप सुता माण्डवी का हो जावे ज्ञात चरित्र सभी ॥
१०६५ प्रार्थना यही मेरी कि आप देखें जब कभी उचित अवसर ।
कालान्तर में, तव दें सुझाव इस विषयक, बड़ा अनुग्रह कर ॥
१०६६ या वैवाहिक प्रस्ताव आपकी सम्मत्यर्थ कभी आवे-
(मम सखा भरतजी का) तब भी यह बात ध्यान में रह पावे॥
१०६७ बस, इसी हेतु प्रस्तुत कर दी मैंने यह सभी जानकारी ।
कैसी है, क्या क्या सेवाएँ कर रही माण्डवी सुकुमारी ॥"

(दोहे)—इतने में यह आ गया, आवश्यक संवाद–
'किया राजगुरु को नृपति दशरथ ने है याद ॥१५६॥
मिथिला से श्रीराम के विवाह का प्रस्ताव–
आया है, सो चाहते, उस पर भूप, सुझाव' ॥१५७॥

१०६८ इस पर वसिष्ठ मुनि सस्मित हो, बोले उस भरत-सखा से यों-
"क्रम से, पहला है राम, उसी की पहले चले न चर्चा क्यों ??
१०६९ मुझको ऐसा होता प्रतीत, इस विवाह के ही साथ साथ–
शुभ प्रसंग आएगा कि भरत बन पावेगा माण्डवीनाथ ॥
१०७० जो हो, तुमने दी मुझे अभी जो मौखिक, लिखित जानकारी–
वह मैंने है दृढ़ता पूर्वक निज उर-प्रदेश में सब धारी ॥"
१०७१ यह सुन, प्रसन्न बन भरत-मित्र, अभिवादन कर वापिस आया।
ज्यों का त्यों सारा हाल यशोदा को घर आकर बतलाया ॥
१०७२ पति-पत्नी दोनों थे प्रमुदित, ऐसे, मानो हो गया कार्य–
आपस में कहते थे कि 'सत्य अनुमान करें गुरुवर्य आर्य ॥
२०७३ उस ओर, माण्डवी-सहित सभी दौरे वाले वापिस आये।
सांकाश्यपुरी में ग्रामों से प्रतिनिधिगण को भी सँग लाये ॥
१०७४ नृप को माण्डवी कुमारी ने आवश्यक विवरण बतलाया।
सब प्रतिनिधियों का अलग अलग परिचय दे उनसे मिलवाया ॥
१०७५ फिर संसद् के सदस्य उनको नृपवर से घोषित करवाये ॥
पर, पहले उनसे राजभक्ति के शपथ पत्र भी लिखवाये ॥
१०७६ मनुमहर्षि ने जो विधि निश्चित की है, उसका ही संपालन।
कर पूर्णतया, प्रतिनिधिगण का यह किया गया था सु-नियोजन ॥
१०७७ 'एकोऽपि वेदविद्' प्रतीक-युत जो है मनुस्मृति का श्लोक भव्य-
उसके अनुसार योग्यजन का माण्डवी ने चयन किया नव्य ॥ø
१०७८ 'कर'—भार बहुत भारी पहले ग्रामों पर धरा सुधन्वा ने।
पर उनके प्रतिनिधि न थे बल्कि सब रहे मुसाहिब मनमाने ॥

ø "एकोऽपि वेदविद् धर्मं यं व्यवस्येद् द्विज्योत्तमः। स विज्ञेयः परोधर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ (अनु० १२/११३) (" ओ. प्रे. ")

१०७९ अब, 'कर' का बोझ बहुत हल्का माण्डवी कुमारी ने कहकर-
नृप से, तुरन्त ही करा दिया प्रतिनिधि भी लाई थी चुनकर।
१०८० अर्थात् सविधि सब ग्रामों से उनका चुनाव करवाया था।*
अपने समक्ष सबकी सम्मति लेकर प्रतिनिधि बनवाया था॥

(दोहा)–प्रतिनिधित्व सब का हुआ, इस पर था अति हर्ष।
प्रजाननों का हो रहा, था प्रतिदिन उत्कर्ष ॥१५८॥



मिथिला गमन (ग्यारहवाँ प्रकरण)

१०८१ निज आश्रम से चलकर कौशिक, मार्ग में ठहरते हुए गये।
कुछ दिनों बाद, साथियों सहित, मिथिला नगरी में जा पहुँचे॥
१०८२ तब यज्ञारम्भ हो चुका था, सो उस दिन, कार्य निबटने पर-
स्वागत को पहुँचे विदेह नृप, कौशिक मुनिवर के डेरे पर॥
१०८३ अभिवादन-प्रत्यभिवादन के पश्चात् परस्पर पूछ कुशल–
दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए, था वातावरण प्रशान्त, विमल॥
१०८४ पूछा राजा ने-"हे भगवन्! आज्ञा कीजिये, करूँ पालन।
मेरा सौभाग्य बड़ा भारी, जो हुआ आपका शुभागमन॥
१०८५ ये दोनों युवा कौन हैं, यह कृपया कहिये, देकर परिचय।
हैं किसी नृपति के ही सुत ये, इसमें न मुझे कोई संशय॥"
१०८६ उत्तर संक्षिप्त दिया नृप को मुनिवर कौशिक ने इस प्रकार–
अवधेश्वर के हैं राम और लक्ष्मण नामक दोनों कुमार॥

* "अव्रतानाम मन्त्राणां जातिमात्रोप जीविनाम्। सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते॥ यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः। तत्पापं शतधा भूत्वा तद् वक्तॄननुगच्छति॥ (मनुस्मृति, अ १२ श्लो. ११४-११५) [" ओ. प्रे. "]

१०८७ मख–रक्षण हेतु इन्हें अपने आश्रम पर मैं था ले आया।
वह कार्य, राम ने पूर्ण किया, इसका वीरत्व मुझे भाया ।।
१०८८ इतने में ही सूचना मिली – 'मिथिला में यज्ञ समायोजित।
जिसमें आने के लिये मुझे भी किया गया है आमन्त्रित ।।'
१०८९ सो, मैंने सोचा, संग इन्हें भी लिये चलूँ इस अवसर पर।
शिव धनुष विचित्र दिखलवाऊँ इन दोनों को तुमसे कहकर।
१०९० देकर यह वचन, इन्हें लाया, अब पूरा मेरा करो वचन।
मैं केवल यही चाहता हूँ, इनके प्रति हो मम सत्य कथन ।।"

(दोहे) कहा जनक ने – "आपकी आज्ञा के अनुसार –
मँगवाने को मैं यहाँ शिवधनु, हूँ तैयार ।।१५९।।

पर, पहले सुन लीजिये उसका थोड़ा हाल।
भूपसुतों को है किया किस प्रकार बेहाल ।।१६०।।

१०९१ प्राचीनकाल से वह शिवधनु है मेरे यहाँ अमानत में।
त्रुटि मैंने भी न कभी होने दी इसकी ठीक हिफाजत में ।।
१०९२ कुछ वर्ष पूर्व, मेरा छोटा भाई कुशध्वज था जबकि यहीं–
सांकाश्यपुरी का नृपति जबकि था उसको किया नियुक्त नहीं ।।
१०९३ तब उसकी भी दोनों पुत्री, मेरी दोनों पुत्रियों सहित–
खेला करती थीं यहाँ-वहाँ, बिल्कुल ही रहकर द्वेषरहित ।।
१०९४ इक दिन वे चारों चली गईं खेलती खेलती सहज वहाँ–
शिवधनु वह, रखा पेटिका में, था अभिरक्षित सर्वथा जहाँ ।।
१०९५ सीता ने खेल खेल में ही पेटिका-सहित उस धनु-वर को–
सरकाया काफी दूरी तक, सब कहती थीं- "हो, हो, हो, हो" ।।
१०९६ फिर जुटी माण्डवी, उसने भी कुछ और दूर तक हटा दिया।
मैं भी इतने में किसी कार्यवश उसी कक्ष में जा पहुँचा ।।
१०९७ सकपका गईं मुझको लखकर माण्डवी तथा सीता, दोनों।
करने लग पड़ी शिकायत वे, जो बाकी थीं बहिनें दोनों ।।
१०९८ उर्मिला ने कहा- "सीता ही दोषिनी बनी सबसे पहले ।।"
बोली श्रुतिकीर्ति, माण्डवी के बारे में, विरुद्ध ही मुझ से ।।

१०९९ मैंने प्यार से उन्हें डाँटा, तब कहा कि "धनुमत छूना अब ॥"
पर, मन में विस्मित बहुत हुआ मैं दोनों का लख-सुन 'करतब'॥
११०० सोचा कि 'हटाया है यद्यपि दोनों ही ने इस धनु-वर को–
मैं नहीं यथापि वीर्यशुल्का घोषित कर सकता दोनों को ॥
११०१ वैसे भी, पहले क्रम पर तो सीता ने ही धनु सरकाया।
माण्डवी, आयु में भी कुछ कम- यह विचार मम उर में आया ॥
११०२ ठाना की वीरता- शुल्का, मैं सीता को ही घोषित कर दूँ।
शिव-धनु जो उठा सके, सो इसको वरे' शर्त सम्मुख धर दूँ ॥

(दोहा)–की तदनन्तर घोषणा, मैंने इसी प्रकार।
करा दिया सर्वत्र ही इसका प्रचुर प्रचार ॥१६१॥
तब से अब तक बहुत-से, आये राजकुमार। ★
पर असफल वापिस गये सारे, हिम्मत हार ॥१६२॥

११०३ इस बीच, माण्डवी सहानुजा सांकाश्यपुरी को चली गई।
चारों बहनों की वह जुँगली, दो-दो के टुकड़ों में बिखरी ॥
११०४ आते ही रहे यहाँ नृप सुत फिर भी, सीता की चाह लिये।
जाते भी रहे, विफलता की वेढब-सी आह-कराह लिये ॥
११०५ मैं बहुधा यज्ञ रचाता हूँ सो कुछ तो उनके मिष आये।
कुछ, वैसे भी, सुस्पष्टतया धनु के उत्तोलन हित आये ॥
११०६ इन दोनों का आगमन आपके साथ, यज्ञ के अवसर पर–
है यद्यपि हुआ, तथापि आप लाये हैं जो इन से कहकर–
११०७ वह वचन आपका अनृत कभी मैं होने दे न सकूँ, भगवन्।
सो, मँगवाये देता हूँ शिव धनु यहीं, अनुचरों से, धीमन् !!"
११०८ यह कह, मुनि के डेरे में ही, धनु श्रेष्ठ, नृपति ने मँगवाया।
जिसके लाये जाने पर दर्शक- समूह बड़ा, उमड़ आया ॥
११०९ नागरिक तथा यज्ञातिथिगण मिलकर शतशः थे नर-नारी।
जिनमें धनु के उत्तोलन को लखने की थी उमंग भारी ॥

★ वाल्मीकि–रचित रामायण के अनुसार 'धनुष–यज्ञ' जैसा कोई समारोह आयोजित ही नहीं किया गया था। ("ओ प्रे.")

१११० मुनिवर ने विदेह की लेकर सहमति, करदी अनुमति प्रदान।
'केवल न उठावें धनुष, राम, प्रत्यंचा को भी सकें तान ।।'
११११ क्रीडावत् उठा लिया धनु को, फिर प्रत्यंचा तानी ज्योंही—
राम के हाथ से टूटा वह, सब के लखते लखते, त्योंही ।।
१११२ विस्मय-मिश्रित आनन्द हुआ, नृप विदेह को, लख चमत्कार।
वे लगे सोचने-'देवतुल्य होता प्रतीत दशरथ कुमार ।।'
१११३ 'लेकर बरात, आइये तुरत'- भेजा संवाद अवधपति को।
दुगुना उत्साह, यज्ञ में अब हो गया जनक मिथिलापति को ।।
१११४ जब यज्ञ हो चुका पूरा, तब सब अतिथि सानुनय ठहराये।
यों कहा कि "तब तक रुकें आप, जब तक परिणय न निबट जाये ।।"
१११५ अधिकांश रुकगये अतिथि लोग, अनिवार्य कार्य वाले न रुके।
जो गये उन्हें यह रही कसक, रुक विवाह-अवसर तक न सके।।
१११६ सन्देश, अवध में जब पहुँचा, तब नृप दशरथ ने सर्व प्रथम—
गुरुवर वसिष्ठ को बुलवाया, लेने उनकी सम्मति उत्तम ।।
१११७ उस समय यशोदा का पति था गुरुदेव के निकट विद्यमान।
जिस समय बुलावा, नरेश का, आया था उनको स-सम्मान ।।
१११८ [फिर क्या क्या हुआ अयोध्या में, इसका हमने विस्तृत विवरण—
रामायण के पद्यानुवाद में दिया ☐ समस्त (यथा-प्रकरण)।।
१११९ इच्छुक नारीनर वहाँ लखें, हम यहाँ छोड़ते हैं उसको।
औचित्य भी प्रमाणित उसके वर्णन का, किस प्रकार कब हो ??]
११२० (केवल इतना सविशेष कहें)—बारात में गये थे जो जो—
उनमें पति रहा यशोदा का, सँग रखा भरत ने था जिसको ।।

☐ उल्लेख्य है कि 'हिन्दी पद्यमयी बाल्मीकि रामायण' नाम से हमने रामायण का स्वतन्त्र, संक्षिप्त पद्यानुवाद (वैदिक विद्वान् पं. आर्य्य मुनि जी के प्रक्षेप-रहित भाष्य के आधार पर) लगभग १० हजार प्रिय छंदों में किया है; अस्तु। (' ओ. प्रे. ")

११२१ बिन दूल्हे की बारात ∅ चली, थे रामचन्द्रजी क्योंकि वहीं।
लक्ष्मण भी उनके ही सँग थे, सो इसमें वे रह सके नहीं ॥
(दोहा)--कुशध्वज को भी पत्रिका, प्रेषित की तत्काल ।
विदेह ने, श्रीराम के लिख विक्रम का हाल ॥१६३॥
११२२ 'पत्नी एवं बच्चियों सहित आओ तुरन्त' यह आग्रह भी--
था चिट्ठी में जो अग्रज ने निज अनुज के लिये लिख भेजी ॥
११२३ माण्डवी, तीन दिन पहले ही, दौरे से वापस थी आई ।
सेठानी जी ने जन्म, पुत्र को दिया, सूचना यह पाई ॥
११२४ सो, हँसी खुशी में तीन दिवस बीते, भोजादि अनेक हुए ।
जो हों प्रसूतिगृह में सुधार, उन पर निश्चय सविवेक हुए ॥
११२५ चौथे दिन ही यह पत्र कुशध्वज ने, अग्रज का, दिखलाया ।
'सत्वर चलना है मिथिला को,' ऐसा भी खुश हो, फर्माया ॥
११२६ तैयारी में दो दिवस लगे, तीजे दिन चारों व्यक्ति चले ।
जाते जाते भी सहस्रशः नारीनर आकर स-मुद मिले ॥
(दोहे)--विशेषतः माण्डवी से मिलने आये लोग ।
सबको लगता था कि अब होगा दीर्घ वियोग ॥१६४॥
इसी तरह श्रुतिकीर्ति से मिले बहुत नर नारि ।
पूछ रहे थे--"मिलोगी अब कब द्वय सुकुमारि" ॥१६५॥
११२७ यह सभी जानते थे कि ब्याह, सीता, का होने वाला है ।
फिर भी, कोई मानना चाहता न था कि लौटेंगी अब ये ॥
११२८ रानी जी एवं नृपवर भी कह नहीं पा रहे थे उनसे--
सुस्पष्ट बात ऐसी कि हमारे सँग ही आ जाएँगी ये ॥
११२९ सबके मन में था यही कि इन दोनों का भी होगा विवाह ।
सो, कोई शीघ्र लौटने की था प्रकट नहीं कर रहा चाह ॥

∅ अति संक्षेप से हम अपने जीवन की भी एक विशिष्ट रोचक सु-घटना लिखते हैं कि मई १९३७ में कतिपय कारणों से स्वयं हमारी बारात बैलगाड़ियों से, बिना दूल्हे के, गई थी; हमें 'कार' से कुछ दिनों पूर्व इन्दौर भेज दिया गया था जहां विवाह दिवस (१७ मई) तक रुक कर ऐन दिन देपालपुर ससुराल पहुंचे। ("आ. प्रे.")

११३० वारात, अयोध्या से मिथिला नगरी में आ पहुँची जिस दिन–
ये चारों भी सांकाश्यपुरी से पहुँचे जनकपुरी उस दिन ॥

(दोहे) उधर, अश्वपति ने दिया, निज सुत को आदेश –
"लाओ तुम दौहित्र मम, करके अवध-प्रवेश ॥१६६॥
चित्त चाहता है कि मैं लखूँ भरत को शीघ्र ।
उससे मिलने के लिये मम चेतन भी व्यग्र" ॥१६७॥

११३१ आदेश मानकर पुत्र, युधाजित् नामक चले अयोध्या को ।
निज भागिनेय को लाना था, इनका भी अतिशय प्रिय था जो ॥
११३२ मग में लग गये दस दिवस, तव उस अवधपुरी में वह पहुँचा ।
जा चुकी बरात जहाँ से थी, जाते ही जिसका पता चला ॥
११३३ इसलिये न विल्कुल भी ठहरा, सीधा मिथिला की ओर गया ।
दशरथ को अत्यानन्द हुआ जब श्यालक सहसा ही आया ॥
११३४ ऐसे अवसर पर पहुँचा था वह भरत भूपसुत, का मामा –
श्रुतिकीर्त्ति-माण्डवी के विवाह-विषयक जब था प्रस्ताव हुआ ॥
११३५ कह रहे महामुनि कौशिक थे नृपवर विदेह से इस प्रकार–
"प्रस्तावरूप में रखता हूँ तवसमक्ष मैं अपना विचार ॥
११३६ हे राजन् ! जो माण्डवी तुम्हारी ज्येष्ठा भली भतीजी है ।
एवं श्रुतिकीर्ति बहिन छोटी अति चतुरा, सगी उसी की है ॥
११३७ उनका विवाह तुम भरत और शत्रुघ्न कुमारों से कर दो ।
सँगसँग चारों संस्कारों का पावन आयोजन सत्वर हो ॥
११३८ कुशध्वज-नृप की ये उभयसुता, सर्वथायोग्य उन सुतद्वय के ।
मिलते गुण कर्मस्वभाव सभी पूरे पूरे उनसे इन के ॥
११३९ मैंने सुन रखी प्रशंसा है प्रामाणिक सूत्रों से इनकी ।
तुम स्वयं जाँच कर सकते हो, कैसी है चरितावलि उनकी ।
११४० मेरा पुनरपि आग्रह तुमसे है यही कि यह प्रस्ताव तुरत–
स्वीकार करो, जामाता हों कुशध्वज के ये शत्रुघ्न-भरत ॥"
११४१ इसपर गुरुवर वसिष्ठ ने भी पूर्णतः समर्थक वचन कहे ।
स-विशेष माण्डवी के गुणगण वर्णित वे करते बहुत रहे ॥
११४२ था भरत का सखा वहीं किन्तु जब गुरुवर ने कह सभी दिया -
तब उसने कुछ भी नहीं माण्डवी के बारे में कथन किया ॥

११४३ इतने में स्वयं भरत-मातुल यों बोल उठे, कर अनुमोदन—
" प्रस्ताव सर्वथा सुन्दर है, मैं पूरक ही कुछ कहूँ बचन ॥
११४४ मम पिता के पुरोहित हैं जो, आई है पुत्रवधू उनकी —
सांकाश्यपुरी से ही, उनके हैं पिता (सु) राजपुरोहित ही ॥
११४५ उन शोभादेवी से मेरी पत्नी को विदित हुआ विवरण—
दोनों कुशध्वज कन्याओं का, जिसमें अतीव है आकर्षण ॥
११४६ वह अत्याकर्षक प्रामाणिक विवरण मैंने सच ठाना है।
बस, इसीलिये करना हार्दिक अनुमोदन, तुरन्त माना है ॥
११४७ अनुरोध, विदेह तथा कुशध्वज, दोनों समधीगण से मेरा—
है यही कि स्वीकृत कर ही लें प्रस्ताव, महामुनि का प्रेरा ॥"
(दोहा) समधी द्वय ने तुरत ही, सविनय मानी बात।
मुनि के चरणों में हुए उभय तभी प्रणिपात ॥१६८॥
११४८ फिर कहा जनक ने कि " हम धन्य दोनों भाई ही आज हुए।
जो अत्युत्तम प्रस्ताव आपने रखा स्वयं ही महामुने !!
११४९ अनुमोदक समधीजी का तो हमपर है अधिक प्रभाव पड़ा।
गुरु वसिष्ठ जी ने किया समर्थन, उसका भी सुमहत्व बड़ा ॥
११५० अब चारों ही संस्कार यथाविधि गुरुवर वसिष्ठ के द्वारा—
हों सम्पादित जिनमें वैदिक सु-विधान रहे व्यवहृत सारा ॥
(दोहा) फिर विवाह विधिवत् हुए चारों ही उस काल।
[रामायण से हो विदित जिनका पूरा हाल] ॥१६९॥ ⊙
११५१ पर कौशिक मुनि तो पहले ही, जाने को दिख पाये उद्यत।
सो, पूछा नृपति कुशध्वज × ने जा उनके समीप, होकर नत ॥
११५२ " भगवन् ! हम दोनों भाई जब प्रस्ताव आपका मान चुके।
तब ऐसी क्या रुष्टता कि शुभ अवसर पर आप रहें न रुके ॥

⊙ पीछे प्रयच्छद क्र. ११९८ की पादटिप्पणी का हमारा प्रलेख यहां भी सुसम्बद्ध समझें। ('ओ॰ प्रे॰')

× दोहा क्र ९ में जो पादटिप्पणी हमने लिखी है उसी के अनुसार यहां भी 'कुशध्वज' पढ़िये अन्यथा छन्दोभंगदोष प्रतीत होगा - [ऐसे शब्दों में अन्यत्र भी] ('ओ॰ प्रे॰')

११५३ होने में विवाह यों विलम्ब हो रहा कि नहीं 'समावर्त्तन-'
हो पाया राम तथा लक्ष्मण दोनों का था अब तक शोभन ॥
११५४ वे रहे आपके साथ अतः अब यहाँ 'समावर्त्तन' होगा ।
फिर चारों का विवाह, केवल दो दिवस बाद, मुनिवर! होगा ॥
११५५ सुनकर प्रस्थान आपका, मम ज्येष्ठा कन्या, माण्डवी, मुझे-
प्रेरित करके बोली कि "आप कहिये रुकने को मुनिवर से ॥"
११५६ वह तो आग्रह के लिये स्वयं श्री सेवा में चाहे आना ।
पर मैंने कहाकि "मुनिवर की अनुमति बिन उचित नहीं जाना ॥
११५७ इसलिये रुकें हे पूज्यपाद ! मेरे ही नम्र निवेदन पर ।
अन्यथा दीजिये अनुमति, मैं उसको आने दूँ घर जाकर ॥"
११५८ कौशिक मुनि हँसकर यों बोले "आग्रह की कोई बात नहीं ।
क्या तुम्हें औपचारिकतामय दिख पाया मेरा स्नेह कहीं ??
११५९ फिर भी, माण्डवी यहाँ आवे, मैं स्वयं चाहता था ऐसा ।
जिसका प्रस्ताव किया मैंने, लखलूँ न उसे, यह उचित कहां ??
११६० इसलिये, न आग्रह को आवे पर वैसे ही वह आ जावे ।
यह पाणिग्रहण का लगा 'वेध' मम शुभाशीष इसमें पा ले ॥
११६१ श्रुतिकीर्ति भी रहे उसके संग, दोनों बहिनों को देखूँगा ।
यदि भूल हुई होगी मुझसे तो स्व-प्रस्ताव लौटा लूँगा ॥
११६२ अब कारण सुनो कि सत्वर क्यों पड़ रहा यहाँ से है जाना ।
संभव हो रहा क्यों न मेरा कुछ दिन तक अधिक ठहर पाना ॥
११६३ ज्यों राज्य नया ही मिला तुम्हें- थोड़े-से वर्षों पूर्व, अहो ।
त्यों रैक्व नाम के राजा को लघुराज्य अभी ही मिला, अहो ॥
११६४ तुम तो विदेह के भाई हो, सो पहले से हो भूपति--सुत ।
पर, नृप होने से पूर्व, रैक्व; सामान्य पुरुष था, दीन बहुत ॥
११६५ हाँ, विद्या में उसके समान कोसों तक दिखता न था कहीं ।
था ब्रह्मज्ञानमय तेजस्वी, पर लक्ष्मी की थी कृपा नहीं ॥
११६६ यद्यपि वह दैहिक रोगी रह दद्रु से बना था अधिक म्लान ।
मुखमण्डल तथापि नित्य दमकता था ब्रह्मज्ञों के समान ॥

११६७ सुप्रसिद्ध 'जान श्रुति पौत्रायण' नृपवर की एकमात्र कन्या-
रैक्व से स्वपितु को ब्रह्मज्ञान दिलवाकर हो पाई धन्या॥
११६८ इससे पहले, जामाता ही रैक्व को, स्वयं का, बना लिया।
पुत्री के आग्रह पर नृप ने विज्ञानी को यह मान दिया॥
(दोहे)—गाड़ी के नीचे मिला, दद्रु खुजाता विप्र।
ढूँढ खोज पर कठिनता पूर्वक उन्हें, अक्षिप्र ॥१७०॥
इसी रिप्र से कर दिया, राजा ने सोत्साह--
जब कन्या का, ज्ञान की सुप्राप्ति हेतु, विवाह ॥१७१॥
तब जामाता--रैक्व--ने दिया ब्रह्म का ज्ञान।
भूप 'जान श्रुति' का सभी दूर किया अज्ञान ॥१७२॥
११६९ उस नृप का था वह गाँव जहाँ गाड़ी के नीचे रैक्व मिला।
सो, अब, जामाता होने पर, भूपति भी उसको वहीं किया।
११७० पड़गया ग्राम का नाम 'रैक्वपर्ण' हे कुशध्वज ! उस दिन से
रैक्व के नाम पर ही, कि जहाँ वे पति पत्नी अब हैं सुख से।
११७१ दद्रु भी दूर, उपचारों से, हो गया; रैक्व का बना महल।
उसके छोट-से राज्य मध्य बढ़ गई धर्मयुत चहल पहल॥
११७२ ओङ्कारनाथ को धन्यवाद, वह रैक्व चाहता है देना।
उस बारे में है यज्ञ, उसी में भाग मुझे परसों लेना॥
११७३ उसके द्वारा जो बना ब्रह्मज्ञानी वह नृपति 'जानश्रुति' भी-
आएगा वहाँ, जिसे लखकर मेरे उर में हो तुष्टि बड़ी॥
११७४ उस ज्ञानवती ॥ नाम्नी कन्या को भी लख मैं सुख पाऊँगा।
जिसने रैक्व को बनाया पति, निज पिता हेतु शुचि त्याग किया।
११७५ मैं क्योंकि स्वयं क्षत्रिय नृप था, अब मुनि बाना मैंने धारा।
इसलिये सदा ऐसे राजा लखना मुझको लगता प्यारा॥

॥ उपनिषद् के इस महत्वमय आख्यान को आधार बनाते हुए हमने अधिकतर कल्पना पर निर्भर करके स्वयंवरा ज्ञानवती या रैक्वपर्ण की रानी' नामक पद्योपन्यास आकस्मिक रूपेण रचा है कृपया उसे पढ़ें। 'ज्ञानवती' नामकरण भी हमारी कल्पना मात्र है।
[" ओ. प्रे. ")

११७६ आमंत्रण,मिथिलानरेश के यज्ञ का, इसी से था माना।
प्रस्ताव यहाँ, विभु-विधान से, मेरे द्वारा था यह आना ॥
११७७ जव यज्ञ हेतु चलने को था, तब इभ्यग्राम का सभ्य एक–
तव कन्या-द्वय की शंसा में कहने आया वातें अनेक ॥
११७८ उसने माण्डवी–महत्व कहा, घटनाओं सहित विशेषतया।
वस, उसी समय से इन विवाह-द्वय का मुझको आभास हुआ ॥
११७९ हैं बड़े ब्रह्मवेत्ता विदेह, तुम भी हो अनुज ब्रह्मज्ञानी।
मैं कृतज्ञ हूं, तुम दोनों ने जो मम प्रेरणा तुरत मानी ॥
११८० ऐसे ही, नृपति अश्वपति का यज्ञामन्त्रण आया जव-जव।
मैं इन ब्रह्मज्ञभूप के भी यज्ञों में पहुंचा हूं तव-तव ॥
११८१ यह प्रतीत होता है कि शीघ्र वे यज्ञ रचाने वाले हैं।
पहले के समान सानुरोध फिर मुझे बुलाने वाले हैं ॥
११८२ उन दिनों तुम्हारी दुहिता-द्वय, निज निज पतियों के संग वहाँ।
मिल मुझे सकेंगी किन्तु उन्हें देखूं भी मैं क्यों नह यहाँ ??
११८३ जैसा मैंने सुस्पष्ट कहा, 'प्रस्ताव ले सकूंगा वापिस।
है चार जीवनों का सवाल, इसलिये उचित यह देख-परख" ॥
११८४ इस पर दोनों कन्याओं को भेजा कुशध्वज ने घर आकर–
जाने भी दिये न सँग उनके लौंडी वाँदी नौकर चाकर ॥
११८५ माण्डवी और श्रुति कीर्ति वहां पहुंचीं ऐसे शुभ अवसर पर–
जब श्रुतिमंत्रों का पुण्यपाठ मुनिवर करते थे स्वर भर-भर ॥
११८६ संयोग रहा कि माण्डवी को जिस ऋचासे रही प्रीति बहुत–
बस, उसी 'तमीळत' वाली की ध्वनि होती हुई सुनी गुंजित ॥
११८७ धीरे से अनुजा बोल उठी–"दीदी ! मुनिवर भी रटें यही।
क्या गुरुवर सम ही इनसे भी तुमने पहले यह वात कही" ??
११८८ संकेत, अग्रजा समझ गई जो उस दिन के वारे में था–
जिस दिन गुरुवर से इसी मन्त्र का सवसे पहले अर्थ सुना ॥
११८९ पर, हंसकर इतना कहा कि "तू श्रुत्तो ! है नित्य संग मेरे।
फिर कैसे यह विचार बेढव आया, कहदे, मन में तेरे ??

११९० अपने चेतन के शासन को ढीला मत रख अब इस प्रकार।
जिससे मन बन उद्दण्ड, करे ऐसे-ऐसे अनुचित विचार॥
११९१ वाणी को भी प्रेरित करके यह अनियंत्रितमन बुलवाता-
उससे ऐसी बातें जिनका रहले न सुमति से कुछ नाता॥
११९२ इसलिये सुदृढ़कर मन पर ही अपने चेतन का तू शासन।
मुंह से भी ताकि नहीं निकले कोई बेढंगा कहीं वचन॥
११९३ मैंने मन परवश करने का जो प्राणायाम रूप साधन-
बतलाया था कुछ दिन पहले, कर उसका अनुष्ठान अनुदिन"॥

(दोहे) इतने ही में आगईं, उन मुनिवर के पास-
जिनके दर्शन की रही, उन्हें सु-सात्विक प्यास ॥१७३॥
नमन किया कह 'नमस्ते', पाया आशीर्वाद।
कौशिक मुनि से, था जिन्हें शुचि उत्तम आह्लाद ॥१७४॥

११९४ मुनिवर बोले कि "साण्डवी ! तुम यह वेद मंत्र लिखलो हमं
प्रभु परमेश्वर की भक्ति हेतु प्रेरणा तुम्हें यह उत्तम दे॥
११९५ इसमें 'भरतम्' का सर्वप्रथम ओंकार अर्थ निश्चित मानो।
पर, दूजे क्रम पर चाहो तो निज पति का भी आशय जानो॥
११९६ यद्यपि इतिहास किसी का भी कहती है श्रुति भगवती नहीं।
(वह आदि-सृष्टि की विभु-वाणी क्या ऐसा कहभी सके कहीं?
११९७ मनुजों ने तथापि नामकरण, वैदिक शब्दों को लख-लखकर-
कितने ही किये कि होता है जीवन पर जिनका बड़ा असर॥
११९८ मुझको ही देखो, रखा गया जो विश्वामित्र नाम मेरा-
लख श्रुतिमन्त्रों को, राजपुरोहित जी ने होगा यह प्रेरा॥
११९९ बचपन में माता-पिता और फिर मम गुरुवार ने दिया ध्यान।
होने पर वयस्क, नाम निरख, मैं भी होपाया सावधान॥
१२०० जो विश्वामित्र नाम से हैं प्रभुवरके गुण वर्णित पावन-
वेदों में, बस, मैंने भरसक वे ग्रहण किये, शुचिरख जीवन॥
१२०१ वैसे ही, 'वसिष्ठ' शब्द मिले वेदों में तो ओंकार-परक।
पर, नामकरण के समय शुभाकांक्षा से रखा कि जो सार्थक॥

१२०२ उन वसिष्ठ जी ने 'भरत' नाम, दशरथ-कैकेयी के सुत का—
उत्तमता हेतु रखा होगा, निःसंशय लखकर यही ऋचा ॥
१२०३ तदनन्तर सबला कैकेयी जो विदुषी सुता 'अस्वपति' की ।
शिक्षण, प्रारम्भिक वर्षों में श्रेयस्कर नित्य रही देती ॥
१२०४ फिर दशरथ ने उत्तम शिक्षा दिलवाई गुरु वसिष्ठ जी से ।
तव मनोनीत पति, भरत, स्वयं अत्यन्त श्रेष्ठ संस्कारी है ॥
१२०५ मख-रक्षण हित मैं राम तथा लक्ष्मण को लेने पहुँचा जब ।
देखा था उसे अयोध्या में, परखा भी तुरन्त ही था तब ॥
१२०६ मेरी अनुभवी दृष्टि उसमें वे समग्रही गुण लखपाई ।
जिनकी प्रभु ने श्रुति में महिमा, है 'भरत' नाम से बतलाई ॥
१२०७ शत्रुघ्न भी तभी दिखा मुझे, उसको भी तब मैं परख सका ।
आर्योचित गुण उसमें भी सब, यह दिव्य दृष्टि से निरख चुका ॥
१२०८ तुम दोनों ही गुणकर्म स्वभावों में अनुकूल दिखो मुझको ।
सो, यही चाहता हूँ कि तुम्हारा यथा शीघ्र परिणय अब हो ॥
१२०९ कुछ भी त्रुटि दिख पाई न मुझे, तुम और तुम्हारी अनुजा में ।
अन्यथा, कहा था कुशध्वज से; प्रस्ताव निरस्त कराता मैं ॥
१२१० आग्रह मत करो कि रुक जाऊँ, कारण तब पिता बता देंगे ।
मैं कहाँ तुम्हें लखना चाहूँ इसका भी सभी पता देंगे ॥"
१२११ श्रुतिकीर्ति चुप नहीं रह पाई, बोली कि "मंत्र यह तो मुनिवर।
दीदी माण्डवी स्वयं जपती आई हैं अब तक जीवन भर ॥"

(दोहा)—सभी कही तब सविस्तर, अनुजा ने वह बात ।
जैसे, जब इस मंत्र का अर्थ हुआ था ज्ञात ॥१७५॥

१२१२ माण्डवी लजाकर बोली तब, "हे भगवान् ! इसकी पड़ी बान ।
कब क्या कहना है उचित, नयह श्रुत्तो को रहता कभी ध्यान ॥
१२१३ आपका मुझे आदेश मान्य, मैं ऋचा यह जपूँगी प्रतिदिन ।
संक्षिप्त ही रटा करती थी, अब पूरी श्रुति पर दूँगी मन ॥
१२१४ कह सिर्फ 'तमीळत भरतमू' ही मैं साध जो किया करती थी ।
परमेश्वर ने आपके महा-माध्यम से वह करदी पूरी ॥

१२१५ क्या पता उसी ने पूर्ण मन्त्र जपने की यह प्रेरणा आज–
आपके दिव्य मुख द्वारा हो दिलवाई ? उसके वड़े काज !!"
१२१६ हँसकर मुनिवर ने कहा कि "तुम, वेटी माण्डवी ! वड़ी विदुषी।
अपनी शुचिमति अतिशय कौशलपूर्वक है मम सम्मुख रख दी॥
१२१७ पूरी ही ऋचा, प्रभुपरक शुभअर्थों के मनन सहित जपकर।
ओंकार भरत एवं दशरथ सुत भरत से मिलें पावन वर॥
१२१८ तुम दोनों का निज पतियों के सँग, नित्य करे शिव सुकल्याण।
अच्छा, अव दे आशीष पुनः, यज्ञार्थ कर रहा मैं प्रयाण॥"
(दोहा)–यह कह, कौशिक मुनि गये, नृप विदेह के पास।
जिनसे हो सत्कृत, विदा हुए तुरत सोल्लास ॥१७६॥



शुभ–परिणय (बारहवाँ प्रकरण)

१२१९ जब ग्राम रैक्वपर्णा में जा पहुँचे कौशिक मुनिवर महान्॥
तव मिला रैक्व का स्वसुर उन्हें जो अव नृप था अति बुद्धिमान्॥
१२२० उसके अतिरिक्त, भिली पुत्री उस 'पौत्रायण' की, "ज्ञानवती"●
रैक्व के संग आसीना थी जो (होने से उसकी पत्नी)॥
१२२१ वह इभ्यग्राम का सभ्य दिखा जो अतिथि रूप में आया था।
रैक्व से रहा परिचित पूरा सो उसने उसे बुलाया था॥
१२२२ मुनिवर को लखकर अभिवन्दन करने समीप आया ज्योंही।
दे आशीर्वाद, विहँस कौशिक यों बोल उठे उससे त्योंही॥
१२२३ "माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति हेतु हे वत्स ! कहा था जो तुमने।
सो मैं कर पाया अनायास, ऐसी की दया ओ३म् शिव ने॥"

● पीछे, प्रिय छंद क्र॰ ११७४ को पाद टिप्पणी को यहाँ भी सु-सम्बद्ध जानें। (" ओ प्रे. ")

(दोहे)—तदनन्तर बतला दिया, उसको पूरा हाल ।
उसने भी मुनि को दिया, धन्यवाद तत्काल ॥१७७॥
फिर मांगी नृप रैक्व से विदा सभ्य ने शीघ्र ।
क्योंकि विवाहों में उसे जाना अब था इष्ट ॥१७८॥

१२२४ मुनिवर ने भी कर दिया समर्थन उसके सत्वर जाने का ।
यों कहा कि "विलम्ब होने पर अवसर न हाथ फिर आने का ॥
१२२५ मैं तो हूँ निस्पृह, इसी लिये आ गया वहां से; जो समुचित ।
पर, यह कुशध्वज की प्रजा, अतः इसका नपहुँचना हो अनुचित ॥
१२२३ फिर, इसकी ही सु-प्रेरणा से प्रस्ताव कर सका मैं वैसा ।
मिलता न मुझे यदि यह, तो था मेरे द्वारा न शक्य जैसा ॥
१२२७ यों भी, कुशध्वज की दोनों ही कन्याएँ जनता को प्यारी ।
सर्वथा सर्वदा रहीं कि जिनमें बड़ी तो बहुत उपकारी ॥
१२२८ हार्दिक उत्साह सहित उसकी जय सभी प्रजाजन बोल रहे ।
माण्डवी कुमारी को सुरत्न मानते सतत अनमोल रहे ॥
१२२९ गर्मी में दौरे पर जब वह निकली सहानुजा अभी अभी ।
तब अधिक प्रसन्न हुए उस पर ग्रामों के महिला पुरुष सभी ॥
१२३० पहला ही था वह इभ्यग्राम, यह सभ्य पुरुष जिसका वासी ।
इसमें जाकर थी उसे प्राप्त हो सकी कीर्ति अच्छी खासी ॥
१२३१ बस, तदनन्तर ही मुझसे यह था मिला भमाश्रम पर आकर ।
कुशध्वज-कन्याओं की शंसा मैंने की इससे ही सुनकर ॥
१२३२ है इभ्यग्राम का प्रतिनिधि भी, सांकाश्यपुरी की संसद् में ।
निर्वाचित इसे कराया है, माण्डवी नृप सुता ने, सुन लें ॥
१२३३ अन्य भी कई कारण हैं, सो इसका जाना तो आवश्यक ।
हाँ, मैं तबतक हूँ यहीं कि होता यज्ञ समाप्त नहीं जब तक ॥
१२३४ यह रहता केवल दर्शक, मैं हूँ यज्ञ कराने वाला भी ।
मत रोको इसको, नहीं गमन इसका जा सकता टाला ही ॥"
१२३५ इस पर कर दिया विदा उसको नृप रैक्वदेव ने उसी समय ।
वह भी तुरन्त चल पड़ा क्योंकि था विलम्ब हो जाने का भय ॥

१२३६ पहले तो अपने घर पहुंचा, उपहार हेतु सु-व्यवस्था की।
निज ग्राम निवासीगण को भी यह मंगलमयी सूचना दी॥
१२३७ फिर सब गांवों में भी उसने यह भिजवाया शुभ-समाचार।
चल पड़े उन सभी से अगणित नारीनर ले स्नेहोपहार॥
१२३८ सांकाश्यपुरी से भी जब तक सब ग्रामों को सूचना मिली।
तब तक तो ग्रामों की जनता कर चुकी थी सभी तैयारी॥
१२३९ इतना ही क्यों, अधिकांश पुरुष एवं महिला, मिथिला के प्रति
प्रस्थान कर चुके थे तब तक, हो निज हृदयोंमें हर्षित अति।
१२४० नारी-नर शतशः गये राजधानी में से भी मिथिला को।
ऐसा तो कोई न था कि जिसने कुछ उपहार न भेजा हो॥
१२४१ जा पाया अगर नहीं कोई तो उसने जाने वाले के-
हस्ते अपना उपहार किया प्रेषित, शुचिस्नेह भरित उर से।
१२४२ मिथिला से जो थे अनतिदूर, उनके वासी पहुँचे पहले।
दूरस्थ ग्राम वाले विभिन्न समयों में विलम्ब से पहुंचे॥
१२४३ फिर भी, सबके सब, तब तक तो हो गये उपस्थित किसी त
जब तक न विदा हो पाई थी, शुभ समारोह थे जगह-जगह
१२४४ सारी मिथिला दुलहिन जैसी दिखती थी सजी हुई वैसी-
देखी थी सेठ सुदर्शन ने उस दिन सांकाश्यपुरी, जैसी॥
१२४५ वे स्वयं कह रहे थे कि "माण्डवी का था जन्म दिवस जब वह
जिस पर नागरिक बना था मैं, जिसकी स्मृति आतीहै रह
१२४६ उस दिन थी जैसी सजी हुई सांकाश्यपुरी, बस, वैसी ही-
या उससे भी कुछ बढ़-चढ़कर मिथिला नगरी है सजी हुई॥
१२४७ सेठानी जी आग्रहपूर्वक इतने-से शिशु को ही लेकर-
आई थीं साथ, सेठजी के, लखने थे उन्हें अनूठे वर॥
१२४८ स-विशेष, भरतजी को लखना उद्दिष्ट था यहां आने में।
था मिलना इष्ट माण्डवी से दुलहिन के प्यारे बाने में॥
१२४९ पत्नी, उप महापौर जी की, निज पति के सँग-सँग आई थीं।
प्राचार्या जी को भी अपने साथही सु-... में लाई थीं॥

१२५० थे प्रधान मन्त्री के सिवाय मन्त्रीगण आये सारे ही।
उन एकाकी पर डाल सभी अपनी–अपनी ज़िम्मेदारी ॥
१२५१ वे भी बेमनसे रहे वहां, अनिवार्य क्योंकि था ही रहना।
'बिल्कुल न अरक्षित रहे राज्य' था यही माण्डवी का कहना ॥
१२५२ बोले प्रधान मंत्री कि 'भले ही' मन्त्राणी, सह-मंत्राणी–
बिन विभाग की, वे दोनों थीं कुशध्वज-कन्याएं कल्याणी ॥
१२५३ पर, जब तक यहां रहीं तब तक सब विभाग का यों रखा ध्यान-
मानो हरेक हो उनका ही, माण्डवी अधिक थी सावधान ॥
१२५४ श्रुति कीर्ति सर्वदा करती थी पूरा सहयोग अग्रजा का।
सेवा कार्यों में चित्त बहुत लगता था यों उस अनुजा का ॥
१२५५ था उनके पास विभाग नहीं कोई, सो उनके जाने से--
प्रत्यक्ष हानि तो नहीं दिखे पर जाना परोक्ष में अखरे ॥
१२५६ अब तक मेरे समेत सारे मंत्री निश्चिन्त रहे बिल्कुल।
माण्डवी सम्हाला करती थी शासन के कार्य, असल में, कुल ॥
१२५७ फिर भी, निज सूझबूझ से वह ऐसे निर्मित कर गई नियम--
जिन पर चलने से राजकाज हम सबको रहलें सदा सुगम ॥
१२५८ सामान्य परिश्रम द्वारा ही सब प्रबन्ध करलेंगे उत्तम।
यह कृपा माण्डवी की, सचमुच है, अति कृतज्ञ हैं उसके हम॥"
१२५९ गुरुवर एवं उनकी आर्या भार्या थे उभय पधारे, वे--
जो गौरव सर्वाधिक इसका, निजनिज उर-घर में धारे थे ॥

(दोहे) वैदिक विधि से हो चुका, जब विवाह-संस्कार।
तब क्रमशः देने लगे, सब अपने उपहार ॥१७९॥
उपाध्यायजी ने किया इस क्रम का प्रारम्भ।
बड़ी सरलता से बढ़े, तनिक भी न था दम्भ ॥१८०॥

१२६० धार्मिक विभाग के मंत्री थे, सो चारों वेद और मनुस्मृति–
कौशेय वसन में लपेटकर प्रस्तुत कीं उन दोनों के प्रति ॥
१२६१ "श्रुतिकीर्ति के लिये है मनुस्मृति, माण्डवी के लिये वेद, अहो"।
यह भी कहदिया वहीं जिससे रंचभर किसी को भ्रान्ति न हो ॥

१२६२ शुचि ऋग्वेदादि संहिताएँ देने के सिवाय भी, उत्तम-
उपहार माण्डवी को विशिष्ट अतिपावन दिया जोकि अनुपः
१२६३ मोटे मोटे स्वर्णाक्षर में लिख मंत्र 'तमीळत' प्रतीकयुत-
नीचे भावार्थ भी लिखा था जिस कागज पर संक्षिप्त बहुत-
१२६४ वह मढ़ा हुआ चिकना कागज, करके 'भरतम्' को रेखाङ्
गुरुवर ने दिया माण्डवी को, मर्यादापूर्वक हो सस्मित ॥
१२६५ [फिर, भेंट तो सहस्रों आई पर सबका संभव कहाँ कथन।
सो, यहाँ प्रथम एवं विशिष्ट उपहार का हुआ है वर्णन ॥]
१२६६ तदनन्तर भोज पाँच दिन तक नृप जनक ने दिये बड़े भव्य।
प्रतिदिन पदार्थ स्वादिष्ट बनाये जाते रहे सु नव्य दिव्य%
१२६७ फिर एक दिवस दशरथ नृप ने सब उपस्थितों को भोज दिया।
उसके दूजे दिन, भरतदेव के मामा ने भी यही किया ॥

(दोहे) सात दिनों तक खूब ही विवाह की ज्योनार--
दीं, लीं दोनों पक्ष ने, कब था भेद--विचार ॥१८१॥
दशरथ से यों जनक ने कहा कि "घर ही आप---
मिथिला को अब समझिये, समधी जी निष्पाप ॥१८२॥
उत्तर में अवधेश भी बोले इसी प्रकार।
दोनों में आत्मीयता करने लगी विहार ॥१३८॥

१२६८ निज निज राजाओं के सम ही बारात घरात, उभय ने भी-
आपस में नहीं परायापन बिल्कुल भी माना कहीं कभी ॥
१२६९ इसलिए उधर के भोजों में सम्मिलित इधर के नरनारी-
सब हुए, न इनमें से कोई बन सका परायापन-धारी ॥
१२७० (अन्यथा अनार्यों जैसी ही थोथी दलील दे सकते थे--
यानी वरपक्ष भोज दे तो कन्या वाले कब खा सकते ??

% वे स्व दिष्ट, भव्य, नव्य, दिव्य पदार्थ क्या होंगे इस विषय में हमें कल्पना कोई संकेत न दे सकी। हमारी बहुत इच्छा थी कि चार छः मिठाईयों का तो उल्लेख कर ही दिया जाता परन्तु वैसा कोई संकेत तक न पाकर लाचार रहे -- अस्तु। ("शेष है")

१२७१ लेकिन ऐसा अविचार नहीं आर्यों आर्याओं में पनपा।
अपनापन पूरी तरह परस्पर उभयपक्ष ने, अहा, रखा ॥)
१२७२ अन्ततः आठवें दिन तो वह आई ही बड़ी विकट वेला—
जब कन्याओं की होनी थी उन उनके पतियों संग, विदा ॥
१२७३ (इस अवसर पर जो करुणदृश्य समुपस्थित हुआ वहाँ सहसा।
उसका विवरण दे सकने की लेखनी कहां रखती क्षमता !!)
१२७४ (हम उपाध्याय जी का हीं शुभ उपदेश यहाँ करते अंकित।
अन्यों के वचनों का लेखा दे सकें, यह नहीं सम्भावित ॥)
१२७५ कुछ मन्त्र, स्वस्तिवाचन के पढ़, फिर उपाध्याय जी बोले यों-
"हे चारों प्रिय पुत्रियों तथा हे चारों प्रिय जामाताओं !!
१२७६ जो कुछ मैं कहता हूँ उस पर यदि तुम सब दोगे सक्रिय ध्यान-
तो नित्य करें कल्याण तुम्हारा, परमात्मा करुणानिधान ॥
१२७७ सबसे पहले तो 'वेदों का स्वाध्याय सर्वथा आवश्यक'। ⊙
इसमें न प्रमाद कभी करना, निःसंशय हो शुभ फलदायक ॥
१२७८ मनु महर्षि ने वेदों को ही सब कर्त्तव्यों का मूल कहा।
'वेदों अखिलो' (सु) 'धर्म-मूलम्'—ऐसा उनका सिद्धान्त रहा ॥
१२७९ 'स्वाध्याये नास्ति अनध्यायः' उनकी ही वाणी है यह भी।
यानी, रखनी चाहिये नहीं स्वाध्याय में किसी दिन छुट्टी ॥
१२८० जीवन-यात्रा में वेदों के स्वाध्यायी नर एवं नारी —
होते कदापि दिङ्मूढ़ नहीं, सर्वदा रह सकें सु-विचारी ॥
१२८१ है दूजी बात यह कि 'सबसे व्यवहार प्रीतिपूर्वक, तथैव—
धर्मानुसार हो यथा योग्य' जीवन भर तुम सबका, सदैव ॥
१२८२ तीजे, 'कटुता को तजो और मधुमय रखलो अपना प्रतिक्षण।
जिससे रहले अनजाने ही तुम सब में अद्भुत आकर्षण ॥
१२८३ माण्डवी तथा श्रुत्तो को मैं जो वेद मन्त्र इस बारे में—
हूँ बतला चुका अनेक बार इनके शिक्षण क्रम सारे में ॥

⊙ "योऽनधीत्य द्विजो वेदं अन्यत्र कुरुते श्रमः। सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशुग-च्छति सान्वयः ॥ (मनु० २-१६८) ("ओ प्रे०")

१२८४ वह इन्हें दिलाऊँ याद और इनके अतिरिक्त तुम छहों को–
उससे परिचित सूक्ष्मार्थ सहित करवाता हूँ, ध्यान दे सुनो॥
१२८५ 'मधुमन्मे निष्क्रमणं, मधुमन्मे परायणम्'– यह पहला पद।
'वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः' दूसरा पद॥
१२८६ बस, इतना-सा ही मंत्र किन्तु इसमें है भाव भरा भारी।
संक्षिप्त रूप में जिसकी मैं देता हूँ तुम्हें जानकारी॥
१२८७ जीवन में गमनागमन तथा बोलना; तीन ही प्रमुखतया–
करता रहता है मनुज सदा क्रियमाण कर्म-प्रेरित क्रिया॥
१२८८ यह मंत्र, प्रार्थना करना यों सिखलाता है परमेश्वर से।
'निष्क्रमण, परायण तथा वचन मेरे, हे शिव! मधुमय करदे॥
१२८९ व्यापक भी माँग अन्त में यह करनी इसमें बतलाई है।
(मानो गागर में ही सागर भरने की विधि सिखलाई है॥)
१२९० 'भूयासम्मधुसन्दृशः' कहो; यह सिखलाते ओंकारनाथ।
इसके पहले की तीनों ही माँगों के बिल्कुल साथ साथ॥
१२९१ अर्थात् सुमधु के समही मैं हो जाऊँ प्रिय, सुस्वादु, अनुपम।
ले रस, फूलों से; उसे बनाऊँ मीठा, कर श्रद्धामय श्रम॥
१२९२ यह करो प्रार्थना तुम प्रतिदिन, जीवन भी रखलो तदनुसार।
बिल्कुल भी रहो न कटुतायुत, मधुमय ही बनलो सब प्रकार॥
१२९३ चौथे, सर्वदा सत्य का ही करने में ग्रहण, रहो तत्पर।
जीवन में असत्य-धारण का आने ही कभी न दो अवसर॥
१२९४ प्रत्युत, असत्य के त्याग हेतु सर्वथा सदा रहलो उद्यत।
यह शिक्षण भी है वेदविहित मेरा, आप्तों द्वारा सम्मत॥
१२९५ अन्तिम, पाँचवीं बात है यह, पर, इसका सर्वाधिक महत्व।
सचमुच इसमें तुम सब पाओ सारे सुज्ञान का पुण्य,तत्व॥
१२९६ 'जीवन को यज्ञ रूप समझो, पावन सर्वथा सदैव रखो।'
'ऐसा कुयोग मत आने दो जब अशुचि किसी भाँति भी दिखो॥
१२९७ संसृति भर का मैं भला करूँ- यह रखो महत्वाकांक्षा तुम।
शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक; तीनों उन्नतियों पर हो श्रम॥

१२९८ जीवन का हो मुख्यतः यही उद्देश्य कि रह उपकार-शील ।
जनसेवा के शुभकार्यों में आने दो कभी न तनिक ढील ॥
१२९९ अब, एक बात है मुझे माण्डवी बेटी से कहनी केवल ।
जिस पर मैं उसके लिए चाहता हूँ देना सर्वाधिक बल ॥
१३०० हाँ, तो माण्डवी ! सुनोकि तुम्हें उस मंत्र 'तमीळत' वाले का–
पारायण करते ही रहना चाहिये, न उचित उसे तजना ॥
१३०१ पूरी हो गई साध, फिर भी उसकी तो वही महत्ता है ।
पहले से भी कुछ अधिक तुम्हें अब उसकी आवश्यकता है ॥
१३०२ परमेश्वर-परक अर्थ उसका, जो मैंने तब था समझाया ।
स्वर्णाक्षरयुक्त अब दिया जो लिखकर, उसमें भी बतलाया ।
१३०३ बस, उसपर ध्यान जमाकर तुम निज भर्त्तभरतदेव की भी–
निष्ठापूर्वक वेदानुसार सेवा करना पूरी पूरी ॥
१३०४ हार्दिक विश्वास मुझे कि रखें व्यवहार सुवैदिक ही तुमसे ॥
श्री भारतदेव जमाता भी जो सीखें हैं वसिष्ठ गुरु से ॥
१३०५ कैकेयीदेवी को अब तुम निज माता के समान गिनना ।
दशरथ जी को निज पितातुल्य मानती सर्वदा ही रहना ॥
१३०६ अन्यों के सँग भी नित्य प्रीतिपूर्वक एवं धर्मानुसार–
करती रहना तुम यथायोग्य, हे बेटी ! प्यारा सु-व्यवहार ॥
१३०७ प्रभु परमेश्वर को धन्यवाद जिनकी अनुकम्पा कल्याणी–
हो जाने से बन सकी सत्य, मेरी तब की भविष्य-वाणी ॥
१३०८ रुँध रहा कण्ठ मेरा, मुझमें भावों का है उद्वेग प्रबल ।
सो, अधिक नहीं कह सकता हूं, तुम सबका ओ३म् करें मंगल ॥

(दोहे) गुरुवर बोल नहीं सके, आगे कोई शब्द ।
वातावरण बना वहाँ, पूर्णतया निस्तब्ध ॥१८४॥
सारे कन्या पक्ष के नारीनर उस काल ।
रुदन कर रहे थे बहुत, बनबनकर बेहाल ॥१८५॥

१३०९ माण्डवी नहीं उत्तर में कुछ कह पाई, क्योंकि बोल सकना–
सम्भव था उसके लिए नहीं, पद पद पर पड़ता ही रुकना ॥

१३१० केवल अभिवादन ही उसने, कर जोड़, अनेकों बार किये।
चल पड़े बराती, उन चारों युगलों को अपने संग लिये ॥

नोट– प्रिय छन्द क्र १२८५ में जो मंत्र आया है वह अथर्ववेद काण्ड १,
सूक्त ३४ का मंत्र तीसरा है। ("ओ० प्रे०")

गार्हस्थ्यारम्भ (तेरहवां प्रकरण)

१३११ बारात लौटकर जब आई तब अवधपुरी सज्जिता हुई ॥
जिसके सुहावने मार्गों से शोभायात्रा चलकर निकली ॥
१३१२ वधुओं को लखने नारीनर आबालवृद्ध थे भरे हुए–
सब पन्थों में, फिर भी सुध्यान थे अनुशासन पर धरे हुए॥
१३१३ था राजमार्ग से लगवाँ ही घर, भरत–सखा का, दुमंजिला–
जिसके छज्जे पर खड़ी यशोदा थी लखती शोभा-यात्रा ॥
१३१४ जब वाष्पयान वह, जिसमें थे माण्डवी-भरत आसीन उभय–
छज्जे के नीचे आ पहुंचा तब हुआ यशोदा-उर मुदमय ॥
१३१५ उसने फूलों का अतिकोमल गुच्छा फेंका कुछ इस प्रकार–
जो पड़ा माण्डवीदेवी की गोदी में, बन कोमल प्रहार ॥
१३१६ ऊपर देखा उस देवी ने यह गुच्छा पड़ने पर ज्योंही–
आँखें मिल गईं यशोदा से, क्षण भर में अनायास, त्योंही ॥
१३१७ नैनों से कहा 'नमस्ते' फिर सस्मिता उभय हो गईं तुरत।
सखियों का यों जो मिलन हुआ, लख सके उसे तत्काल भरत॥
१३१८ जानते यशोदा को थे वे, उनके सुमित्र की जो भार्या–
था यह भी पता कि सख्य रखे उससे उनकी पत्नी आर्या ॥
१३१९ इसलिये मुस्कुराहट उनके चेहरे पर भी आई उस क्षण।
लख पाये दोनों सखियों को सस्मिता इस तरह वे जिस क्षण॥
१३२० चारों वरवधुओं के जोड़े जिन चार वाष्पयानों में थे–
वे सु-यन्त्रचालित श्रेष्ठयान धीरे धीरे तब थे चलते ॥

१३२१ ऊपर से खुल हुए थे वे, सो देख सके सब नर नारी–
उन आठों को जो एक एक में थे दो दो मुदिताधारी ॥
१३२२ आगे था यान, राम का; फिर था भरत-माण्डवी युक्त यान ।
उनके पीछे लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न के चले वाष्प–यान ॥
१३२३ यों, सपत्नीक चारों पहुँचे जब महल के निकट, तब उनको ।
तीनों माताओं ने अभिनन्दित किया हृदय से हर्षित हो ॥
१३२४ स्वस्त्ययन-परक शुचि वेदमन्त्र उच्चारण करके तीनों ही–
माताएँ लगीं निरखने, प्यारी मुखच्छवि चारों वधुओं की ॥
१३२५ फिर, यथायोग्य अभिवादन वर (चारों) ने सबको वहाँ किया ।
अनुकरण, वधू चारों ने ही करके जनजन को हर्ष दिया ॥
(दोहा)–कार्य, बधाने का, हुआ जब सम्यक् सम्पन्न ।
निजनिज कक्षों में गईं, तब वधुएँ सु–प्रसन्न ॥१८६॥
१३२६ मिथिला से कपोत के द्वारा चारों विवाह तय होने का–
ज्योंही शुभ पत्र अयोध्या में कौसल्या जी को प्राप्त हुआ ॥
१३२७ त्योंही दोनों सपत्नियों की सहमतिपूर्वक तीनों के हो–
महलों में चार स्वतन्त्र कक्ष बनने की योग्य व्यवस्था की ॥
१३२८ बारात लौटने के दो दिन पहले निर्माण सु–पूर्ण हुआ ।
ऐसा कि जिसे तीनों ही ने लखकर सब तरह पसन्द किया ॥
१३२९ वे चारों गये बनाये थे तीनों महलों में इस प्रकार–
जिससे बाधा, स्वतन्त्रता में, कुछ न हो, वधू करलें विहार ॥
१३३० फिर भी, सासों की उन पर हो मर्यादापूर्वक देख रेख–
समान्यतया उनकी सारी गतिविधियों को वे सकें पेख ॥
१३३१ कैकेयी के प्रासाद-मध्य जो कक्ष बना था, उसमें ही–
ले जाई गई सास द्वारा कुछ देर बाद माण्डवी भली ॥
१३३२ [सौभाग्य-रात्रि के वर्णन में कल्पना कर रही असहयोग ।
श्रद्धा भी नहीं चाहती है देना बिल्कुल भी हमें योग ॥
१३३३ इस कारण, शक्य नहीं कि दिया जावे कुछ भी उसका विवरण-
इतना अवश्य कह सकते हैं- 'वह थी अत्यंत असाधारण ॥']

(दोहे)—भरत, माण्डवी; उभय ही, जब कि न थे सामान्य ।
तब उनके सब कार्य भी, क्यों न हों अ-सामान्य ??॥१८७॥
(वैदिक शिक्षण का मिला, दोनों को वरदान ।
अत: अवैदिकता रही, यह न तनिक अनुमान) ॥१८८॥

१३३४ प्रामाणिक प्रकार से दोनों, गार्हस्थ्य में हुए अब दीक्षित ।
अपनाये वे ही नियम जो कि आप्तों द्वारा थे सु-परीक्षित ॥
१३३५ पति-पत्नी की मर्यादाएँ पालन करना प्रारम्भ किया ।
प्रणयाधिकार भी एक दूसरे पर अनजाने जमा लिया ॥
१३३६ यों पारस्परिक सुस्नेह भाव बढ़ चला प्रणय नामक पावन ।
तब एक रात्रि में भर्त्ता से यह किया माण्डवी ने सु-कथन ॥
१३३७ " हे प्रियतम ! हे मम पूज्य देव ! मैं एक निवेदन करती हूँ ।
मेरी चिति की जो साध बड़ी, सो श्रीसेवा में धरती हूँ ॥"
१३३८ इसपर, हँसकर, आँखों से ही, रहमौन, तुरत देदी अनुमति ।
अब पत्नी कहने लगी बात, उत्सुक हो सुनने लगे सुपति ॥
१३३९ बोली कि "सुनो हे आर्य पुत्र ! मेरा न समय कट पाता है ।
जो सेवा करती आई हूँ उसके बिन मन घबराता है ॥
१३४० करते लखती हूँ जब सेवा तुमको * तब सोचा करती हूँ—
'क्यों नहीं सहचरी सच्ची बन, मैं भी उस ओर विचर हो लूँ ॥
१३४१ प्रामाणिक सूत्रों से मुझको यह तथ्य है विदित हो पाया ।
'नारी-समूह की सेवा का पथ कभी न तुमने अपनाया ॥'
१३४२ है आर्योचित संकोचशीलता इसका एक मुख्य कारण ।
जो इस दिशि में कर नहीं सके तुम निज गतिविधि का संचारण ॥
१३४३ इस तरह, अधूरी जनसेवा तुम कर पाये हो, यह सच है ।
मत बुरा मानना, इसमें तो बिल्कुल भी झूँठ नहीं कुछ है ॥
१३४४ सो, अर्द्धांगिनी तुम्हारी मैं क्यों नहीं कमी पूरी कर दूँ ?
नारी-सेवा का व्रत लेकर सहचरी क्यों न सच्ची बन लूँ ??

* हमारी मान्यता है कि विवाह के पश्चात् पति पत्नी में 'आप' नहीं रह जाता अत: हमने 'तुम' का ही प्रयोग उचित जाना । (" ओ, प्रे. ")

१३४५ निज पितु-गृह में रहकर तो मैं सेवा, नारीनर दोनों की–
थी करती रहती यथाशक्य, रुचि मेरी उसमें थी पूरी ॥
१३४६ पर, यहां नहीं मैं राज-सुता; हूं अपितु नृपति की पुत्रवधू।
फिर, पुरुषों की सेवा के तो हो तुम सुयोग्य पक्के प्रतिभू ॥
१३४७ मेरा कोई होता भाई तो वह पुरुषों की ही सेवा–
करता रहता कर्त्तव्यमान, मम कार्य रहा होता आधा ॥
१३४८ या मेरे भ्राता की पत्नी आकर नारीसेवा को त्यों–
अपनाती वहां, चाहती हूँ मैं यहां, पूछकर तुमसे ज्यों ॥" ⊙
१३४९ यह सुन, अत्यन्त प्रभावित हो, पत्नी से कहने लगे भरत–
"हे प्रिये माण्डवी ! पूर्णतया तुमसे मैं इसमें हूं सहमत ॥
१३५० फिर भी, माता जी की अनुमति लेने की सम्मति देता हूं।
वे स्वीकृत अवश्य कर लेंगी, यह भी आश्वासन देता हूं ॥
१३५१ इतनी उदात्त भावनामयी उच्चात्मा है रानी मेरी।
यह निरख नच उठा है मेरा चेतन, बिल्कुल न करे देरी ॥
१३५२ मन से कहता है–'क्यों न कराता इससे मेरा आलिंगन ?'
प्रश्नात्मक यह आदेश मान, कहता है मन– 'सुन रे नर-तन !
१३५३ अपने चेतन की आज्ञा से गाढ़ालिंगन कर अभी तुरत।'
बस, यह कहकर आश्लिष्ट हुए भार्या के तन से, ललक, भरत॥
१३५४ बीती जब निशा बड़ी सुखदा, अति मोहक रम्य प्रभात हुआ।
तब नित्यकर्म से निवृत्त हो, कैकेयी को जा नमन किया ॥
१३५५ प्रतिदिन के क्रम का अंग इसे कैकेयी पहले तो समझी।
दे आशीर्वाद, अध्ययन में फिर से वह पूरी तरह लगी।
१३५६ पर, वधू अधिक जब रुकी वहाँ, तब रोक अध्ययन, पूछा यों–
"क्या कुछ कहना है तुम्हें बहू ! तुम ठिठकी रुकी रहगई क्यों ?"
१३५७ अत्यन्त नम्रतायुक्त वचन, माण्डवी लगी कहने उनसे।
"हे आर्ये ! माँ आप ही यहाँ, कहपाऊँ भला और किनसे ??

⊙ हमारी मान्यता है कि विवाह के पश्चात् पति पत्नी में 'आप' नहीं रह जाता अतः हमने 'तुम' का ही प्रयोग उचित जाना। (" ओ. प्रे. ")

१३५८ सो, करती हूँ प्रार्थना एक, आशा है स्वीकृति पाऊँगी।
जिसको पाने पर मैं सचमुच पूरी कृतार्थ हो जाऊँगी॥
१३५९ आपके सुपुत्र करें सेवा केवल पुरुषों की, सानुरक्ति।
मैं भी महिलाओं की सेवा करने की इच्छुक, यथाशक्ति॥
१३६० 'उन' की तो प्राप्त कर चुकी हूँ गत रजनी में ही मैं सहमति
पर शर्त यही कि आपकी भी इस हेतु ले सकूँ मैं अनुमति॥

(दोहे) अभी हुआ है प्रथम ही, उसके बाद प्रभात।
आई दूजी भी नहीं, तदनन्तर है रात ॥१८९॥
कारण, इतनी त्वरा का, देवि ! कहूँ संक्षिप्त।
'सेवाकार्यों के विना, रहूँ कि ज्यों विक्षिप्त' ॥१९०॥
काटे कटता ही नहीं समय, अपितु है भार।
जनसेवा में क्योंकि मम शुचि रूचि सर्वप्रकार" ॥१९१॥

१३६१ यह सुनकर अतिशय मुदिता वन स्वीकृति कैकेयी ने दे दी।
"कितनी अच्छी तुम अहो वहू !" यों कह स्वअंक में ही लेली।
१३६२ इतने में भरत उधर आये, बोले कि "वहाँ मैं वैठूँगा।
माताजी ! गोदी पर होते अतिक्रमण क्यों, भला, देखूँगा ?"
१३६३ नववधू लजाकर चली गई, कैकेयी बोल उठी हँसकर-
'प्रिय वत्स ! माण्डवी का आधा अधिकार हुआ है अब मुझपर'।
१३६४ अपने रहने से न हो विघ्न, अध्ययन-संरता माता को;
इसलिये वहां से चले गये श्री भरतदेव नत, शिरसा, हो॥
१३६५ निज सुहृद 'सुव्रत' के घर पहुंचे तो ठिठक रुकगये बाहर ही
कानों में क्योंकि लगीं पड़ने सहसा आवाजें भीतर की॥
१३६६ कह रही यशोदा थी पति से- "मैंने वह विवाह करवाया।"
उत्तर में सुव्रत कह रहे थे- "मुनि वसिष्ठ के मैं निकट गया।"
१३६७ अन्ततः विवाद तब मिटा जब दोनों ही ने आधा आधा-
ले लिया श्रेय, सो नहीं रही समझौता होने में बाधा॥
१३६८ तदनन्तर कहा यशोदा ने- "दें भोज अपत, उन दोनों को।
आज ही, कि जिसमें बुलवाएँ सम्भ्रान्त प्रतिष्ठित लोगों को।

१३६९ में सखी, माण्डवी की, तुम हो श्री भरत देव के सखा, अहो।
फिर अभिनन्दन अपने द्वारा क्यों उनका अपने यहाँ न हो !!
१३७० बोले "तथास्तु" जब सुव्रतदेव, तब भरतदेव होकर प्रविष्ट–
कह उठे कि "मुझको तो आना, है आमंत्रण के बिना, इष्ट ॥
१३७१ यह कह तुरन्त खिलखिला पड़े, अनखा कर कहा यशोदा ने–
"छुपछुपकर बात दंपती की सुनलीं, अपराध किया तुमने ॥"
१३७२ तत्काल भरत ने उत्तर में यों कहा कि "भाभीजी ! सुनिये–
चर्चा न गुप्त इस प्रभात में मिलकर थे तुम दोनों करते ॥
१३७३ अन्यथा द्वार क्यों खुला मुझे मिलता, मैं यहां ठहरता क्यों ?
खुलवाता अगर थपथपाकर तो वार्तालाप न रुकता क्यों ??
१३७४ इसलिये किया है बिलकुल ही अपराध नहीं, मैंने सुनकर।
इतने पर भी तुम दोनों यदि चाहो तो दण्ड करो मुझ पर ॥

(दोहे)-कहा बीच में सुव्रत ने–" मैं हूँ वीर; उदार।
भूषण मेरा है क्षमा, होऊँ क्यों अनुदार ?? ॥१९२॥
गृह पति होने से मुझे हैं विशेष अधिकार।
सो, मैं करता हूँ क्षमा, तुमको राजकुमार !!" ॥१९३॥

१३७५ यों हँसी दिल्लगी की बातें फिर होने पर वे तीनों जब–
गंभीर हुए पुनरपि, बोले श्री भरतदेव, दोनों से तब ॥
१३७६ "क्यों अभिनन्दन का आयोजन करने का तुम करते विचार ?
हम आठों का नागरिक लोग कर चुके जबकि हैं सु-सत्कार ॥
१३७७ जो सार्वजनिक अभिनन्दन कल हो चुका, उसीमें क्या तुमभी –
सम्मिलित न समझो अपने को, आठों में रहे न क्या हमभी ??
१३७८ माण्डवी और मैं, उनमें थे जो अभिनन्दित कल हुए, अहो।
अभिनन्दन करने वालों में क्या तुम दोनों थे नहीं ? कहो ॥"
१३७९ उत्तर में कहा यशोदा ने-"देवर जी या बहनोई जी !
सुनलो अब कान खोलकर तुम जो वजह बताऊं मैं इसकी ॥
१३८० सबकी न सखी माण्डवी और सबके न सखा हैं भरतदेव।
है सख्य अनन्य तुम उभय का, हम दोनों से ही एकमेव ॥

१३८१ सो, हमें व्यक्तिगत अभिनन्दन करने का है पूर्णाधिकार।
उसका प्रयोग करने में तुम क्यों बाधक बनलो नृप कुमार।
१३८२ हम स्नेहादेश तुम्हें देते–'भोज में आज आना होगा।
मम सखी माण्डवी देवी को अपने सँगसँग जाना होगा॥"
१३८३ यह सुनकर सुव्रतदेव बोले, "यह आमंत्रण विधिविहित नहीं
पति से कह बुलवाई जाती क्या पत्नी है इस तरह कहीं ??
१३८४ मैं तो हूँ बड़ा भाग्यशाली जो मेरे सखा यहीं आये।
आमन्त्रण इन्हें सरलता से हम तुम दोनों ही दे पाये॥
१३८५ पर क्यों न करो निज सखी माण्डवी को जाकर तुम आमंत्रित
ये बेढंगी बातें कहना, सोचो तो, कितना है अनुचित ??
१३८६ कैकेयी देवी की अनुमति दिलवानी भी आवश्यक है।
सो, तुम्हें चाहिये ही जाना, इसमें आलस्य अनर्थक है॥"
१३८७ निज भूल यशोदा ने मानी, तब कहा भरत ने कुछ हँसकर
"क्यों भाभी ! तुमने किया न क्या अपराध- समझ मुझको अनुचर
१३८८ सांकाश्यपुरी की कन्याएँ क्या पतियों को मानें किंकर ?
बेचारे सुव्रतदेव को भी क्या तुमने बना रखा चाकर ??
१३८९ मैं तो मानूँ कि सहचरी है पत्नी एवं पति है सहचर।
मम भार्या को मत सिखलाना अपनी यह कला, अनुग्रह कर॥

(दोहे)–इसपर झेंपी यशोदा, हँसे उभय ही मित्र।
विनोद था कितना भला, तर्कपूर्ण, सु-पवित्र॥१९४॥
होने पर आग्रह, किया कुछ मिष्टान्नाहार।
उसके बाद चले गये राजकुमार उदार॥१९५॥

१३९० कुछ काल बीतने पर पहुँचो आमन्त्रण देने सुव्रत-प्रिया।
निज सखी माण्डवी को जो अब होकर आई थी भरत-प्रिया।
१३९१ मिलते ही, दोनों लिपट गईं, कुछ देर तक रहा पूर्ण मौन।
(शायद सोचती रहीं कि बात प्रारंभ करें किस भांति, कौन ?
१३९२ फिर कहा यशोदा ने-"सखि री ! मैं आई करने आमन्त्रित।
है भोज हमारे यहां आज, होना है तुमको अभिनन्दित।

१३९३ श्री भरतदेव तो आमन्त्रण लेने को स्वयं पधारे थे।
स्वीकार उन्होंने किया कि सायंकाल पधारेंगे ही वे ॥
१३९४ पर तुम्हें सास जी से अनुमति दिलवानी भी आवश्यक है।
सो आना पड़ा मुझे वर्ना सखियों में तो यह नाटक है !!
१३९५ सन्देश मात्र तुम भेजो तो मुझको चाहिए तुरत आना।
वैसे ही जब मैं बुलवाऊं तब तुम्हें उचित कब रुक जाना।।"
१३९६ होकर गंभीर माण्डवी ने यों कहा कि "हूँ व्याकुल अतिशय।
मेरा तो काटे भी न यहाँ कट पाता रुचि से तनिक समय ॥
१३९७ सो, विगत रात्रि में ही मैंने पतिदेव से निवेदनपूर्वक–
ऐसी अनुमति ले ली कि नारियों की सेवा कर लूँ भरसक ॥
१३९८ उनकी माताजी से स्वीकृति लेने का था निर्देश किया।
जिसका पालन कर अभी सास जी से भी है आदेश लिया ॥
१३९९ मैं स्वयं चाहती थी तुमसे मिलकर यह लेना आश्वासन--
दोगी पूरा सहयोग मुझे उसमें जो कहता मम चेतन ॥
१४०० अर्थात् नारियों की सेवा करने को प्रतिदिन जब जाऊँ–
तब तुम्हें साथ अपने अवश्य तव रुचि से ही मैं रख पाऊं ॥
१४०१ श्रुतिकीर्त्ति रही संगिनी वहाँ पर यहाँ तो नई है वह भी।
तुम आई कुछ मासों पहले इसलिये संगिनी रहो भली ॥
१४०२ यह यदि आश्वासन मुझको दो, तो मैं आमन्त्रण मानूँगी।
अन्यथा आज के बजाय फिर स्वेच्छा से आना ठानूँगी ॥
१४०३ आश्वस्त किये बिन मुझे अगर ले लो अनुमति ले जाने की।
मेरी पूज्या श्वश्रूजी से तो भी न मैं कभी आने की ॥
१४०४ इसके विपरीत, अगर पाऊं तुमसे आश्वासन उपर्युक्त—
मैं तब तो स्वयं पूछ लूँगी उनसे, आऊं भी रोषमुक्त ॥"
१४०५ इतने में ही कैकेयी जी स्वयमेव आ गईं कल्याणी।
बोलीं भी आकर इस प्रकार दोनों से रसवाली वाणी—
१४०६ "सांकाश्यपुरी से तुम दोनों आईं, वन वधू, अयोध्या में।
पति भी दोनों के सने रहें सर्वदा अभिन्नहृदयता में ॥

१४०७ तुम सख्य वहीं से आपस में रखती आई हो अलबेला।
प्रभु करे कि इसको वहा नहीं पावे कोई वेढब रेला ॥
१४०८ मेरी इच्छा है यही कि तुम दोनों मिलकर वे करो काम।
जिनसे महिलोन्नति हो पावे, संस्थित भी रहले नेक नाम ॥
१४०९ कुछ देर पूर्व ही, वधू माण्डवी ने स्वीकृति ली है मुझसे--
यह सेवा कार्य चाहती है करना, महिलाओं में, रुचि से ॥
१४१० क्या ही अच्छा हो यदि तुम भी इसके सँगसँग वह कार्य करो।
मैं निगरानी करती रह लूं, तुम नारि वर्ग के दुःख हरो ॥
१४११ अज्ञान बहुत-सा फैला है महिलाओं में कि समय का भी-
करती रहती हैं दुरुपयोग, ऐसी हैं कमी बहुत सारी ॥
१४१२ माण्डवी बहू को अनुभव है, तुम भी हो सूझबूझवाली।
सेवा-सुकार्य को पिला सको साफल्य सुधारस की प्याली ॥
१४१३ तव पति की अनुमति का विचार इसमें यदि कुछ भी हो तुमक
तो उसकी सब ज़िम्मेदारी मुझपर बेखटके रहने दो ॥"
(दोहे) कहा यशोदा ने कि "मैं चकित हुई हूं देख—
यह कि आपने पढ़ लिया मेरे मन का लेख ॥१९६॥
हम सखियों में बात यह चलती थी उस काल।
किया पदार्पण आपने अकस्मात् जिस काल ॥१९७॥
१४१४ मैं भोज हेतु स्नेहामंत्रण इसको देने के लिए, यहाँ —
आई थी जिसमें शर्तों का उठ ही सकता था प्रश्न कहाँ ??
१४१५ पर इसने कहा कि सेवा में सहयोग दे मुझे नहीं अगर–
तो चाहे माताजी कह दें फिर भी न चलूँगी तेरे घर ॥
१४१६ सहयोगदान का आश्वासन यदि तू देदे तब तो मैं ही —
माताजी से अनुमति अपने जाने की, अवश्य ले लूँगी ॥'
१४१७ इसका उत्तर देने में था संकोचयुक्त, बस, वह विचार–
लेकर जिसकी जिम्मेदारी आपने हरा ममहृदय--भार ॥
१४१८ अब विनय आपसे यह मेरी, कृपया माण्डवी सहित आवें।
एवं श्री भरतदेवजी के मामाजी को भी सँग लावें ॥

१४१९ छः वजे शाम का रखा समय अभिनन्दन करने हेतु, अहो।
फोटो भी खिंचना है × सवका, इसलिये तनिक भी देर न हो॥
१४२० फिर होगा भोज, अन्त में कुछ अभिनंदन-परक वक्तृताएँ–
हो चुकने पर दो घण्टे में ये कार्य पूर्ण सब हो जाएँ॥
१४२१ आपने समय का दुरुपयोग होने की बात कही थी जो–
यह सभी कार्यक्रम वतलाया मैंने उससे सु-प्रभावित हो॥"
१४२२ माण्डवी बीच में ही वोली ऐसा कि "समय-पालन की तो–
शोभा दीदी भी करती थीं प्रेरणा, याद आई मुझ को॥
१४२३ सांकाश्यपुरी से, माता जी ! आपके पिताश्री के पुर में–
वे पहुँची हैं वन वधू, यहाँ जैसी हम तीनों आई हैं॥
१४२४ श्रुतिकीर्ति- यशोदा, मैं- तीनों इस पुर में आईं जिस प्रकार।
शोभा दीदी भी पहुँची हैं तव पितृनगर में उस प्रकार॥
१४२५ नृप श्रेष्ठ 'अश्वपति' की बातें वे वहुत सुनाया करती थीं।
कैसी उत्तम नारियाँ वहाँ, यह भी वतलाया करती थीं॥
१४२६ 'कोई न समय का दुरुपयोग बिल्कुल कर पाता कभी वहां।'
यों शोभा दीदी कहती थीं, पर वैसा दृश्य दिखे न यहाँ॥
१४२७ ले दीर्घ श्वास, कैकेयी ने यह कहा कि " वीते वर्ष कई–
तब से मैं अपने पूज्य पिताश्री की सेवा में नहीं गई॥
१४२८ वह बहू भी इन्हीं वर्षों में आई होगी विवाहिता हो।
इस कारण ही, मैं, भला, जान सकती हूँ किस प्रकार उसको ?"

(दोहे)–तव प्रणाम कर यशोदा, लौटी अपने धाम।
सुव्रत जहाँ थे लिख रहे प्रतिष्ठितों के नाम॥१९८॥
पत्नी की थी प्रतीक्षा, सो, आने के बाद–
पक्की सूची बन गई, कर नामों की याद॥१९९॥
उसने नारी–नाम भों वढ़वाये कुछ और।
सारी नगरी की तरफ मन से करके गौर॥२००॥

× हमने उर्दू व अंग्रेजी के शब्दों का यत्रतत्र खुलकर प्रयोग किया है इसके लिये 'आपकी' कृपया हमें क्षमा करें। ("ओ॰ प्रे॰")

पूरे सौ थे नारि नर, ली सूची फिर जाँच ।
स्मृतिपूर्वक तब सुव्रत ने, नाम बढ़ाये पाँच ।।२०१।।
१४२९ सूचना सभी को होने पर सब व्यक्ति पधारे यथा समय।
भोजादि कार्य सब हुए (कि जिनके विवरण में विस्तृति का भय।



अयोध्या में सेवा कार्य (चौदहवाँ प्रकरण)

१४३० थीं अनुज सहित कैकेयी जी अभिनन्दन में सु-विराजमान।
थे जहाँ प्रतिष्ठित नारीनर उस अवधपुरी के विद्यमान ।।
१४३१ ऐसा अव तक अवसर कोई तत्र से आया ही न था कभी।
जब से आई थी विवाहिता होकर पुर में कैकेयी जी ।।
१४३२ माण्डवी नहीं यदि पुत्रवधू बनकर आजातीं इस प्रकार–
एवं न यशोदा से होता उसका मैत्रीमय सु–व्यवहार–
१४३३ तो सम्भव कहाँ आज भी था ऐसे आयोजन का होना।
जिसमें हो पाया शक्य, आपसी दूरी के मल को धोना ।।
१४३४ अभिनन्दन से लौटते हुए छोटी रानी जी, भाई से–
यह कहने लगीं कि "वधू माण्डवी बड़ी सुशीला आई है ।।
१४३५ इसके आने से कार्य, भरत का, नहीं अधूरा अब रह ले।
नारी समूह के लिये, क्योंकि, सेवा का सुकाज यह गह ले ।।
१४३६ मैंने आश्वासन दिया, पथ-प्रदर्शन तो करते रहने का।
पर उसे काम ही पड़े नहीं शायद, मग-दर्शन गहने का ।।
१४३७ हाँ, एक वात ऐसी जिसकी लूँ तुमसे पूर्ण जानकारी।
फिर कहूँ माण्डवी से कि दिखे आवश्यकता, इसकी, भारी ।।
१४३८ यानी, जबसे मैं आई हूँ अपने भर्ता के संग यहां।
तबसे वापिस जा नहीं सकी, पति सेवा से अवकाश कहां !!
१४३९ सो, इतने वर्षों में जो कुछ तुम पिता पुत्र ने मिल जुलकर।
उन्नति की हो राज्य में, सभी बतलादो अतिहितकर प्रियतर ।।

१४४० सविशेष, नारियों–विषयक जो सत्कार्य वहाँ तुम करपाये।
उसका ब्यौरा पूरापूरा सत्वर ही बतलाया जावे॥
१४४१ जितने भी हुए प्रयत्न [भले ही कुछ भी हो संस्तर उनका।
(हों अशासकीय वा उनमें हो सारा प्रयास तव शासन का॥
१४४२ अथवा हों आधे सरकारी, यों कोई हो चाहे संस्तर)
सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक, जो दें जनता को लाभ प्रचुर॥]
१४४३ पर, उनसे प्रगति, नारियों की, होने का सुफल हो मिला ही।
मुझसे कह देना कुछ दिन में ऐसी योजना, अहो, सारी॥"

(दोहा)–इतने में आया महरु, रुकी इसलिये बात।
केवल "तथास्तु" कह सके, उस रानी के भ्रात॥२०२॥

१४४४ दूजे दिन कहा युधाजित् ने "बुलवा लो स्वयं बहू को तुम।
क्यों कहूँ तुम्हारे द्वारा मैं उससे कि तुम्हें भी क्यों हो श्रम??
१४४५ साथ ही, सखी को भी उसकी, बुलवाकर; एक विचार-सभा–
आयोजित करें अपन चारों, जिसकी तुम रहलो अध्यक्षा॥"
१४४६ जँच गई बात कैकेयी को, सूचना कराई तदनुसार।
मध्याह्न का रखा समय कि जब हल्का रहता है कार्य-भार॥
१४४७ निश्चित सु-काल पर जुड़ी सभा, कैकेयी जी ने प्रारम्भिक–
भाषण इस भाँति दिया जिससे कह सकते उसे प्रास्ताविक॥
१४४८ बोलीं कि "बहू! तुमने कल जो शोभा का नाम कहा मुझसे।
सो, मैंने पृच्छा की उसके बारे में अनुज युधाजित् से॥
१४४९ इसने बतलाया मुझे कि 'है वह अपने राज पुरोहित की–
गुणवाली पुत्रवधू एवं पुत्री है उपाध्याय जी की॥
१४५० सांकाश्यपुरी से कुछ वर्षों पहले ही, होकर विवाहिता–
आई है नृपति 'अश्वपति' के पुर में, करती थी तव चर्चा॥
१४५१ इसकी पत्नी की सखी बनी सो इसको भी उनके द्वारा–
हो पाया विदित तुम्हारा सेवा कार्य था वहाँ का सारा॥
१४५२ जब सहसा यह मिथिला पहुँचा तब कौशिक मुनि का सु-प्रस्ताव–
था इसके समक्ष, इसे हुआ जिसके अनुमोदन–हेतु चाव॥

१४५३ केवल इसलिये कि तुम दोनों वहिनों का यश था बहुत सुना।
इसकी पत्नी के प्रति जो-था शोभा ने विविध प्रकार कहा॥
१४५४ भार्या द्वारा संप्राप्त हुई वह सारी इसे जानकारी–
कैसे तुम अपने पितु-पुर में करती थीं क्या सुकार्य भारी॥
(दोहे)–इसने अनुमोदन किया, सम्भव बना विवाह।
अव तुमने की है प्रकट, यहाँ भी वही चाह ॥२०३॥
तव शुचि रुचि यह देखकर मैं हूँ बहुत प्रसन्न।
यह मेरा प्रिय अनुज भी वना मोद–संपन्न ॥२०४॥
इसके हीं प्रस्ताव पर यह संयोजन आज–
मैंनें कर डाला कि हो सुगम तुम्हारा काज ॥२०५॥
१४५५ पहले तो कहो कि तुम कैसे हो चाह रहो करना क्या क्या?
योजना बनाई हो मन में जो कुछ भी, वह दो हमें बता॥
१४५६ फिर कहे भरत का यह मामा, जैसा कुछ समझे आवश्यक।
दे वहू यशोदा भी सुझाव; इस भाँति सभा हो यह सार्थक॥"
१४५७ इसपर माण्डवी लगी कहने- 'हे पूज्यतमें ! हे पूज्यप्रवर!
है आप उभय की बड़ी कृपा जो प्रसन्नता रखते मुझ पर॥
१४५८ 'मैं हूँ अकिंचना'- ऐसा तो कह सकती नहीं, न सत्र भी है।
मम पूज्य पिता जी ने अदीनता रखने की शिक्षा दी है ॥⊙
१४५९ पर, गर्व भी कभी कर न सकूँ, यद्यपि भाता गौरव रखना।
यह मेरे पितृदेव का ही सर्वदा रहा मुझसे कहना॥
१४६० रख उचित आत्मगौरव, सविनय, सादर समक्ष हूँ मैं धरती-
वह सु-योजना जिसपर विचार मैं रही कई दिनों से करती॥
१४६१ 'नारी उत्थान-समिति' का हो निर्माण यहाँ सबसे पहले।
सव कार्यों के सुनियन्त्रण का जिसपर गुरुभार सदा रहले॥
१४६२ उसमें प्रत्येक मुहल्ले की विदुषी कर्मठ महिलाएँ हों।
ऐसी, जिनसे प्रभाविता उन क्षेत्रों की सव वनिताएं हों॥

⊙ दैनिक (उभय सांध्यवेलाओं में अनुष्ठेय) संध्योपासन विधि मे आये हुए यजु० ३६/२४ के 'अदीनाः स्याम शरदः शतम्' का संकेत है।
("आ० वे.")

१४६३ घर घर पहुँचें, केन्द्रीय समिति की सन्नारी सँग ले उनको।
प्रतिदिन इक या दो घण्टे तक संपर्क साधने का श्रम हो॥
१४६४ केन्द्रीय समिति के साप्ताहिक अधिवेशन सभी मुहल्लों में–
बारी बारी से हों जिससे फैले जागृति सब क्षेत्रों में॥
१४६५ आत्मीय भाव से कष्ट कथा सुनना हर नारी से मिलकर–
हो यह अनिवार्य कार्य उनका, जो सन्नारी जावें घर घर॥
१४६६ फिर, कैसे हों वे कष्ट नष्ट; इसपर विचार विनिमयपूर्वक–
हों मासिक गोष्ठी में निश्चय, जिस प्रकार जो कुछ आवश्यक॥
१४६७ उत्थान समिति का दें विवरण, बतला बतला निज निज अनुभव–
तब सर्व कार्यकर्त्री जब हो आयोजित विशद वार्षिकोत्सव॥
१४६८ सु–स्थायी अध्यक्षा रह लें माता जी, यह मेरा अग्रह।
जिससे अधिकार पूर्णस्वर में वे अपनी बात सकेंगी कह॥
१४६९ आप ही सुयोग्या इस पद के, हैं क्योंकि 'अश्वपति' की कन्या।
फिर निज पति के सँग रण में जा, कीर्ति भी पाचुकी हैं धन्या॥
१४७० साप्ताहिक जो हों अधिवेशन, उनमें सीता दीदी को मैं–
अध्यक्षा चाहूँगी रखना, वे क्योंकि सुप्रतिभा वाली हैं॥
१४७१ मासिक गोष्ठी की अध्यक्षा, हे आर्ये! आप रहें बहुधा।
कौसल्या जी व सुमित्रा जी अध्यक्षता करें यदा–कदा॥
१४७२ वे दोनों संरक्षिका रहें, यह भी नितान्त आवश्यक है।
उनका महत्व तो निर्विवाद, किसको उसमें कुछ भी शक है??
१४७३ घर घर जाकर मिलना जुलना; मैं तथा यशोदा करलेंगी।
कुछ समय बाद सहयोग हमें इसमें अनेक महिला देंगी॥
१४७४ कटु बात पड़ रही है कहनी, सो पहले क्षमा चाहती हूँ।
अत्यावश्यक होने से हो वह भी हे पूज्ये! कहती हूँ॥
१४७५ शोभा दीदी के पिता कि जो मेरे गुरुवर श्री उपाध्याय–
उनको आपका चरित्र कथन करना सचमुच ही बहुत भाय॥
१४७६ सबला विदुषी वनिताओं का जब वे देते थे उदाहरण–
तब नाम आपका सर्वप्रथम लेते थे, देने में शिक्षण॥

१४७७ यह भी मेरी माता जी से इकदिन की थी भविष्यवाणी।
उन गुरुवर ने कि 'सास इसकी होंगी कैकेयी कल्याणी ॥
१४७८ सो, हुई सत्य वह पूर्णतया, पर अब है मुझको यही कसक-
आपकी उपस्थिति में निर्बल क्यों यहाँ सभी बाला अबतक।
१४७९ धृष्टता कर सकूँ अधिक नहीं, सो पिछली बात छोड़ती हूँ।
अब जो करना है इष्ट मुझे, भाषण उस ओर मोड़ती हूँ ॥
१४८० व्यायाम-कक्ष, कन्याओं की शाला में खुलवाये जावें।
जिनमें विशारदा महिलाएँ शिक्षण देने हम बुलवाएँ ॥
१४८१ अनिवार्य बने सैनिक शिक्षा नारी समूह को भी तुरन्त।
जिससे ढीलापन ओर सभयता, दोनों पावें शीघ्र अन्त ॥
१४८२ हो 'महिला वाक्वर्दिनी सभा' केन्द्रीय समिति के अन्तर्गत-
जिससे बौद्धिक संस्तर ऊँचा हो सके, नारियां हों उन्नत ॥
१४८३ सम्प्रति इतना ही सोचा है, इसका होने पर क्रियान्वयन।
योजना बन सकेगी आगे, संगिनी बढ़ेंगी ही अनुदिन ॥
(दोहे)–पूज्य प्रवर ! अब कीजिये, मार्ग–प्रदर्शन आप।
त्रुटियां मेरे कथन की, क्षमिये हे निष्पाप ॥२०६॥ ø
भाग्यशालिनी हूँ कि जो सुनूँ आपके बैन।
जिनमें निःसंशय रहे सुकल्याण की सैन" ॥२०७॥
१४८४ तब कहा युधाजित् ने कि "बहूरानी ! तुमतो सचमुच देवी।
मेरे उर की ही यह प्रतीति, अत्युक्ति न इसमें बिल्कुल भी ॥
१४८५ योजना बताई जो तुमने, उससे होता है यही प्रकट।
पूरी है सूझ बूझ तुममें, कर सको दूर सारे संकट ॥
१४८६ केवल विचार ही नहीं अपितु सेवा करने का समुत्साह
लखकर बरबस मुँह से मेरे तब हेतु निकलती- 'वाह, वाह' ॥

ø यद्यपि हिन्दी में 'क्षमिये' प्रचलित नहीं है तथापि हमने, आशुरूपेण यह प्रयोग हो जाने पर इसे रहने दिया है; संस्कृत के 'क्षमस्व' जैसा ही इसको जानें। इसी प्रकार 'निष्पाप' भी कम ही प्रयुक्त (इस रूप में) किया जाता है– अस्तु। ('कौ० के० ")

१४८७ मैं हार्दिक शुभाशीष यह दूँ- 'तुम यशस्विनी हो पाओगी।
जो यहां दिख रहा अबलापन, मूल से उसे खो पाओगी॥
१४८८ मेरे भी दो सुझाव सुनलो, जो आधारित हैं अनुभव पर।
पहला तो यह कि 'नहीं सीमा बन जाये केवल यही नगर'॥
१४८९ इस अवधराज्य के ग्रामों की नारियां रहें क्यों उपेक्षिता ?
उनकी उन्नति भी, पुर नारी उत्थान सदृश ही अपेक्षिता॥
१४९० मैं जब आया था यहाँ तथा मिथिला को गया यहां से था।
एवं बारात सहित वापिस दूसरे मार्ग से जब आया॥
१४९१ तब मुझे बीसियों ग्रामों को लखने का आया था अवसर।
मैंने पाया कि विशेषतया नारी गण का निचला संस्तर॥
१४९२ बहुधा अपभ्रंशमयी भाषा ग्राम्याओं को बोलते सुना।
इसका भावी परिणाम सोच, मैं क्षुब्ध हुआ, संस्तब्ध बना॥
१४९३ इनकी कन्याएँ भी ऐसी अपभ्रंशयुता सीखें भाषा।
आगे उनकी सन्ततियाँ भी गहलेंगी यही 'मातृ-भाषा'॥
१४९४ आधार, आर्य-संस्कृति के जो, उनमें से भाषा बड़ी प्रमुख।
उसको विकृता बनाने पर होगा समाज वह पतनोन्मुख॥
१४९५ नगरों के नामों को भी वे अपभ्रंश रूप में कहती हैं।
जो महिलाएँ इस अवध राज्य के गाँव गाँव में रहती हैं॥
१४९६ जब कहा 'राजगृह' का मैंने अपने को वासी, तब मुझको-
सुनने को यही मिला कि 'राजगढ़ के तुम रहने वाले हो॥'
१४९७ मैंने बहुतेरा समझाया- 'गढ़' नहीं बल्कि 'गृह' कहो उसे।
पर कहीं नहीं कोई समझी महिला, यह अनुभव हुआ मुझे॥
१४९८ जो विवाहादि के अवसर पर वे लोकगीत गाती रहतीं।
उनमें भी बातें कई अनर्गल, भोंडी, बेढंगी कहतीं।
१४९९ इसके अतिरिक्त, व्यर्थ की ही गप्पों में बहूत समय अपना॥
वे खोती रहती हैं, फलतः उत्थान, रहा उनको सपना॥
१५०० ऐसी ही अन्य बुराई भी दिखलें सम्पर्क साधने पर।
सो, पुर नारी का समुत्थान करके- तुम देना ध्यान उधर॥

१५०१ है सुझाव दूजा यह कि 'नारियों को अपनी जिम्मेदारी–
अनुभव करवाने का सुयत्न हो, ताकि मिट सके लाचारी ॥
१५०२ बाहर से विदुषी महिलाएँ आमंत्रित कर उनके भाषण–
आयोजित समय समय पर हों जिनसे मिल पाये सत्प्रेरण ॥
१५०३ यह नगर, ग्राम; दोनों की ही महिलाओं में त्रुटि है भारी।
बिल्कुल भी नहीं समझती हैं अपनी कोई जिम्मेदारी ॥
१५०४ उन पर निर्भर समाज सारा, वे मातृ शक्ति महिमा वाली।
पर हाय, उन्हीं ने प्रमाद की पी रखी विषमयी है प्याली ॥
१५०५ यदि मान्य करो मेरा सुझाव तो कुछ ही दिन में निःसंशय–
नारी को प्राप्त हो सकेगा फिर उसका गौरव महिमामय ॥"
(दोहा)–कहा माण्डवी ने कि " हैं उभय ही शिरोधार्य।
तव सुझाव अति श्रेष्ठ ये, सचमुच हैं पूज्यार्य ॥२०८॥
१५०६ इनमें से पहला तो सीता दीदी से भी था मुझे मिला।
संक्षिप्त रूप में ही यद्यपि संकेत उन्होंने दिया भला ॥"
१५०७ इस पर यों कहा यशोदा ने बीच में कि "वह निर्देश मान–
अनुजा के सहित माण्डवी ने सक्रिय हो उस पर दिया ध्यान ॥
१५०८ दोनों ही बहिनें गर्मी में गाँवों गाँवों के दौरे पर–
निकलीं तन मन धन से रहकर जन जन की सेवा में तत्पर ॥
१५०९ पूरे इक मास तपस्या की इन दोनों ने जब इस प्रकार।
तब मिला जनार्दन रूपी जनता देव का इन्हें दिव्य प्यार ॥
१५१० उन दिनों पत्र, मम भ्राता का, इस बारे में था जो आया–
वह मैंने दे निज भर्ता को गुरु वसिष्ठ जी तक पहुँचाया ॥
१५११ उसमें विशेषतः था अंकित माण्डवी कुमारी का वर्णन।
कैसे ग्रामीण पुरुष-महिला पाते थे इससे उद्बोधन ॥
१५१२ गुरु वसिष्ठ उसपर से ही तो प्रस्ताव समर्थित कर पाये।
मिथिला में इसके विवाह का, फिर भरत विवाहित हो आये ॥"
१५१३ कुछ और यशोदा आगे भी कहती परन्तु माण्डवी तभी–
बोली कि "तुझे अतिशयोक्ति से बचना क्या आता नहीं कभी?

१५१४ चल रही 'भविष्यत्' की चर्चा, यह 'वर्तमान' सुप्रवर्त्तमान।
इसमें हो सकता है कैसे गत 'भूतकाल' का अधिक मान ??
१५१५ इतना ही यथेष्ठ है जितना हम सबने सुनकर मान दिया।
क्या यह कम है कि मौन रहकर मैंने भी उसको श्रवण किया।
१५१६ हाँ, तो हे आर्य ! दूसरा जो आपने दिया सुन्दर सुझाव।
बिल्कुल भी उसकी ओर नहीं रह पाया है मेरा झुकाव॥
१५१७ यह 'जिम्मेदारी' वाली तो है बात नई, बुनियादी भी।
इसकी यदि रहे उपेक्षा तो सूरत होगी बरबादी की॥
१५१८ जो उपाय बतलाया, वह भी अतिमहत्वमय है और सुगम–
भाषणमालाओं का अवश्य प्रारम्भ करुँगी उत्तम क्रम॥
१५१९ है एक बात में थोड़ा-सा मतभेद मुझे, वह भी कह दूँ।
जब विचार करने बैठे हम तब उसे छुपाये क्यों रहलूँ ??
१५२० ग्राम्याओं पर ही गप्पों का जो दोष लगाया गया प्रबल।
बेकार समय खोने का भी अपराध रखा उन पर केवल॥
१५२१ सो, मेरी लघुमति में तो वे पुर की महिलाओं से कम हैं।
सब समयविभाग दिहैं न यहाँ तो दिखते सदा कार्यक्रम हैं॥
१५२२ इनसे अच्छी ग्रामीणाएँ यद्यपि वे भी कब हैं उत्तम।
पर ये नितान्त हैं अधम जबकि वे अपेक्षया सचमुच मध्यम॥"
१५२३ दो घण्टे पूरे होने में थोड़ा हो था अवशिष्ट समय।
इसलिये कर चलीं समारोप कँकेयी जी, रख स्वर मुदमय॥
१५२४ "इतनी सारी अच्छी बातें होंगी विचार की वेला में–
यह था सोचा तक नहीं इस लिये ही तो अब हूँ चकिता मैं॥
१५२५ पर, सँग सँग मुझे हर्ष भी है, तुम सबको दूँ आशीर्वाद।
सविशेष माण्डवीदेवी को देती हूँ हार्दिक साधुवाद॥
१५२६ कहनी हैं दो बातें मुझको, बतला दूँ अल्प समय में जो–
अतिक्रमण ताकि संनियतकाल का किसी भाँति भी तनिक न हो।
१५२७ पहली तो यह कि "कार्य सारे केन्द्रित हों नहीं व्यक्ति पर ही।
यदि अमुक व्यक्ति कर नहीं सके तो भी न हो सकें बन्द कभी॥

१५२८ मानलो किसी कारण मैं या माण्डवी बहू असमर्थ रहें।
तो ऐसा न हो कि 'ठप हैं अब सब कार्य' लोग यों सर्व कहें।
१५२९ इतना दृढ़ हो प्रबन्ध अपना जिससे मशाल जलती रहले।
शैथिल्य तक नहीं यत्किंचित् सेवा का यह सुकार्य, गहले॥
१५३० दूसरी बात है यह कि 'चलाई जावें रात्रि-पाठशाला।'
जिनमें प्रौढ़ाओं को शिक्षण मिल पावे महिला रुचि वाला॥
१५३१ अर्थात् नारियों के हित की जो जो बातें हों रुचिकारी।
उनकी शिक्षा देने की हो शालाओं पर जिम्मेदारी॥
१५३२ है मेरी एक शिकायत भी माण्डवी बहू से इस प्रकार–
श्रुतिकीर्ति बहू का इसे न क्यों अब तक आया कोई विचार
१५३३ संगिनी रही जो सदा, उसे भूलना क्षम्य कैसे होगा?
माण्डवी! तुम्हीं तो कहती थीं तव माता ने आदेश दिया–
१५३४ ऐसा कि 'ध्यान तुम अनुजा का रखती ही पूर्णतया रहना'।
पर माना क्यों न भला तुमने अपनी जननी का वह कहना॥
१५३५ मैं यहाँ तुम्हारी माता-सम इसलिये कह रही साधिकार–
'निज अनुजा को भी रखो संग, उस पर डालो कुछ कार्यभार'

(दोहे) कहा माण्डवी ने कि " है उससे इतना स्नेह–
मानो हम इक प्राणयुत, चाहे दो हों देह ॥२०९॥
उर में पूरा था स्मरण, पर लख समयाभाव।
उसका नाम न ले सकी तथापि कब दुर्भाव?? ॥२१०॥
उसे न बातों में कभी रुचि एवं आह्लाद।
इसीलिये उसको नहीं आज किया है याद ॥२११॥

१५३६ हाँ, जो कुछ मैं तय करलूंगी उस निश्चय के निष्पादन में।
सहयोग पूर्णतः वह देगी, सन्देह न कुछ मम चेतन में॥"
१५३७ हो गया था यतः समय, अतः वह सभा समाप्त वहीं करदी।
कैकेयी ने मिसाल अच्छी, यों उन सबके सम्मुख धर दी॥
१५३८ श्रुतिकीर्ति, माण्डवी तथा यशोदा; तीनों ही दूजे दिन से–
घर घर जाकर नारी सेवा सत्कार्य लगीं करने मन से॥

१५३९ कुछ दिनों बाद, इक प्रभात में, बोली माण्डवी, भरत से यों–
मैंने देखा दु:स्वप्न आज, क्या जानूँ सपना आया क्यों ??
१५४० इससे पहले, बस, एकबार मेरी ताई जी विषयक ही–
देखा था मैंने स्वप्न जो कि निकला पूरा पूरा सच भी ॥
१५४१ दूरस्थ देश वाला था वह, दूरस्थ काल वाला है यह ।
जो समय ही नहीं आ पावे, ऐसा प्रभु से है मम आग्रह ॥
१५४२ चाहती न थी मन से कि देव ! तुम से भी उसकी बात कहूँ ।
पर, मेरा चेतन यह प्रेरे, पति से न छुपाये उसे रहूँ ॥
१५४३ सो, कहती हूँ सुन लो, परन्तु ओंकार से यही करो विनय–
मेरे सम ही कि नहीं आवे कोई कदापि ऐसा कु–समय ॥
१५४४ सपने में यह देखा कि एक संन्यासी आये अपने घर ।
केवल मैं थी तब विद्यमान, सो मुझसे ही बोले हँसकर–
१५४५ "वेदानुसार ही निज का तो जीवन तू प्रतिदिन चला रही ।
सब संपर्कित-नारीनर को इस दिशि में लाना चाह रही ॥
१५४६ पर यहां वधू बनकर आई, है जहाँ भूप का श्रुति-विरुद्ध–
परिणीता रखना तीन तीन, क्या तुझे न लगता यह अशुद्ध ॥
१५४७ जो नियोग की वैदिक आज्ञा थी उसके द्वारा माननीय ।
उसने मानी वह नहीं, भला यह कैसे कुमति सराहनीय ?
१५४८ पटरानी की सपत्नियों को अपने पुत्रों से मोह बढ़े ।
इस कारण भविष्य में वह नृप उस द्वेषभाव की भेंट चढ़े ॥
१५४९ जो सौत एक सुत वाली है उसमैं सुत पर कु-मोह जागे ।
इतना कि अनर्थंकरी दुर्मति उपथे, सन्मति सारी भागे ॥
१५५० उससे पटरानी-तनय तथा उसकी पत्नी हों त्रस्त बहुत ।
तू भी तेरे भर्ता समेत, कष्टाग्नि में बनेगी दुर्हुत ॥"
१५५१ मैं सुनते ही सुनते, भय से कम्पित हो गई सपने में ।
रह सकी नहीं स्वस्था, अनुभव कर रही क्षोभ थी अपने में ॥
१५५२ तब तक जोरों से 'हो हो हो' करके हँस पड़े महात्मा वे–
घबराकर जागी तो पाया, सारे कुदृश्य थे सपने के ॥

१५५३ सबसे पहले तुमको ही यह मैंने हे देव ! सुनाया है।
अब नहीं किसी से कहूँ, यही निश्चय मैंने कर पाया है ॥"
१५५४ इस पर यों बोले भरत देव- "यह निश्चय ठीक तुम्हारा है।
देवी ! भ्रम केवल हुआ तुम्हें, भूलना उचित यह सारा है॥
१५५५ वैसी न क्षीण आशंका भी होनी चाहिये कभी तुमको।
उँह, सपने की उस घटना पर थोड़ा भी ध्यान, भला, क्यों दो"
१५५६ आदेश मानकर प्रियतम का, माण्डवी विनोद लगी करने-
बोली कि "सहचरी वना लिया अनुचरी को, अहा, सहचर ने॥
१५५७ डर था कि बनेगा वह अनुचर, सहचरी बनाले नहीं अगर-
सो, वेचारे को मजबूरन करना उद्धार पड़ा सत्वर ॥"
(दोहा)—यह सुनकर वोले भरत, " बातों में हो दक्ष।
सच बन पावे झूंठ भी शायद, यदि लो पक्ष" ॥२१२॥
१५५८ इस पर दोनों खिलखिला उठे, फिर नियत कार्य में हुए व्यस्त।
चलने लग पड़ा उभय का ही जीवनक्रम विधिपूर्वक समस्त॥



[पूर्वार्द्ध समाप्त]

कैकय-नरेश का पत्र (पन्द्रहवाँ प्रकरण)

१५५९ 'सुखदा' नाम्नी थी यथानाम गुणवती युधाजित् की पत्नी।
पति के जाने को चार मास होने पर वह चिन्तिता बनीं ॥
१५६० सोचा कि श्वसुर जी से जाकर इस बारे में कुछ करूँ विनय।
वे तो पूर्णतः ब्रह्मज्ञानी, सो बनें कब स्वयं चिन्तामय ॥
१५६१ फिर किया तर्क यह भी उर में- 'क्या निर्लज्जा न समझ लेंगे-
प्रियतम के पिता मुझे प्राकृत नारी सम क्यों न मानलेंगे ??'
१५६२ 'पर, मम जिय तो घबराता है इसलिये सभी कुछ सहलूँगी'।
कुछ भी हो, निज उर की चिन्ता उनके समक्ष मैं कह दूँगी॥

१५६३ इतने पर भी, पक्का विचार कोई न एक था बन पाता।
क्षण में आता था एक भाव, क्षणभर में दूजा आ जाता॥
१५६४ इस अवसर पर शोभा देवी आ पहुँचीं मिलने को सहसा।
वे बहुत दिनों में आई थीं, पर यहां नहीं उत्साह दिखा॥
१५६५ पहले तो, थोड़े दिनों बाद आने पर हो सुखदा उनको–
देती थी उपालाम्भ एवं सत्कार करती थी उत्सुक हो॥
१५६६ इस बार मरे-से शब्दों में अभिवादन का उत्तर देकर–
बैठी ही रही आतिथेया, ज्यों हो सस्थिता मौन लेकर॥
१५६७ थीं सुखदा, पुत्र वधू नृप की, तो शोभा, राज पुरोहित की–
अति कुशाग्र मति वाली सुशोभना शुभा स्नुषा थी स्नेहमयी॥
१५६८ दोनों ही एक दूसरी से रखती थीं पूरा सख्य भाव।
सौम्यतायुक्त हो रहता था उनका पावन उत्तम स्वभाव॥
१५६९ इसलिये सहेली का उदास रहना, शोभा को अखर गया।
(यों लगा कि मानो पुष्पगुच्छ कुम्हलाकर भूपर बिखर गया)
१५७० शोभा ने कहा कि "तुम्हें एक ऐसी मैं बात सुनाती हूँ।
जिसकी विचित्रता का मैं ही अनुमान कहाँ कर पाती हूँ॥
१५७१ मैं समझ गई हूँ, भर्ता की चिन्ता में ही तुम हो मग्ना।
पर, नहीं उदास बनी रहकर हो सकती हो सुख-संलग्ना॥
१५७२ तुम 'सुखदा' नाम मात्र की हो, वैसे गुण, अहा, कहाँ रखतीं?
क्या सौख्य दूसरों को दोगी जब स्वयं असुखयुक्ता दिखतीं??
१५७३ मुझको देखो, मैं 'शोभा' हूँ, तो भरसक यथानाम गुण भी–
धारण करने का यत्न करूँ, जानतीं मिसालें तुम जिसकी॥
१५७४ लो, शोभामय जो लखा दृश्य मैंने, वह तुम्हें सुनाती हूँ।
निर्मित कर मौखिक शब्द चित्र, शुभ वातावरण बनाती हूँ॥
(दोहा)–दिख पाया है स्वप्न में दृश्य सुशोभन एक।
हुआ मुग्ध जिस पर तुरत, मम चेतन स-विवेक॥२१३॥
१५७५ हाँ, तो प्रिय सखी! सुनो, मेरे सपने की बात बड़ी अद्भुत–
जिसके सच्चे हो सकने की मम चेतन को सुप्रतीति बहुत॥

१५७६ इसलिये कि अबतक गिनती के दोचार स्वप्न ही देखे हैं।
जो सबके सब सच्चे निकले, रख छोड़े मैंने लेखे हैं ॥
१५७७ यह सपना भी साकार बने, इसमें न मुझे कोई संशय।
पिछले अनुभव से ऐसा में कहती हूँ रह बिल्कुल निर्भय ॥"
१५७८ सुखदा बोलीं कि "आज मेरा मन लगता है पलभर न कहीं।
तुम यही अन्ततः पाओगी तव रुचिरा बातें व्यर्थ रहीं ॥
१५७९ भर्त्ता वाली मम चिन्ता का सम्बन्ध क्योंकि उनसे न रहे।
सो, उन बातों को आज नहीं मम चेतन भी चाहे कि गहे ॥
१५८० प्रिय शोभे ! क्षमा करो मुझको, मैं कुछ न आज सुन पाऊँगी।
यदि बुरा मान जाओगी तो कल घर आ तुम्हें मनाऊँगी ॥"
१५८१ शोभा देवी ने कहाकि "यदि सम्बन्ध, तुम्हारे भर्ता से—
मेरी बातों का हो तो भो क्या विरत रहोगी चर्चा से ??"
१५८२ यह सुन सुखदा विस्मिता हुई, फिर भी तुरन्त ही बोली यों—
"वैसा होने पर, भला, तुम्हें उस चर्चा से रोकूँगी क्यों ??
१५८३ पर, यह न मुझे सम्भव लगता, फिर भी जब हो कहती ऐसा
तब क्यों असत्य मानूं इसको, सँशय इसमें कुछ भी कैसा ?
१५८४ सो, अब सत्वर हो कहा सखो ! अति उत्सुकता मुझ में जागी।
औदास्य भावना इस क्षण तो अनजाने ही बिल्कुल भागी ॥"
१५८५ हंसकर शोभा कह चली कि " उस सपने का हूँ करती वर्णन—
जिसने प्रतीति संयुक्त किये बरबस हैं मेरे मन, चेतन ॥
१५८६ माण्डवी का सुना है तुमने तो, मुझ से ही पहले कई बार—
शुभ नाम और उसके गुण भी बतलाये मैंने बहुत बार ॥
१५८७ सांकास्यपुरी के नृपवर श्री कुशध्वज की वह ज्येष्ठा कन्या।
सचमुच देवी है, सब प्रकार सब समय बनी रहती धन्या ॥
१५८८ जब पिछले दिनों गई थी में पितुगृह, कुछ समय रही भी थी।
तब उससे मेरी भेंट कई अवसर पर थी होती रहती ॥
१५८९ पुर के नारी नर भी उसकी शंसा करते न अघाते थे।
वस्तुतः सब उसे अपने ही घर की बाला सम पाते थे ॥

१५९० उन दिनों कुमारी थी, सहानुजा वह माण्डवी सुगुणयुक्ता–
दोनों बहिनें थीं बड़ी भली, सौम्यतामयी, दुर्गुणमुक्ता ।।"
(दोहा)–झुँझलाकर सुखदा तभी, बोली ऐसे बैन ।
भरकर स्नेहिल कोप से अपने दोनों नैन ।।२१४।।
१५९१ सुखदा ने कहा कि "इससे क्या मेरे भर्ता का सरोकार ?
यह तुम सपना हो सुना रही या करो माण्डवी-गुणोच्चार ।।
१५९२ वह देवी से भी बढ़कर कुछ हो तो इससे क्या है मुझको ।
जो वचन दिया है तदनुसार चाहिये बात कहनी तुमको ।।
१५९३ अन्यथा सुनाओ मत कृपया इस समय मुझे ये बातें सब ।
जो करती रहती हो अपने मिलनावसरों पर जब-तब ।।
१५९४ इतना सम्बन्ध अवश्य मान सकती हूँ मम भर्ता से भी–
उन बातों का, कि उसी निशि में उनसे मैंने वे कहीं सभी ।।
१५९५ जिस दिन तुमने जितनी मुझको माण्डवी-कीर्ति बतला पाई–
उतनी ही ज्यों की त्यों मैंने रजनी में उनको बतलाई ।।
१५९६ वे भी सुनकर सुप्रसन्न हुआ करते, बल्कि थे याद रखते–
कुछ अधिक सुनाऊँ ये बातें, मुद्रा से यों उत्सुक दिखते ।।
१५९७ कहते भी थे कि 'धन्य होगा वह घर जिसमें कि वधू बनकर ।
माण्डवी कुमारी जावेगी, सौभाग्यवान् होगा वह वर ।।
१५९८ यदि मैं बेटी समान उसको लख सकूँ किसी भी तरह कभी ।
तो अपना बड़ा भाग्य मानूँ आहा उसमें हैं सुगुण सभी ।।'
१५९९ बोली शोभा कि "स्वयं अब तुम कर चलीं माण्डवी गुण कीर्त्तन–
चाहे भर्ता के ही पावन शब्दों में हो वह शुभ वर्णन ।।
१६०० माण्डवी-चरित है ऐसा ही जिसके सुचि प्रवाह में बहकर–
कोई भी मुग्ध, प्रसन्न बने; (चाहे नारी हो या वह नर)।। ●
१६०१ फिर भी, चाहिये मुझे कि सुनाऊँ अपना सपना ही तुमको ।
जैसा प्रारंभ में कहा था, पर असम्बद्ध यह भी न, अहो ।।

● मुख पृष्ठ पर यही १६०० वाँ प्रिय छन्द हमने रखा है । यहाँ इसे कथा वस्तु से सुसम्बद्ध रूप में स-सन्दर्भ गहें। ("ओ० प्रे०")

१६०२ मैंने सपने में ही देखा, ऐसा कि माण्डवी का विवाह–
सम्पन्न हो गया मिथिला में, समगुणी व्यक्ति सँग सोत्साह ॥
१६०३ विख्यात महामुनि कौशिक ने प्रस्ताव किया सहसा उसका।
गुरुवर वसिष्ठ जीं बने समर्थक, विरोध का प्रश्न हो न था ॥
१६०४ श्रुतिकीर्ति नाम वाली उसकी अनुजा का भी उन मुनिवर ने
प्रस्ताव संग ही संग रखा जो हुआ समर्थित गुरुवर से ॥"
१६०५ सुखदा फिर झुँझला उठी और बोलीं कुछ अधिक रोष से यों–
"तुम कहे जा रहीं सब ऐसी बातें हो लगातार ही क्यों ??
१६०६ प्रस्ताव या समर्थन का भी क्या सरोकार मम भर्ता से ?
यह सपना अभी सुनाओ क्यों, जब मेरे उर में चिन्ता है ??"
१६०७ इस पर मुस्कुरा उठी शोभा, फिर कहा कि "धैर्य धरो थोड़ा।
मेरे सपने की बातों का है सही दिशा में ही घोड़ा ॥"
१६०८ इतने में छः वर्षीय पुत्र, सुखदा का, आया उसी जगह।
चल रही जिस जगह यह चर्चा, जो रुकती बढ़ती थी रह रह ॥
१६०९ सभ्यता सिखाई गई उसे शाला में ऐसी थी कि 'अगर–
बातें दो व्यक्ति कर रहे हों तो रहो मौनही तुम गहकर ॥
१६१० अभिवादन करो अवश्य किन्तु हाथों को जोड़ 'नमस्ते' ही–
पर्याप्त है, न आवश्यकता मुख से है कुछ भी कहने की ॥
१६११ सो, यों प्रणाम कर शोभा को, वह नन्हा बालक बैठ गया।
मैं सुनूँ बात इन दोनों की, यह विचार उर में पैठ गया ॥
१६१२ शोभा देवी आगे बोलीं–"इस अशोक के श्रद्धेय पिता–
जब अवधपुरी में जा पहुँचे, नृप कुमार तव प्रियतम भर्ता ॥
१६१३ जाते ही तब यह विदित हुआ, बारात में गया वत्स भरत।
चल पड़े युधाजित् सुवीर भी, बस, उससे मिलने उधर तुरत ॥
१६१४ ठहरे न अयोध्या में बिल्कुल अविलम्ब समुद प्रस्थान किया।
जाकर बाराती बनने का, शुभ विचार मन में ठान लिया ॥"
१६१५ बीच में पुनः सुखदा बोली–"बारात भला वह किसकी थी ?
किस नगर को गई थी जिसमें थे पहुँच रहे मम स्वमी भी ??

१६१६ सुस्पष्टतया तुम क्यों न कहो, लगती यह एक पहेली-सी।
पहले तो करती रहीं बहुत-सी चर्चा अभी माण्डवी की॥
१६१७ अब यह बारात और उसमें शामिल होना कहतीं 'इन' का।
उलझन में क्यों हो डाल रही, सब हाल कहो सीधा सच्चा॥
१६१८ 'सब हाल' शब्द सुन, अशोक ने सोचा निज नन्हें-से उर में–
'कहने आई मम पितृदेव का समाचार अपने घर हैं–
१६१९ शोभा चाची विस्तार सहित चाहतीं कथन करना पूरा।
माताजी त्वरा कर रही हैं सुनने को, रखकर अधीरता॥'
१६२० जननी पर थोड़ी खीझ हुई उसके मन में कि 'विघ्न क्यों ये–
डालती बीच में हैं'– ऐसा कोई बुजुर्ग इनसे कह दे॥
१६२१ में तो छोटा हूँ इसीलिये यह कहने में हो असभ्यता।
पर लगातार सुनना चाहे इस वर्णन को मम उत्सुकता॥'
१६२२ क्रम चालू रखकर शोभा ने यों कहा कि ",तुम सुनता जाओ।
सम्बन्ध सभी पूर्वाऽपर बातों में अवश्य ही लख पाओ॥
१६२३ भरताग्रज रामचन्द्र जी की बारात, बिना दूल्हे वाली–
थी गई अयोध्या से जिसमें बाराती गण ही थे खाली॥ ×
१६२४ श्री रामचन्द्र एवं लक्ष्मण, कौशिक मुनि के मख–रक्षण को।
थे गये हुए पहले से ही उन तपोमूर्ति के आश्रम को॥
१६२५ मिथिला में जनक नृपतिवर ने इक यज्ञ रचाया था भारी।
उसमें आमंत्रित होकर थे पहुँचे वे मुनि परोपकारी॥
१६२६ अपने सँग राम तथा लक्ष्मण, दोनों को भी ले गये वहाँ।
शिवधनु श्री रामचन्द्रजी ने भंजित सहसा कर दिया जहाँ॥
१६२७ इस पर विदेह ने निज दुहिता, सीता का रामचन्द्र जी से–
करना विवाह ठाना, लिखकर यह अनुनय की दशरथ जी से॥
१६२८ तब अवधपुरी से नृप दशरथ बारात लिये मिथिला आये।
कौशिक समेत, राघवद्वय उनसे जनकपुरी में मिल पाये॥

× यहां इसका प्रयोग 'सिर्फ' या 'केवल' के अर्थ में है।
("ओ. प्र.")

(दोहे) यों, विन दूल्हे की रही, वह अद्भुत बारात।
भरत और शत्रुघ्न थे उसमें दोनों भ्रात ।। २१५ ।।
इसमें ही शामिल हुए, जाकर वे युवराज।
हैं अशोक के जो पिता एवं तव सिरताज" ।। २१६ ।।
सुन अपना उल्लेख भी, हर्षित बना अशोक।
समाचार था चाहता वह सुनना बेरोक ।। २१७ ।।

१६२९ आगे बोलीं शोभा देवी—"बारात पहुँचने पर 'निश्चय-
दूसरा हुआ यह भी कि 'उर्मिला का लक्ष्मण से हो परिणय' ॥
१६३० बस, इसके बाद रखा मुनिवर कौशिक ने वह शुभ सुप्रस्ताव।
जिसके बारे में कहने का मेरे उर में अत्यधिक चाव ॥
१६३१ यानी, माण्डवी, भरत से, इस अवसर पर हो ब्याही जावे।
शत्रुघ्न, माण्डवी की अनुजा श्रुतिकीर्ति को स्वभार्या पावे ॥
१६३२ गुरु वसिष्ठजी ने सबल समर्थन किया और इस अवसर पर–
जापहुँचे अकस्मात् अपने ये वीर युधाजित् धीस्प्रवर ॥
१६३३ माण्डवी के गुणों की बातें जो मैंने तुम्हें सुनाई थीं–
ज्यों की त्यों अपने भर्त्ता को तुमने ही जो बतलाई थीं--
१६३४ उनको आधार बनाकर उस प्रस्ताव का किया अनुमोदन--
अत्यन्त प्रबल इन नृपसुत ने जो वर वक्ता भी हैं शोभन ॥
१६३५ प्रस्ताव सर्वसम्मति से वह पारित हो गया तथा परिणय--
चारों के इक सँग मिथिला में सम्पन्न हुए शुभ मंगलमय ॥
१६३६ पर, नृपति कैकय के यहां यज्ञ होने वाला था उसी समय।
सो, कौशिक मुनिवर वहां पधारे, पेख नहीं पाये परिणय
१६३७ जाते जाते यों कहा माण्डवी से कि 'राजगृह' में आकर–
मैं कभी लखूँगा तुम दोनों बहिनों को सुयज्ञ-अवसर पर ॥
१६३८ उन मुनिवर के वचनानुसार वे दोनों यहाँ लखी जावें।
सत्वर ही वीर वर युधाजित् पत्नियों समेत उनको लावें ।।"
१६३९ निज पूज्य पितामह नृप के प्रति भागा, यह सुनते ही, अशोक।
वह समाचार मुदमय देने, दौड़ता गया बे-रोकटोक ॥

१६४० चाहे जितने हों कार्य व्यस्त या सु-साधना में लीन, भूप–
रखते थे बालक अशोक पर वात्सल्य नित्य हीं वे अनूप ॥
१६४१ यह एक मात्र था पौत्र तथा लगता था उनको होनहार।
इसके प्रति अतः नृपति रहते थे सदा स्नेहस्मितिमय, उदार ॥
१६४२ जा बैठा तुरत अंक में वह स्वाध्याय-निरत भूपतिवर को।
बातें ज्यों की त्यों सब कहदीं मुदिता मिश्रित कर निज उरकी ॥
१६४३ 'वह सपना था' यह तो उसके सुनने में आया ही कब था।
प्रारम्भ जब हुई थी चर्चा, वह अनुपस्थित बिल्कुल तब था ॥
१६४४ अन्त में, पितामह से इतना कह दिया अधिक, उसने खुश हो–
" आरहे पिता जी सत्वर हैं लेकर उन सब मेहमानों को ॥
१६४५ बाबा ! बताइये तो, कि भरत मेरे हैं कौन, कहूँगा क्या ?
माण्डवी कौन हैं मेरी ? मैं सम्बोधन उनको दूँगा क्या ??
१६४६ श्रुतिकीर्ति और शत्रुघ्न कौन मेरे ? किस तरह पुकारूँगा ?
क्या नामों से पुकारने की बेढब असभ्यता धारूँगा ??"

(दोहे)–हँसकर बोले 'अश्वपति,' "भरत, अहो, तव भ्रात।
पूछो अपनी मातु से, बाकी सारी बात ॥२१८॥
पर, उनसे जाकर कहो पहले यह सन्देश–
'इसी कक्ष में शीघ्र वे तुम सँग करें प्रवेश' ॥२१९॥

१६४७ स्वाध्याय छोड़कर पहले मैं चाहता बहू से हूँ मिलना।
इन बातों का रहस्य पूरा संभव उनके द्वारा खुलना ॥"
१६४८ पहुँचा आज्ञापालक बालक पुनरपि माता के पास तुरत।
उसने देखा कि बनचुका है उनका मुख मण्डल भी हर्षित ॥
१६४९ विश्वास हो गया बच्चे को पूरा कि- सत्य वह समाचार।
जो अभी पितामह को जाकर दे आया हूँ सब लगातार ॥
१६५० शोभा चाची थीं चली गई, माता जी मिलीं अकेली ही।
सुत ने समीप जाकर उनको सूचना, बुलावे की, देदी ॥
१६५१ यह पहला अवसर था कि श्वसुर ने स्नुषा को वहाँ बुलवाया।
पौत्रातिरिक्त कोई न जहाँ पल भर भी कभी पहुँच पाया ॥

१६५२ अध्ययन-कक्ष में जब नृपवर स्वाध्याय- परायण रहते थे।
तब तपोलीन सम पूर्णतया एकान्त--प्रेम ही गहते थे ॥
१६५३ पर, आज पौत्र के सँग उनको माता को भी बुलवाया जो--
इससे अत्यन्त हुआ विस्मय, उस अशोकजननी सुखदा को ॥
१६५४ पूछा सुत से कि "प्रसंग चला क्या था, जब कहा बुलाने को"
इस पर बेटे ने माँ से वे कहदी बातें कि हुई थीं जो ॥
१६५५ था दिया पितामह को उसने कैसे जाकर क्या समाचार।
सब जैसा का तैसा तुरन्त कह दिया तनय ने बिन विचार ॥
१६५६ सुनकर सस्मिता बनी सुखदा, पर कहा नहीं मुख से कुछ भी।
तत्काल पुत्र के संग, श्वसुर जी से मिलने को वह चल दी ॥
(दोहे)--पहुँची, अभिवादन किया, पाया आशीर्वाद ।
फिर पूछा कि "मुझे किया, भगवन् ! क्यों है याद ?? ॥२२०॥
सम्भव है कुछ हुआ हो मुझसे बड़ा प्रमाद ।
क्योंकि नहीं कुछ समय से था मुझ में आह्लाद ॥२२१॥
१६५७ पर, शोभा देवी अभी अभी कह गई एक सपना, आकर।
जिसने अनजाने ही डाला अनुकूल प्रभाव त्वरित मुझ पर ॥
१६५८ क्या जानूँ क्यों ऐसी मुझको शोभादेवी-सम ही प्रतीति--
हो रही कि सच निकलेगा वह सपना, उरमें बढ़ रही प्रीति ॥
१६५९ मेरी सब निरानन्दता भी है अनायास ही दूर हुई ।
यद्यपि था स्वप्न, तथापि उसे सुन उपजी भली उमंग नई ॥
१६६० "ओहो, तो वह सब सपना था !!" यों सहसा बोल उठे नृपवर।
"अच्छा, हम पत्र भेजते हैं वस्तुस्थिति--ज्ञान हेतु सत्वर ॥
१६६१ यदि सच्चा निकला सपना तो ओंकार परम प्रभु शिवतर को-
देने के हेतु सु-धन्यवाद, इक यज्ञ रचाएँगे, नत हो ॥
१६६२ उस निराकार विभु अजअकाय ø परमात्मा के प्रति, श्रद्धा से-
होंगे परिजन समेत नत हम, वह बृहद् यज्ञ कर, निष्ठा से ॥

ø पीछे, प्रियछन्द क्र ३३२ में जो पादटिप्पणी हमने लिखी है; उसे यहां भी सु-सम्बद्धा समझिये। ("ओ३म")

१६६३ उसमें श्री विश्वामित्र महामुनि को साग्रह बुलवाएँगे।
माण्डवी और श्रुतिकीर्त्ति उभय को उनसे फिर मिलवाएँगे॥
१६६४ यों, कौशिक मुनि का वचन सत्य होगा, मिल सके पुण्य हमको।
हर्षों के अवसर पर सुयज्ञ से भिन्न, कार्य क्या उत्तम हो !! □

(दोहे) पत्र पठाया नृपति ने तब सुपुत्र के नाम।
लिखाकि "समय वहुत हुआ, लौटो अब निजधाम॥२२२॥
किया स्वप्न का भी सभी ज्यों का त्यों उल्लेख।
(मानों लिखे सुविज्ञवर कथारूप में लेख)"॥ २२३॥

१६६५ निज पुत्री के बारे में यह लिख दिया कि "रुग्ण रहें वहुधा—
अब उसके भर्त्ता, नृप दशरथ, सो करे वहीं वह पतिसेवा॥
१६६६ हाँ, भरत विवाहित अगर हुआ हो तो भार्या को भी उसकी—
लाना अवश्य उसके ही सँग, मम इच्छा उसको लखने की॥
१६६७ शत्रुघ्न और श्रुतिकीर्त्ति अगर पति पत्नी हों स्वप्नानुसार—
तो लाना साथ उन्हें भी तुम, अनुमति दें जामाता उदार॥"
१६६८ खेलना छोड़कर उसी समय, आगया कहीं से अशोक भी।
बोलाकि "नमस्ते सबको ही मेरा क्यों लिखा न, बाबाजी !!"
१६६९ यह सुन, उसका माना कहना, लिखदिया 'नमस्ते' उसका भी।
फिर हँसकर कहा कि "अब भी क्या खिन्नता कुछ तुम्हें, वत्स! रहीं??*
१६७० यह पत्र मिला दशरथजी को, पर नहीं उन्होंने पढ़ा उसे।
था जबकि युधाजित् का ही ऊपर पता, पत्र तब क्यों पढ़ते॥
१६७१ उस अपने प्रियवर श्यालक (या भार्या के छोटे भ्राता) को—
भिजवाया न वह पत्र, बुलवाया वहीं भरत के मामा को॥

□ हमारे ही रचे हुए एक गायन की दो पंक्तियाँ प्रसंगानुरूप होने से यहां लिखते हैं:—'पुण्यकारी पूर्वजों की, है पुरातन यह प्रथा। मोद में दें विष्णु विभु को यज्ञ करके धन्यवाद !" ("ओ. प्रे.")

* हिन्दी में 'मेरी नमस्ते' का प्रचलन है जिसे हम उचित नहीं मानते। महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि 'वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है' सामन्यतः 'की' प्रयुक्त होता है जो सही नहीं है। उक्त महर्षि ने ही 'वनस्पति' पद का सही लिंग एवं अर्थ में प्रयोग हमें सिखाया है— अस्तु। ("ओ. प्रे.")

१६७२ उसके आने पर विनोद में वोले कि "वहिन के घर भाई--
ऐसा रमगया कि घर की भी सुधवुध बिल्कुल ही बिसराई॥
१६७३ बहनोई बेचारे से भी मिलनेजुलने का नहीं काम।
है शायद मिलाप-योग्यों की सूची में उसका नहीं नाम॥
१६७४ जब हुआ नागरिक अभिनन्दन, तब ही, बस, तुमको देखा था।
बातें करने का तो केवल मिथिला में अवसर आया था॥
१६७५ सो भी थोड़ी-सी देर कि जब पहुँचे ही थे तुम, अहो, वहाँ।
उसके पश्चात् अभी तक भी हो सकी तुम्हारी कृपा कहाँ !!
१६७६ माण्डवी-वधू ने जादू-सा तुम श्वसुर पर किया है ऐसा--
जो उसकी ही योजना सुनो, मेरा तो विचार तक न किया॥"
१६७७ इस पर झेंपे-से वीर युधाजित् बोले-" मैं आता ही था।
इतने में सन्देशा पहुँचा ऐसा कि आपने बुलवाया॥
१६७८ बहनोई जी बोले कि " तुम्हारे पितृदेव का पत्र मिला।
है पता तुम्हारा ही जिस पर इसलिये नहीं मैंने खोला॥
१६७९ फिर भी, अनुमान यही कि तुम्हारी भार्या ने लिखवाया है।
'पति, छोड़ तो नहीं गये मुझे' यह शायद संशय आया है॥
१६८० तुम पत्र खोलकर पढ़ लो, फिर चाहो तो मुझे बता देना।
यदि नहीं बताना चाहो तो आशय का तनिक पता देना॥
१६८१ हो भागिनेय को ले जाने आये तुम पितुरादेश मान।
सो, मुझे भरत के नाना की इच्छा का पूरा सु--सम्मान॥
१६८२ यह भी मैं भलीभांति जानूँ, अब उसे माण्डवी-समेत ही--
तुम ले जाना अवश्य चाहो, सो अनुमति दूँ बिन माँगे ही"॥

(दोहे)--इतने में आये भरत, ले कुछ शासनकार्य।
जिस पर नृप की राय भी लेना था अनिवार्य॥२२४॥
आवश्यक उस कार्य को निबटाकर तत्काल।
नृप ने अनुचर को दिये, कागज--पत्र सम्हाल॥२२५॥
कहा कि " ले जाओ इन्हें, प्रधानमन्त्री--पास।
आते हैं कुछ देर में भरत, रखो विश्वास॥२२६॥

१६८३ फिर कैकेयीसुत से बोले नृपवर कि "सुनो प्रिय पुत्र भरत !
ये तव मातुल इनके पितु की आज्ञा से हुए यहाँ आगत ।।
१६८४ जो केकयनृपति अश्वपति जी हैं मम श्रद्धेय श्वसुर हितकर।
उनकी इच्छा है तुम्हें देखने की, सो तुम जाओ सत्वर ।।
१६८५ हो गये महीने चार, तुम्हारी मामी घबराती होंगी।
लौटें सत्वर भर्त्ता मेरे, यह ईश से मनाती होंगी ।।
१६८६ पितु को तो ज्ञात नहीं कि तुम्हारा विवाह भी संपन्न हुआ।
पर उनके सुत का मन मैंने है गहन दृष्टि से अभी पढ़ा ।।
१६८७ इनकी है चाह यहीं कि माण्डवी को भी सँग भेजा जावे।
सो, इनके बिना कहे, अनुमति देदी, क्या याद करेंगे ये !!
१६८८ कल ही तुमको माण्डवी सहित इनके घर जाना आवश्यक।
है समय बहुत हो चुका इन्हें इसलिये न रुकना ही सार्थक ।।"
१६८९ यह सुनकर कहा भरत ने यों- "हे पूज्य पिताजी ! एक विनय-
मैं करूँ जिसे कृपया मानें ही आप, यही मेरी अनुनय ।।
१६९० मेरे सँगसँग शत्रुघ्न तथा श्रुतिकीर्ति भी रहें, यह अनुमति–
देदें जिससे हम दोनों की चिति को हो पावे सुतुष्टि अति" ।।
१६९१ इतने में पत्र, युधाजित् ने खोला, पहले तो स्वयं पढ़ा।
फिर हँसते हँसते नृपवर के हाथों में पढ़ने हेतु दिया ।।
१६९२ पढ़कर नृप भी हँस पड़े और बोले कि "विनय तुम क्यों करते ?
लो, पढ़ो, तुम्हारे नानाजी आदेश इसी विषयक लिखते ।।
१६९३ अबतो सहमति ही देनी है, अनुमति का है प्रश्न ही नहीं।
पर, सपने की बातें भी ये शोभादेवी ने अजब कहीं !!
१६९४ जैसे कि स्वयं हों विद्यमान मिथिला में और अवध में भी।
वैसे ही कहे दृश्य सारे, यह घटना सचमुच विस्मय की ।।"
१६९५ तब तक पढ़ लिया भरत ने भी वह पत्र और फिर यों पूछा–
"क्या माताजी की सेवा में इसको मैं हूँ ले जा सकता ?"
१६९६ दशरथ बोले कि "पिता ने यह पत्र, पुत्र के नाम लिखा।
सो, इसके बारे में तो है इनसे ही पूछा जा सकता ।।"

दोहा)–लिया भरत के हाथ से, दशरथ ने वह पत्र।
उसके मातुल को दिया, हँसकर हँसी पवित्र ॥२२७॥

१६९७ मामा जी ने हँसते हँसते वह पत्र भरत को सौंप दिया।
'माण्डवीं तथा श्रुतिकीर्ति भी इसे पढ़ें' स्वयं निर्देश किया॥

(दोहा)–गये उछलते–से भरत, प्रथम तो प्रिया पास।
पत्र उसे देकर कहा उससे यों सोल्लास ॥२२८॥

१६९८ "बहुधा मुझसे कहती रहतीं बातें तुम शोभादीदी की।
पढ़ इसे, प्रशंसा उनकी तो करते थे आज पिताजी भी॥

१६९९ मेरे नाना को लखने का जैसा है तुम में समुत्साह।
वैसी ही शोभादेवी को लखने की मुझ में बड़ी चाह॥

१७०० अब यह सम्भव होगा, तुरन्त है क्यों कि हमें चल पड़ना कल।
तुम सहानुजा, शत्रुघ्न सहित मैं, नेता होंगे मम मातुल॥

१७०१ जाना है अभी मुझे शासन कार्यार्थ तनिक सचिवालय में।
निबटा कर वह अनिवार्य कार्य, आता हूँ लौट कुछ समय में॥

१७०२ तब तक यह पत्र बतार खना माताजी को, निज अनुजा को॥
शत्रुघ्न वीर को तथा शुभा श्रद्धेया मातु सुमित्रा को॥

१७०३ सीता भाभी, लक्ष्मण एवं उर्मिला न वंचित रह जावें।
पूज्या माता कौसल्या भी तव द्वारा गह कर पढ़ पावें॥

(दोहे)–अग्रजवर श्रीराम को दिखलाने यह पत्र–
मैं ही जाऊँगा स्वयं, वे श्रद्धेय, पवित्र ॥२२९॥
उनका केवल अनुज ही नहीं, अपितु हूँ दास।
मुझ पर वे भी स्नेहयुत रखें दिव्य विश्वास ॥२३०॥
लूँगा उनसे अनुज्ञा, तभी करूँ प्रस्थान।
उनके प्रति मम हृदय में, सर्वाधिक सम्मान" ॥२३१॥
यह कह भरत चले गये, करने शासन–कार्य।
जो तुरन्त करणीय था, ऐसा कुछ अनिवार्य ॥२३२॥



राजगृह में प्रवेश (सोलहवाँ प्रकरण)

(दोहे)—जाने से पहले मिले, सुव्रत से भरतदेव ।
वोले- " सेवा-कार्य का रखना ध्यान सदैव ।।२३३।।
जव तक मैं लौटूं नहीं, तव तक मेरा भार—
लो तुम जनसंपर्कमय, वन उसके आधार ।।२३४।।"

१७०४ भर्ता के संग माण्डवी भी निजभार यशोदा पर धरने—
आई थी वहां, सखी से जाते जाते विदा-भेंट करने ।।
१७०५ जव सुव्रत-यशोदा ने आश्वासन, भरत माण्डवी को देकर—
जिम्मेदारी पूरी लेली, तव ही लौटे ये दोनों, घर ।।
१७०६ अग्रजवर की सेवा में भी श्री भरतदेव हो आये थे ।
दिखलाकर पत्र, अनुज्ञा अपने जाने की ले आये थे ।।
१७०७ कैकेयी ने स्वस्त्ययन किया पाँचों ही जाने वालों का ।
कौसल्या तथा सुमित्रा भी इसमें सँग देती थीं उसका ।।
१७०८ अभिवादन सवको यथायोग्य कर, पांचों ने प्रस्थान किया ।
जाने के समय नृपतिवर ने उन सवको स्नेहाशीष दिया ।।
१७०९ मार्ग में ठहरते हुए, सात दिन वाद, वहाँ जा पहुँचे वे—
राजगृह नगर से अनतिदूर अव उनके यान जहाँ से थे ।।

(दोहे)—शोभादेवीं को, उधर, कुछ ऐसा आभास—
हुआ कि आई माण्डवी, कैकयपुर के पास ।।२३५।।
दौड़ी दौड़ी वह गई, महल मध्य तत्काल ।
सुखदा से कहने लगी, इस प्रकार सव हाल ।।२३६।।

१७१० "हे सुखदे सखी ! आज मैंने जागते हुए सपना देखा ।
उससे आगे, जो उस दिन था निद्रितादशा में ही पेखा ।।
१७११ यह जाग्रत-स्वप्न लखा मैंने अपने उर के पट पर ज्योंही—
कहदूँ तुमसे भी, यही सोच, मैं भागी आई हूँ त्योंही ।।
१७१२ निरखा मैंने कि पत्र अपने भूपतिवर का जा पहुँचा जव—
दशरथ जी ने तव भर्ता को जाने की अनुमति देदी तव ।

१७१३ साथ ही, भरत, माण्डवी और शत्रुघ्न, माण्डवी-अनुजा; ये-
चारों भी, श्वसुरादेश मान, कुछ समय के लिये, भेज दिये ॥
१७१४ चल पड़े अवध से हैं पाँचों, आने ही वाले हैं इस पुर।
क्रमशः दोनों ही मम सपने साकार बनेंगे अब सत्वर ॥"
१७१५ इतने में अशोक ने आकर अभिवादनपूर्वक बतलाया–
"आएँगे आज पिताजी ऐसा है मेरे मन में आया ॥
१७१६ उनके सँग दोनों भाभीजी, दोनों भ्राताजी भी आवें।
शोभा चाची की बातें सब, उस दिन वाली, सच हो जावें ॥"
१७१७ सुखदा बोली कि "आज फिर ये आई हैं कहने बात यही–
जो तूने वत्स ! अभी आकर मुझसे इनके सामने कही ॥
१७१८ उस दिन तो थी सपने की ही, पर आज बात जाग्रत की है।
जो दिव्यदृष्टि से देख इन्होंने अद्भुत मुझे सुनादी है ॥"
१७१९ बच्चे ने आग्रह करके सब सुनलीं बातें, फिर चला गया।
कहकर कि "पितामह को दूँगा जाकर यह भी संवाद नया॥
१७२० मेरे मन में जो आया था वह इसके समान ही बिल्कुल।
सो यह वह दोनों ही प्रकार उनसे कह दूँगा मैं अविकल ॥
१७२१ शोभा अपने घर गई क्योंकि बच्चों को साथ न लाई थी।
कुछ देर के लिये ही अपना सपना कहने वह आई थी ॥
१७२२ बालक अशोक जब आज गया तब भी नृप थे स्वाध्याय-निरत।
पर उसे देखकर वे श्रुति के अनुशीलन से हो गये विरत ॥
१७२३ प्रश्नात्मक मुद्रा बना, उसे यों देखा, मानो पूछ रहे –
'क्या वैसे वचन कहोगे कुछ, जैसे उस दिन थे, अहो, कहे' ॥
१७२४ प्रमुदित हो, अशोक ने कह दीं बातें दोनों ही पूर्ण नया।
यह भी कि उसे पूरी प्रतीति, सच होने की, सम्वाद नया ॥
१७२५ नृप विस्मित होकर बोल उठे -"श्रुति का भी वही मंत्र आया-
स्वाध्याय हेतु मेरे समक्ष, जिसमें 'भरतम्' प्रभु ने गाया ॥
(दोहे)– बालक समझा तो नहीं, नृपबर की यह बात।
पर, सुन "भरतम्" शब्द ही, पुलके उसके गात ॥२३७॥

भाभी का भी काल्पनिक, आया रोचक ध्यान।
लगा भरत के विषय में जब करने अनुमान ।।२३८।।
१७२६ छोटी भाभी श्रुतिकीर्त्ति और भाईसाहब शत्रुघ्न वीर।
इनके सु-ध्यान-पिंजर में भी पैठा उसका अनुमान कीर ।।
१७२७ नन्हा था, फिर भी पौत्र, 'अश्वपति' ज्ञानीवर का होने से–
कल्पना-सुप्रतिभा उसमें थी ऐसी कि अनुभवी हो जैसे ।।
१७२८ पुनरपि स्वाध्याय-निरत होना चाहते हुए नृप बोले यों–
"अच्छा, अब जाओ, वत्स! तुम समय अपना व्यर्थ खो रहे क्यों?
१७२९ मैं भी श्रुति का अध्ययन करूँ जैसा है दैनिक मेरा क्रम।
वह बने शूद्रवत् बहिष्कार्य जो करे न श्रुति-ज्ञानार्जन-श्रम ।।
१७३० द्विज होकर भी वेदों का जो करता न अध्ययन हो प्रतिदिन–
वह द्विजगण में से क्यों न बहिष्कृत होकर कष्ट सहे अनगिन।
१७३१ है 'योअनधीत्य द्विजो वेदम्' वाला जो मनुस्मृति का सुश्लोक।
वह प्रामाणिक है इसविषयक ❀ मैं डरूँ क्यों न उसको विलोक ।।"
१७३२ कहतेही रहते यों नृपवर श्रुतिके अनुशीलन की गरिमा।
यदि याद न आती उन्हें समय के सदुपयोग की शुभ-महिमा ।।
१७३३ बोले कि "अशोक जा चुका है, फिर किसे सुनाताथा यह सब।
ओहो! मेरी मति कितनी है बेढँगी होती जाती अब !!"
१७३४ तदनन्तर मन्त्र पुनः पढ़कर अर्थों पर करने लगे मनन।
जो भाष्य, आप्तपुरुषों के थे, उनमें भी देखा सु-विवेचन ।।
१७३५ इतने में दो रथ रुके द्वार पर जिनकी आहट पाकर वे–
देकर आवाज़, लगे कहने बाहर-बैठे निज किंकर से ।।
१७३६ "देखो तो, क्या युवराज युधाजित् वापिस हैं आगये, अहो।
यदि ऐसा हो तो अभी ठीक मुझ से आकर संवाद, कहो ।।"
१७३७ कक्ष के बाह्य गलियारे से द्वार तक न किंकर जा पाया–
तब तक दौड़ा-दौड़ा अशोक मुन्ना हँसते-हँसते आया ।।
१७३८ अध्ययन कक्ष में जाकर वह बोला कि "मम कथन सच निकला।
बाबाजी! लखिये, सपना भी शोभा चाची का सही रहा ।।
("ओ॰ प्र॰")

❀ पीछे., प्रियछन्द क्र १२७७ की टिप्पणी देखिये।

१७३९ आगये पिताजी, उनके सँग दो युवक, सुरथ में से उतरे।
दूजे रथ में से दो युवती उतरीं, चारों थे मोद–भरे ॥
१७४० आगे-आगे मम पूज्य पिताजी, उनके पीछे चारों ही–
आरहे इधर हैं चले, आपकी सेवा में, लीजिये सभी ॥"
१७४१ ग्रंथों को खुले छोड़कर नृप सहसा अशोक के साथ-साथ-
आये बाहर तो लखा कि पाँचों जोड़ रहे थे उन्हें हाथ ॥
१७४२ आने पर निकट, चरण छूकर उन सबने आशीर्वाद लिया।
नृप ने वैदिक स्वस्त्ययन बोल प्रति वन्दनभी सोल्लास किया॥
१७४३ फिर आँखें मूँदे, हाथ जोड़, हर्षित मुद्रा में खड़े रहे–
अन्तर्यामी ओंकारनाथ प्रभु के प्रति अस्फुट वचन कहे–
१७४४ "भगवन्! आपके अनुग्रह से दौहित्र विवाहित लखपाया।
बुलवाया पूर्व अकेला था, पत्नी समेत, आहा, आया ॥
१७४५ हैं उसके अनुज तथा मेरी दौहित्र-वधू की अनुजा भी–
दिखपाये इनके संग, आपकी यह विशेष अनुकम्पा ही ॥
१७४६ सुत मेरा सकुशल आ पाया, सुखदा की चिन्ता दूर हुई।
तव महती कृपा है कि सबको मुदिता सुप्राप्त भरपूर हुई ॥"
१७४७ (ऐसी ही कृतज्ञतावाली बातें उस निराकार प्रभु से–
वे यों कहते थे मानों वह उनके समक्ष समुपस्थित है ॥)
१७४८ इस बीच, अशोक, चरण छूकर सबको प्रणाम कर चुका तुरत
फिर खड़ना होगया वहाँ, खड़े थे जहाँ माण्डवी सहित भरत॥
१७४९ जब खोले नयन 'अश्वपति' ने तब लखा पौत्र को खड़्रा हुआ।
बोले कि "वत्स! क्यों नहीं चरण छू सबकी तुमने गही दुआ??"
१७५० माण्डवी तनिक आगे बढ़कर बोलीकि "पूज्य!सुनिये, मेरे–
छोटे-से देवर नहीं अपेक्षा रखें कि यों कोई प्र रे ॥
१७५१ जब नयन मूँद प्रभु-विनय आप करते थे, इनने, बस, तबही-
अत्यन्त विनीत भाव से हम सबकी विधिवत् सु-वन्दना की॥
१७५२ इनकी मुख-मुद्रासे निश्चयपूर्वक में यह कह सकती हूँ–
'ये बड़े यशस्वी निकलेंगे', आशीष पुनः अब देती हूँ ॥"

(दोहा) नृप ने तब निज पौत्र को दिया तुरत आदेश–
समाचार, तब मातु को दो कि दूर हो क्लेश ॥२३९॥

१७५३ फिर सबके साथ कक्ष में जा बैठे, सबको भी बिठलाया ।
है अशोक कितना होनहार, कह घटनाएँ, यह बतलाया ॥

१७५४ तुम लोगों के आने का भी अनुमान आज ही इसे हुआ ।
छोटा तो है पर आत्मा का संस्कार वस्तुतः बहुत ऊँचा ॥

१७५५ माण्डवी बहू ! तुमने इसके आत्मा की गुरुता को जाना ।
इस पर से मैंने दिव्य दृष्टि वाली तुमको भी है माना ॥

१७५६ हे वत्स भरत ! ऐसी पत्नी पाकर तुम हो सौभाग्यवान् ।
मत कभी उपेक्षा इसकी तुम करना, इसमें गुण हैं महान् ॥

१७५७ जब अशोक-सम थी आयु तुम्हारी, तब तव माता संग, अहो–
आये थे यहाँ, तुम्हें शायद बिल्कुल ही तब की याद न हो ॥

१७५८ उससे पहले, जब नामकरण-संस्कार तुम्हारा था पावन ।
तब मैंने ही भेजा सुझाव यह था कि 'भरत' रखदो शोभन ॥

१७५९ तव नाम 'भरत' रख देने का मैंने भेजा सुझाव जिस दिन–
शुचि ऋचा 'तमीळत' प्रतीकयुत, पढ़ने में आई, थी उसदिन ॥

१७६० उसमें 'भरतम्' सुशब्द लखकर संस्फुरित हुआ ऐसा मुझको–
परमात्मा का यह नाम क्यों न मिल जाये कैकेयी-सुत को ॥

१७६१ माना वसिष्ठ गुरुवर ने भी मेरा सुझाव एवं-सहर्ष–
रख दिया तुम्हारा नाम 'भरत', इसको बीते छब्बीस वर्ष ॥

१७६२ संयोग लखो कि आज भी जब आये हो अब माण्डवी सहित ।
स्वाध्याय में पुनः वही ऋचा आई, मैं हूँ यह लख विस्मित ॥

१७६३ उसमें से भो में 'भरतान्' पर जब फिर जा रहा आ विचार ।
तब सहसा अशोक नामक यह सत्पौत्र आगया होंनहार ॥

१७६४ तुम इन सबके समेत, आने ही वाले हो, यह बतलाया ।
मानों सम्मुख हो निरख रहा, सचमुच ऐसे ही जतलाया ॥

१७६५ अनुमान, स्वयं का, तथा भान, शोभा देवी का, भी कहकर–
निज पक्की प्रतीति प्रकटाई, वचनों में पूर्ण सुदृढ़ रहकर

१७६६ बस, इसके थोड़े समय बाद वास्तव में आपहु व तुम सब।
इन तीन-तीन संयोगों को रख सकूँ उपेक्षित कैसे, कब ??"
(दोहा) यह सुन, यों श्रुतिकीर्ति ने सविनय बोले बैन।
(मर्यादापूर्वक सतत रखकर नीचे नैन) ॥२४०॥
१७६७ श्रद्धेयप्रवर ! मैं भी चाहूँ कुछ कहना जोकि सुनें कृपया।
वह मंत्र है नहीं इन दीदा माण्डवी के लिये तनिक नया॥
१७६८ जब हम दोनों कुमारिका थी तब की ही घटना आकस्मिक–
है यह कि जिसे पूर्णतः आप मानिये मान्यवर ! प्रामाणिक॥
१७६९ शोभा देवी के पूज्य पिता श्री उपाध्याय जी थे शिक्षक–
हम दोनों बहिनों के, जिनसे पाया हमने शिक्षण सार्थक॥
१७७० इकदिन शिक्षा देते-देते, नारी–महिमा के प्रसँग में–
आपका नाम भी लिया उन्होंने कहा-'सु-माता के सुत हैं'॥
१७७१ फिर सुना आपकी जो दशरथ-भार्या आर्या कैकेयी-जी–
उनका भी वर्णन कर, सबला होने की विशेषता कहदी॥
१७७२ यह तभी हमारी माता को निज चिति की प्रतीति बतलाई।
कैकेयी जी हों सास, माण्डवी की, सु-भावना जतलाई॥
१७७३ था आया उसी सिलसिले में कैकेयी--सुत का नाम तभी।
इन भरत देव के गुणगण जो थे उन्हें विदित, वे कहे सभी॥
१७७४ उसके दूजे दिन, यही ऋचा दीदी के पढ़ने में आई।
समझीं ये अर्थ नहीं इसका तब गुरुवर ने यह समझाई॥
१७७५ 'भरतम्' का अर्थ प्रभुरक हो, आध्यात्मिक, यद्यपि बतलाया।
वैसे गुणधारक मनुजपरक लौकिक भी तथापि दरसाया॥
१७७६ तबसे दीदी माण्डवी सदा यह ऋचा अधूरी जपती थीं।
दो शब्द-'तमीळत' 'भरतम्' ही बहुधा ये रटती रहती थीं॥
१७७७ फिर विदा-समय, गुरुवर ने ही इस तरह इन्हे उपदेश दिया।
'बेटी माण्डवी ! स्वप्न तेरा, परमेश्वर ने साकार किया॥
१७७८ अब, पूरा मन्त्र जपाकर तू, प्रभुवर का ही आशय गहकर।
देताहूँ शुचि भावार्थ सहित यह वेद मंत्र तुझको लिखकर॥"
१७७९ उस पर है लिखा पता कि 'मंत्र तीजा यह, वर्ग तीसरे का।
प्रथमाष्टक में सप्तमोऽध्याय लखलो, ऋग्वेद संहिता का॥"

(दोहा) नृपति 'अश्वपति' ने कहा– "यही पता है ठीक।
उपाध्याय जी ने लिखा, बिल्कुल नहीं अलीक ॥२४१॥

१७८० अब समझा मैं कि रखे शोभारानी क्यों इतनी सुदिव्यता।
हैं श्रेष्ठ पिता श्री ही उसके जिनकी तुम दो दो हो शिष्या ॥"
१७८१ माण्डवी लजाई थोड़ी-सी, फिर कहा- "शेष है बात रही–
वह मैं चाहूँ पूरी करना जो अनुजा ने है नहीं कही ॥
१७८२ उन गुरुवर ने ही यह भी था कहदिया कि "बहिनें चारों तुम–
ब्याही जाओगी एक जगह, रह लेगा सख्यभाव उत्तम ॥
१७८३ इसने उनके समक्ष मेरा जब तनिक मजाक उड़ाया था।
यह भविष्यवाणी करके तब इसको शालीन बनाया था ॥
१७८४ उनका प्रत्येक वचन सचही निकला, वे धन्य धन्य गुरुवर।
शोभा दीदी से भी हम हैं परिचित वे स्नेह रखें हम पर ॥"
१७८५ तबतक सुखदा आगई वहाँ, बोली हँसकर कि "चलो भी अब-
दोनों भान्जों ! उभय बहुओं ! कबतक तुम यहीं रहोगे सब ??
१७८६ मैं बाट जोहती रही कि तुम अब आते हो, अब आते हो।
पर जब इतनी हो गई देर तो आई तुम्हें बुलाने को ॥"
१७८७ फिर श्वसुर महोदय से बोली सविनय कि "अनुज्ञा दें भगवन् !
ये चारों जाकर पथ का श्रम हरने के ढंग करें, श्रीमन् !!
१७८८ नानाजी, मामाजी, दोनों इनसे बातों में लगे रहे।
'सुविधापूर्वक तुम श्रान्ति रहो' यह इन्हें किसलिये कौन कहे !!
१७८९ मैं गृहस्वामिनी हूँ, मुझे तो चिन्ता इसकी भी थी करनी ही।
सो, विघ्न डालने चर्चा में, हूँ जान बूझ कर मैं आई ॥
१७९० यदि भरतदेव की नानीजी होतीं जीवित इस समय, अहो।
तो गृहस्वामिनी वही रहतीं, यह चिन्ता भी होती उनको ॥
१७९१ नानी का बड़ा महत्व, कहानी हैं नानी की, सु–विख्यात।
आतीं है नानी याद, कार्य जब कठिन, कंपावे कभी गात ॥
१७९२ पर वे नो नहीं रहीं, सो अब उनका मैं हूँ कर रही कार्य।
मुझ मामी को भरतादि के लिये चिन्तित होना अपरिहार्य ॥"

१७९३ इस पर यों कहा युधाजित् ने– "मेरी माँ गृहस्वामिनी रहीं–
तब किसी भाँति का भेदभाव होने की घटना हुई नहीं ॥
१७९४ यदि कभी पिताजी, छोटों को सँगले, कुछ दिनों बाद आते–
तो माताजी को छोटों के प्रति ही चिन्तित न कभी पाते ॥
१७९५ वे गृहस्वामिनी सुयोग्या थीं पर अब वह पद है मिला जिन्हें–
'केवल छोटों को सुविधा हो', बस, इसकी चिन्ता रहे उन्हें ॥
१७९६ बहनोई श्री दशरथ जी ने अनुमान व्यर्थ हो लगा लिया।
'सुखदा चिन्ता करती होगी' ऐसा मुझसे जब कथन किया ॥
१७९७ हैं पाँच समागत उनमें से पर्वाह चार की ही करती।
जो गृहस्वामिनी इस समय है वह कहाँ पाँचवें को गिनती ॥□
१७९८ मानो वह बेचारा न मनुज या उसे न श्रान्ति व्याप सकती।
अब वैसी गृहस्वामिनी कहाँ जो सबकी क्लान्ति माप सकती॥
१७९९ जो भी हो, पूज्य पिताजी ! मैं शत्रुघ्न वीर विषयक विवरण–
प्रस्तुत करना चाहता अभी, जब ताजा ताजा मुझे स्मरण ॥
१८०० इसलिये, अनुज्ञा हेतु विनय जो आई है वह ठुकरा दें।
मेरी प्रार्थना मान्य करके मुझको कहने का अवसर दें ॥"
दोहा–तबतक नृप को दिख पड़ा, आता पुनः अशोक।
(यथा नाम जो नित्य था हरता सबका शोक) ॥२४२॥
राजा के मन में तुरत उपजा एक विनोद।
विवाद की जड़ ही सके पूर्णतया जो खोद ॥२४३॥
१८०१ ज्योंही समीप आया बालक त्योंही सप्रेम बोले उससे–
"प्यारे बेटे ! मैं न्याय कराना एक, चाहता हूँ तुमसे ॥

□ हमें यहां राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी गुप्त की (जिन्होंने कृपापूर्वक हमें लेखी शुभकामना स्वहस्त से लिख भेजी थी कि " साहित्यसाधना की सफलता चाहता हूँ") ये पंक्तियां स्मरण हो आईं–" बोलो झूँठ न; अक्षर पाँच। लिये शास्त्र में हमने बाँच ॥ मान लिये, बस, पहले चार। कौन चले [illegible] अनुसार ?? " (" ओ. प्रे. ")

१८०२ शत्रुघ्नवीर विषयक विशेष परिचय तव पिता अभी दे दें–
अथवा ये सब विश्राम हेतु मुझसे छुट्टी सम्प्रति ले लें ॥
१८०३ जो तुम कहदोगे वही इस समय होगा, यह मेरा निश्चय।
बोलो तुरन्त, छुट्टी सबको दे दूं या अभी सुनूं परिचय ॥
१८०४ तत्काल अशोक समुत्तर में सुस्पष्ट दृढ़ वचन बोला यों–
(पहले से ही निर्णय उसने मन में तैयार हो किया ज्यों ॥)
१८०५ "विश्राम-पक्ष से बढ़कर है आपका अध्ययन–पक्ष, अहो।
यह उचित नहीं कि नियम दैनिक टूटे, वैदिक स्वाध्याय न हो ॥
१८०६ परिचित होने का भी महत्व कम नहीं, अतः मेरा निर्णय-
है यही कि परिचायक दे दें संक्षिप्त रूप में ही परिचय ॥
१८०७ तत्वतः सभी बातें जिसमें आजाएं, इस प्रकार का हो–
वह परिचय, शब्दाडम्बर को उसमें स्थान कुछ कहां न हो ॥
१८०८ माण्डवी, 'अश्वपति'; दोनों ने इक संग ही कहा–'वाह वाह'।
सुखदा के उर में स्वयं हुआ परिचय पाने का समुत्साह ॥
१८०९ खिसियानी-सी होकर बोली–"अच्छा तो, क्यों न सुनूं मैं भी–
होनी चाहिए संग इसके, चर्चा, प्रिय वत्स भरत की भी ॥"
१८१० सस्मित बन परिचायक बोले–"नृप का ही निर्णय कहलावे।
चाहे छोटे-से बच्चे के द्वारा हम तक वह आ पावे ॥
१८११ सो, भरत की नहीं चर्चा मैं कर पाऊंगा, है क्योंकि त्वरा।
श्रद्धेय पिता का वेदग्रंथ सामने खुला का खुला धरा ॥
१८१२ फिर भी, जितना कि आनुषंगिक, उतना तो होगा ही वर्णन।
हां तो अब सुनिये आप सभी जो करता मैं कमनीय कथन ॥
१८१३ शत्रुघ्न सगे भाई तो हैं लक्ष्मण के, फिर भी इन्हें भरत–
बिल्कुल ही सगा जँचे अग्रज, ये इसकी भक्ति में रहें रत ॥
१८१४ रखता है स्नेह भरत, पक्का इन पर, यह भी मैंने देखा।
इन दोनों में जो दिव्यभाव उसका दे सके कौन लेखा ??
१८१५ एक ही दे रहा उदाहरण, जो यह कि भरत, माण्डवी सहित–
जावें मेरे संग, ऐसा जब हो सर्वथा ही निश्चित ॥

१८१६ मम भागिनेय ने किया निवेदन तब निज पूज्य पिताजी से।
'श्रुतिकीर्ति सहित शत्रुघ्न साथ रहले मेरे, यह माँगूं मैं॥
१८१७ जानते अनन्य सख्य इनका हैं वे नृपवर भी पूर्णतया।
दोनों में कितना अधिक स्नेह, इसका उनको है सही पता॥
१८१८ सो, तुरन्त ही मान ली विनय, वैसे अन्य भी रहे कारण।
पर, उन सब में इस कारण को मैं समझूं मुख्य, असाधारण॥
१८१९ माण्डवी रखे सीता से ज्यों श्रद्धापूर्वक सुप्रीति महती।
त्यों, बल्कि कुछ अधिक ही उससे, है राम से भरत को रहती॥
१८२० सुन उभय, विमाताओं के हैं, पर सगे भाइयों जैसा ही–
आपस में करते सु-व्यवहार है उदाहरण को समय नहीं॥
१८२१ थोड़े-से में कह दूं कि सुमित्रा के सुत हैं शत्रुघ्नवीर।
पर कैकेयी-सुत के सम ही जनसेवक, ज्ञानी, शूर, धीर॥
१८२२ जैसे श्रुतिकीर्ति, माण्डवी का; जनसेवा में सहयोग करे।
वैसे शत्रुघ्न, भरत का रह सहयोगी, सबमें मोद भरे॥
१८२३ बस, इतना ही मैं कहूँ आज, भूला हूँ क्योंकि नहीं निर्णय।
फिर कभी निवेदन कर दूंगा अवशिष्टों का विशिष्ट परिचय॥

मध्यस्थता (सतरहवां प्रकरण)

(दोहे) नानाजी के निकट से गये माण्डवीनाथ।
भीतर, भार्यादिक सहित, मामीजी के साथ ॥२४४॥
पहले से ही किया था, मामी ने सु-प्रबन्ध।
किसे ठहरना है कहां, इसका था उपबन्ध ॥२४५॥
भरत–माण्डवी के लिए नियत कोष्ठ था एक।
सपत्नीक शत्रुघ्न हित, रखा अपर, सविवेक ॥२४६॥

१८२४ निज निज कक्षों में जाने ही वाले थे जब दोनों 'जोड़े'।
इसलिये कि लें विश्राम तनिक उनके सुश्रान्त इंद्रिय-घोड़े ॥ ø
१८२५ तब शोभा सहसा आ पहुँची, दोनों बच्चों को लिये संग।
जाग्रत सपना सच होने की उर में थी आशान्वित उमंग ॥
१८२६ वस्तुतः स्वप्न साकार हुआ, यह देख हुई हर्षित अतिशय।
आते ही, दोनों बहिनों से वह गले मिली, रख उर मुदमय ॥
१८२७ उन दोनों ने भी दीदी को अभिवादन सविनय तुरत किया।
फिर उनके प्रति अति भक्तिभाव से श्रद्धायुत कुछ कथन किया ॥
१८२८ इतने में दोनों बच्चे भी कर प्रणाम, दोनों से लिपटे।
(सांकाश्यपुरी में कई बार थे मिले अतः रख याद सके ॥)
१८२९ ज्येष्ठ ने माण्डवी को जकड़ा, छोटे ने अनुजा को उसकी।
(नाना के घर मिठाइयें तब जिस जिस ने जिसे खिलाई थीं ॥
१८३० बिन भूले, बस, उस उसको ही दोनों बच्चों ने जकड़ लिया)
इतने में अशोक ने आकर इस दृश्य पर बहुत ध्यान दिया ॥
१८३१ बोला कि "भाभियाँ मेरी ये दोनों, ले जाते इन्हें कहां ?
छोड़ो तुम दोनों वर्ना मैं काटूं चिकोटियाँ जहां तहाँ ॥"
१८३२ दोनों बच्चे इक संग बोले—"मौसियाँ हमारी हैं ये तो।
हम इन्हें जानते पहले से, तुम भाभी आज बताते हो ॥
दोहा– इसका उत्तर कुछ न था, अशोक जी के पास।
फिर भी कहा कि "मुझे ही आज हुआ था भास ॥२४७॥
१८३३ आईं भी सीधी यहीं उभय, इसलिये रहेंगी क्यों न यहाँ ?
कर परसों कुछ कुछ देर तुम्हारे घर जाएं तो रोक कहां ??"
१८३४ इसपर माण्डवी सस्मिता बन बोली कि "मत करो तुम झगड़ा।
हम दोनों हैं भाभियां और मौसियाँ, हमें आनन्द बड़ा ॥
१८३५ हम दोनों हैं भाभियां और मौसियाँ, हमें आनन्द बड़ा ॥
बोलो, छोटे-से देवर जी ! क्या इन बच्चों से लड़कर तुम-
यह फल पाना चाहते कि तुमसे खिन्न, रुष्ट हो जाएँ हम ??"

ø सुश्रान्त' में सु' का प्रयोग 'खूब ही' के अर्थ मे वैसे ही किया गया है जैसे मीनाकार ने अपि चेत्सुदुर च रों' में किया है। ("ओ श्रे")

१८३६ बोला अशोक–" ना, भाभी ! ना, ऐसा मत मुझे दण्ड देना।
मैंने छोड़ा सारा झगड़ा, तुम दोनों रुष्ट न वन लेना ॥ "
१८३७ हँस पड़े सभी, ये बातें सुन; तीनों बच्चों में हुआ मेल।
कुछ दूर पहुँचकर तीनों ही सोल्लास खेलने लगे खेल ॥

(दोहा)–इधर, सखी से पूछकर शोभा ने तत्काल ।
जाने, भरत सुकीर्तियुत और सुमित्रालाल ॥२४८॥

१८३८ अभिवादन प्रायः सँग सँग ही दोनों पक्षों ने तुरत किया।
(सो, पता नहीं यह चल पाया नमनोत्तर किसने किसे दिया)
१८३९ पतिदेव तथा प्रिय देवर को माण्डवी ने तभी बतलाया।
"हैं ये वे ही शोभा जिनका उल्लेख पत्र में था आया ॥ "
१८४० चारों को घर आने का दे आमन्त्रण, शोभा चली गई।
सँग अशोक को भी लाने की वह कहना बात, नहीं भूली ॥
१८४१ सुखदा ने वैसे तो बातें आवश्यक सबसे कीं सारी।
पर, दिखी अनमनी लगातार जैसे उर हो बोझिल भारी ॥
१८४२ माण्डवी यह दशा ताड़ गई, कारण का भी अनुमान किया।
इसलिये युधाजित् के प्रकोष्ठ की ओर तुरत प्रस्थान किया ॥
१८४३ (बातें दोनों में कई वार हो चुकीं अयोध्या में ही थीं।
सो, बिल्कुल भी संकोच, माण्डवी को उनसे था रहा नहीं ॥)
१८४४ जाते ही कहा कि "मैं भोजन आपके यहाँ न करूँ तबतक–
मामी जी से आपको क्षमा माँगते नहीं लख लूँ जब तक ॥
१८४५ उनके प्रति कहा आपने जो, उसमें सत्यांश रहा थोड़ा।
मिथ्या कल्पना बना, उनको मारा कटु वचनों का कोड़ा ॥
१८४६ क्या पति के प्रति साध्वी पत्नी, उर में तिल मात्र उपेक्षा का–
आने दे सकती है कु–भाव ? कुलटा से ही यह कदपेक्षा ॥
१८४७ वचनों में त्रुटि हो सकती है पर केवलमात्र इसी कारण–
क्यों संशय तनिक प्रणय पर हो ? आरोप तव नहीं साधारण ॥
१८४८. कोई भी सन्नारी उस पर अतिशय ही दुःख करे अनुभव।
मैं तो कहती हूँ, बनता है कुण्ठित उससे नारी–गौरव ॥

१८४९ मामी जी यदि हों मन्युमयी, ऐसे दुर्भाव युक्त पति पर–
तो है यह उचित सर्वथा ही, धिक्कार आपकी दुर्मति पर ॥
१८५० उनको अनमनी देखकर मैं रह सकी अविचलित नहीं वहाँ।
सो, कहने ये कड़वी यथार्थ बातें, आई हूँ दौड़ यहाँ।
१८५१ मेरा सत्याग्रह यही कि मैं घोषित करती हूँ निज अनशन।
यह सच समझें हे पूज्यप्रवर! अनशन धारूँ, न करूँ भोजन॥"
१८५२ शत्रुघ्न तथा श्रुतिकीर्ति वहाँ आ पहुँचे बिल्कुल उसी समय।
जब अन्तिम शब्द कह रही थी माण्डवी बताकर निज निश्चय॥
१८५३ 'अनशन धारूँ, न करूँ भोजन' इतना सुनकर ही ये दोनों।
इकदम कह उठे कि "तब हम भी अनशन ही, अहो, न धारें क्यों॥"
१८५४ तबतक आ गये भरत एवं उन दोनों का सुनकर 'कहना'–
बोले कि "मनुज को विवेकयुत सर्वदा चाहिये ही रहना॥
१८५५ मैं तो अविचारपूर्ण सहसा चाहूँ न वचन कहना ऐसे–
तुम दोनों हो ने अभी अभी हैं कहे, अनुकरण में, जैसे॥
१८५६ क्या बात चल रही यहाँ और क्यों अनशन घोषित किया गया
इस पर न ध्यान तुम दोनों के द्वारा थोड़ा भी दिया गया॥"
१८५७ यह सुन, माण्डवी स्वभर्ता से बोली कि "देव! सुनलें कारण।
क्यों मैंने घोषित किया कि मैं अनशन लूँ, करूँ न अन्नग्रहण॥"

(दोहा)–कह डाला विस्तार से, पति के प्रति सब हाल।
सुनती थी श्रुतिकीर्ति भी, तथा सुमित्रालाल॥२४९॥
उत्तर में बोले भरत–"मैं दूँ एक सुझाव।
मामा जी के पढ़ रहा हूँ भीतर के भाव॥२५०॥

१८५८ इसलिये कह सकूँ प्रतीति से ऐसा कि ग्लानि है इनको भी।
अपने कहने पर पछतावा हो रहा वस्तुतः भीतर ही॥
१८५९ पर, क्षमा माँगने को तुम जो कहती हो सो तो अनुचित है।
पति का महत्व भी तो सोचो, क्या किसी भाँति यह समुचित है??
१८५० नारी-गौरव की बात ठीक पर नर-गौरव भी न्यून कहाँ?
भर्ता भार्या जब सहचर हैं तब उठते ही ये प्रश्न कहाँ??

१८६१ पति–पत्नि का जो विरल प्रणय होता हैं उसमें कब विकार-
ला सकते हैं ये गौरवादि वाले आहंकारिक विचार ??
१८६२ मामीजो के शब्दों पर से उर भाव ज्यों न जँच सकते हैं-
मामाजी पर भी वचनों से त्यों दोष नहीं लग सकते हैं॥
१८६३ इनमें उनके प्रति कोई भी दुर्भाव नहीं पाया जाता।
उनमें भी इनके प्रति न उपेक्षा–प्रश्न ही कभी उठ पाता॥
१८६४ इतने पर भी, जो भ्रान्ति बढ़ी इनके वचनों के ही कारण।
उसका इस मेरे सुझाव से हो सकता पूरा निराकरण॥
१८६५ मामाजी खेद प्रकाश करें, बस इतना होना ही काफी।
पति–पत्नी में इससे बढ़कर हो सकती क्या कोई माफी ??
१८६६ निःसंशय ही, मामीजी भी कर सकतीं यह न पसंद कभी-
'मामा जी हाथ जोड़ उनसे बन लें सुविनीत क्षमाप्रार्थी !!'
१८६७ सुन खेदप्रकाशन, उनका सब अनमना–भाव मिट जाएगा।
जो प्रणय–सूर्य पर भ्रमवारिद आया है सो हट जायेगा॥"
१८६८ शत्रुघ्न और श्रुतिकीर्ति झेंपते-से बोले कि " स्वमत दें हम-
यह सुझाव है सब प्रकार से प्रामाणिक एवं अत्युत्तम॥"
१८६९ बोली माण्डवी कि "हे स्वामिन्! मैं तव सुझाव को आज्ञा ही-
मानकर पालने हित उद्यत, ननुनच है मुझे न थोड़ा भी॥
१८७० यदि युक्त उक्ति हो तो मानूँ चाहे बालक हीं क्यों न कहे॥□
फिर तुम तो मेरे भर्ता हो, भार्या आज्ञा में क्यों न रहे ??"
(दोहे –सुखदा से आग्रह, उधर, करता रहा अशोक।
"माताजी! क्यों रखा है अतिथिगणों को रोक ??॥२५१॥
उनके सँग भोजन करूँ, यह मेरी है चाह।
भूख मुझे है लग रही, क्या न तुम्हें पर्वाह ??" ॥२५२॥
१८७१ वह माता, उस बेटे से यों बोली कि "भला क्यों रोकूँ मैं!
वे तो चारों ही श्रान्ति मिटाने को, दोनों कोष्ठों में हैं॥

□ " बालादपि ग्रहीतव्यं युक्तमुक्तं मनीषिभिः " यह संस्कृत की एक प्रसिद्ध सूक्ति है। (" ओ. प्रे. ")

१८७२ तुम जाकर उन्हें बुला लाओ, फिर भोजन उनके संग करो।
यदि बहुत भूख है तुम्हें लगी तो जाओ, अब न विलंब करो ॥"

(दोहे) बालक, कोष्ठों में गया पर वे पाये रिक्त।
कुछ भी था सामान के नहीं वहाँ अतिरिक्त ॥२५३॥
पुनरपि वापिस आगया होकर बहुत उदास।
आकर बोला वचन ये निज माता के पास ॥२५४॥
" वन अदृश्य, शायद करें चारों ही विश्राम।
रीते मुझको तो दिखे उभय कोष्ठ अभिराम " ॥२५५॥

१८७३ यह कह अशोक जब चला गया तब सुखदा स्वयं गई लखने।
उसको भी कोई नहीं मिला, तो चिन्तित लगी बहुत दिखने ॥
१८७४ पति के प्रकोष्ठ की ओर बढ़ी पर सोच रही थी यों मन में–
'कैसे हो संधि तथा मिटले जो मन मुटाव मुझमें उनमें" ॥
१८७५ थी, है, न रहेगी कभी उपेक्षा उनके प्रति मुझ में बिल्कुल।
पर वचनों में त्रुटि रहने से दिखला न सकी में अपना दिल ॥
१८७६ इससे उनको जो दुःख हुआ, सब दोष मुझी पर है उसका।
अब जाते ही इसलिये मुझे मांगनी चाहिये तुरत क्षमा ॥'
१८७७ पति इधर सोचते थे कि ' बहू माण्डवी कह रही गलत नहीं।
सुखदा के प्रति अन्याय किया मैंने जो बातें बुरी कहीं ॥
१८७८ सबसे पहले जब आएगी तब खेद–प्रकाश करूँगा मैं।
यह मुझे आत्मविश्वास कि यों उसका सब क्लेश हरूँगा मैं ' ॥
१८७९ सोचते–सोचते ही देखा द्वार की ओर ' तो सम्मुख हो–
सुखदा आती दिख पड़ी, एक टक लखती पति की तरफ रही ॥
१८८० "कीजिये क्षमा हे देव !" तथा "हे प्रिये ! करुँ मैं खेद प्रकट"।
प्रायः सँग सँगही पत्नी, पति, बोले ये वाक्य तभी झटपट ॥
१८८१ संकेत, माण्डवी ने, अपने भर्ता को दिया कि 'अपन चलें।
कोई भी अन्य रहे न यहाँ जब ये बुजुर्ग दम्पती मिलें ॥'
१८८२ इस पर माण्डवी भरत, दोनों चुपचाप निकल आये बाहर।
शत्रुघ्न और श्रुति कीर्ति चले उनके पीछे, न रहे अन्दर ॥
१८८३ मामाजी एवं मामीजी, दोनों को तनिक न हुआ भान–
(कब चले गये चारों, इस पर दे पाते कैसे, भला, ध्यान ॥

१८८४ क्या बातें उन पति पत्नी में होकर कैसे मन–मैल धुला !
यह रहस्य किसी भाँति भी तो फिर कभी किसी पर नहीं खुला!!
१८८५ निज उभय कोष्ठ में भरतादिक चारों ही पुनरपि चले गये।
उनकी बातों के विषय रहे परिवर्तित होते नये-नये ॥
१८८६ भूखा' बालक बनकर उदास, अध्ययन–कक्ष मैं पुनः गया।
नृपवर हँसकर बोले कि "वत्स ! लाये अब क्या संवाद नया !!"
१८८७ पर उत्तर में इस बार लगा रोने, वह छोटा–सा अशोक।
फिर हिचकी ले-ले कर बोला-"कब तक सकता हूँ भूख रोक"॥
(दोहा) विस्तृत विवरण दे, कहा–" बाबा ! चलिये साथ।"
और ख़ींचने भी लगा वह नृपवर का हाथ ॥२५६॥
१८८८ स्वाध्याय रहा था कुछ प्रशेष, फिर भी बच्चे के आग्रह को-
भूखापन देख, न टाल सके, बोले, "चलता हूँ अभी, चलो॥"
१८८९ आगे अशोक, पीछे भूपति, ये दोनों भीतर पहुँचे जब।
हँसते-हँसते स्वकक्ष से आते दिखे युधाजित्-सुखदा तब ॥
१८९० पड़ते ही दृष्टि नृपतिवर पर, दोनों के दोनों सहम गये।
हँसना कर दिया तुरन्त बन्द, मग में ही थोड़े ठिठक गये॥
१८९१ राजा समीप आकर बोले-"क्यों बहू ! विलम्ब किया इतना ?
यह बेचारा भूखा अशोक, देखो तो खिन्न बना कितना !!
१८९२ भाइयों भाभियों के सँग-सँग भोजन करने को रुका हुआ।
वे इसे मिल सके नहीं किन्तु इस पर तुमने भी कुछ न कहा॥
१८९३ तब मेरे समीप यह आया, अपने सँग मुझको है लाया।
मैंने भी निश्चय किया कि खाना साथ-साथ जावे खाया॥
१८९४ भोजन मेरे कक्ष में आज मत भेजो बल्कि यहीं सत्वर–
करलो सुव्यवस्था खाने की, धारो करुणा इस बालक पर॥
१८९५ तुम अभी युधाजित् ! दोनों ही कक्षों से चारों को लेकर–
भोजनशाला में आ जाओ, मत देर लगाओ अब प्रियवर !!"
१८९६ दोनों आदेशों को तुरन्त माना पत्नी एवं पति ने।
आसन अपना ले लिया स्वतः भोजनशाला में भूपति ने॥
१८९७ उनके ही पास पौत्र प्यारा बैठा निज छोटे आसन पर।
(था बार-बार ही रहा मुग्ध वह नृपवर के अनुशासन पर)

(दोहा)—थोड़ी—सी ही देर में आये सव अविलम्ब ।
भोजन—सुकार्य का हुआ प्रेमपूर्ण प्रारम्भ ॥२५७॥

१८९८ आधा आधा खा चुके सभी तब तक हरेक ही रहा मौन ।
(शायद सब यही सोचते थे, क्या बात करे प्रारम्भ कौन ??)

१८९९ सहसा श्रुतिकीर्ति कह चली यों-"अधिकांश आज का तो भोजन—
रहता व्यर्थ ही कि यदि करते हम तीन व्यक्ति धारण, अनशन"॥

१९०० भूपति की पृच्छा पर विवरण पूरा ही उसने उन्हें दिया ।
बोली अन्त में कि "इस घटनाक्रम ने ही अहो विलंब किया"॥

१९०१ तब कैकयपति ने कहा कि "है सब श्रेय मांडवी को इसका ।
आत्मिक संस्तर मुझको दिखता सचमुच अतिशय ऊंचा जिसका ॥

१९०२ फिर कहा माण्डवी से कि "तुम्हें दौहित्रवधू अपनी लखकर—
मैं करता हूँ गौरव- अनुभव, तव चेतन में गुरुत्व शिवतर ॥

१९०३ अति प्रसन्न होकर कहता हूँ- जो कुछ चाहो सो मुझसे तुम—
लो माँग, क्योंकि यह प्रथम कार्य है तुमने यहाँ किया अनुपम ॥

१९०४ बोली माण्डवी कि "हे भगवन् ! सत्कृपा आपकी है मुझपर ।
यह सर्वोपरि वरदान मानती हूँ, क्या हो इससे बढ़कर ??

१९०५ फिर भी, यदि आप चाहते हैं कुछ देना ही, प्रमुदित होकर—
तो अपना समय मुझे कृपया प्रतिदिन थोड़ा दें, पूज्य प्रवर !!

१९०६ जिसका मैं सदुपयोग करके आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक ।
शंकाएँ धर श्री सेवा में, उत्तर भो पाऊँ प्रामाणिक ॥

१९०७ सत्कीर्ति, आपके सुज्ञान की, जो दिग्दिगन्त में है छाई ।
जब रही कुमारी तबसे ही गुरुवर द्वारा सुनती आई ॥

१९०८ मामाजी एवं मामीजी, मनमुटाव करके, यह अवसर—
लाये कि मुझे मिल पायगा अब दिव्य ज्ञान का उत्तम वर ॥

१९०९ इन दोनों को भी धन्यवाद पर करें न ऐसा बार बार ।
कोइ भी स्नेह भावना पर क्यों करे वचन के कटु प्रहार ??"

(दोहे)—नृप ने कहा कि "धन्य तुम, धन्य तुम्हारी चाह ।
आहा, यह संस्तुत्य है, ज्ञानांर्जन—उत्सांह ॥२५८॥

"तथास्तु" भी कह नृपति ने दिया उसे वरदान।
किया माण्डवी ने तुरत, हाथ जोड़ सम्मान ॥२५९॥

शंका-समाधान (अठारहवाँ प्रकरण)

१९१० दूजे दिन से ही 'नृपति अश्वपति' ने ऐसा क्रम बना दिया।
जिससे माण्डवी क्रियान्विति उसकी करे कि जो वरदान लिया॥
१९११ स्वाध्याय-कार्य के तुरत बाद घण्टे भर का था रखा समय।
जिसमें आधा घन्टा प्रवचन, आधे में हों प्रस्तुत, संशय॥
१९१२ यह क्रम दौहित्रवधू को भी आया पसन्द, फिर तदनुसार-
प्रतिदिन वह जाने लगी श्रवण करने को नृप के सद्विचार॥
१९१३ क्रम लगातार यह चला नियमपूर्वक सुचारूता से तब तक-
वह भरतप्रिया माण्डवी रही उस नगर (राजगृह) में जब तक॥
१९१४ कितने ही विषयों पर प्रवचन इस बीच सुने उस देवी ने।
कितनी ही शँकाएँ करके पाये उत्तर सन्नारी ने॥
१९१५ [वे सब प्रवचन एवं सारी शंकाओं के सब समाधान-
वर्णित करना है शक्य नहीं, (विस्तार-भीति, करण प्रधान)॥
१९१६ यद्यपि महत्व सब में ही था हम तथापि दो का ही अंकन-
करते हैं यहाँ कि जो बनलें अनुमान हेतु उत्तम साधन॥]
(दोहे) प्रथम दिवस ही जो दिया प्रवचन अमृतरूप।
किस प्रकार के थे भरे उसमें भाव अनूप॥२६०॥
(थोड़े-से में हम यहाँ रखते उसका सार।
युगयुग के बुध नारिनर जिस पर करें विचार) ॥२६१॥
१९१७ नृप ने यों कहा माण्डवी से—"बेटी ! सबसे पहले जानो-
मेरे प्रिय वेदमन्त्र को तुम, उसका महत्व भी पहचानो॥
१९१८ 'तेजोऽसि' प्रतीकयुक्त पावन वह यजुर्वेद का मंत्र, अहा।
जो मुझको तो आजीवन ही सर्वाधिक रुचता नित्य रहा॥

१९१९ उन्नीस अनुक्रम वाला जो अध्याय, उसी में नवां इसे-
-पाओ, पर शुभा साधना बिन, दे सके, भला, यह सुफल किसे??+
१९२० 'तेजो मयिधेहि' प्रार्थना जब 'तेजोऽसि' वचन के बाद करे-
तब यह भी लखे कि जीवन में कितने तेजस्वी भाव भरे !!
१९२१ जो करे 'कार' उस पर ही प्रभु परमेश्वर भी 'उपकार' करें।
कुछ किये बिना केवल प्रार्थी बनने पर वे न सहाय करें ॥ ×
१९२२ 'तेजः स्वरूप हैं' आप विभो ! तेजोमयता मुझ में भर दो।'
ऐसा वह कह पावे जो शुचि तेजः साधक नारीनर हो ॥
१९२३ हे भगवन्!आप 'वीर्यमसि' या वीरत्वयुक्त हैं सर्वोत्तम।
'वीर्य्यम्मयिधेहि' प्रार्थना मैं आपसे करूँ, हे वीरोत्तम !!
१९२४ अर्थात् वीरता का मुझमें आधान आप करदें कृपया।
मैं सुवीरत्व के हेतु यत्न करके मांगू आपकी दया ॥'
१९२५ कह पावे यह भी मनुज वही जो सच्चा वीर-भाव धारे।
कायरता को निज गतिमति से रख दूर उसे नित धिक्कारे ॥
१९२६ फिर, 'बलमसि' अथवा बलनिधान हैं आप 'बलंमयि धेहि'प्रभो !
या, मुझमें बलभरिये प्रविनय सत्क्रियासहित यह करूँ, विभो !!
१९२७ यह विनय, ईश से करने के हों वे ही असली अधिकारी।
जो सब प्रकार से हों भरसक बल के सत्साधक नरनारी ॥
१९२८ 'ओजोऽस्योजो मयिधेहि' वचन वे ही कर पावें उच्चारण-
ओजस् किंवा सु-पराक्रम को जो यथाशक्ति करले धारण ॥

+ विचित्र संयोग है कि हमारे १९१९ वें प्रियछंद पर ही अकस्मात् अनायास यह १९१९ अनुक्रम वाला यजुर्वेदीय मंत्र आया है। पते सहित पूरा मंत्र यों है- " ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयिधेहि वीर्यमसि वीर्य्यम्मयिधेहि, बलमसि बलम्मयिधेहि, ओजोऽस्यो जोमयिधेहि, सहोऽसि सहो मयिधेहि ।। " (यजु अ. १९ मन्त्र नवम् ।) "ओ.प्रे."

× अपनी एक गेया पद्यरचना में हमने यों लिखा था-" याचना से पूर्व, करलें श्रम यथा-सामर्थ्य हम । तब दया का हाथ करुणानाथ भी हम पर धरें ॥ निज ओ३म की हम प्रार्थना, आओ करें। स्नेह- -सागर में डुबोकर देह-गागर को भर ॥ (ओ. प्रे.)

१९२९ अर्थात् प्रभो ! ओजः स्वरूप ! मुझमें भी ओजस्विता भरें।
यह शुभा याचना करने के सँग ही विक्रमी क्यों न बनलें॥
(दोहे) कहा मन्त्र में 'मन्युरसि' अथवा मन्युनिधान–
आप हैं विभो ! (यह दिया परमभव्य अभिधान॥)॥२६२
फ़िर 'मन्युम्मयिधेहि' से प्रभु देते यह ज्ञान -
माँगो मुझसे 'मन्यु' तुम, भाव तत्वतः जान ॥२६३॥★
१९३० व्यक्तिशः कहे प्रत्येक यही 'मुझमें आधान, मन्यु का हो।
जगदीश्वर मन्यु स्वरूप ! आपकी मुझ पर पूर्ण सत्कृपा हो॥
१९३१ अर्थात् क्रोध मुझमें दुष्टों पर धारित कराइये भगवन् !
मुझको सुकोप संयुत रखिये, बचलूँ कुक्रोध से हे मघवन् !!
१९३२ पूरे मन्त्र में यही मुझको लगता सुवाक्य सबसे उत्तम।
कोरा याचक मैं नहीं रहा प्रत्युत इस ओर किया भी श्रम॥
१९३३ मुझसे जितना कुछ हो पाया उतना मैंने सोत्साह किया।
इस वेदवाक्य ने सदा मुझे पूरा पक्का प्रोत्साह दिया॥
१९३४ प्रभु का साहाय्य प्रभूत मिला जिससे साफल्य सुप्राप्त हुआ।
मम प्रजा इसीसे तो मुझको देती रहती है नित्य दुआ॥
१९३५ 'मन्युम्मयिधेहि' याचना मैं विधिपूर्वक हूँ करता आया।
बस, इसीलिये ओंकार महा प्रभु से मैंने सब कुछ पाया॥
१९३६ है मुझे नम्र गौरव कि घोषणा वह ऐसी कर भाया हूँ–
जिसके द्वारा सारे जग के वेदज्ञों को मैं भाया हूँ॥
१९३७ अर्थात् 'चोर मम जनपद में कोई है कहीं नहीं बिल्कुल।
एवं कदर्य, मद्यप, दुष्टात्मा किये नष्ट, करके व्याकुल॥
१९३८ ऐसा भी कोई नहीं कि जो प्रतिदिन पांचों ही महायज्ञ–
हो करता नहीं, प्रमादी बन, वैसे ही मिले न कहीं अज्ञ॥
१९३९ व्यभिचारी नर ही नहीं, भला फिर व्यभिचारिणी कहां नारी?
सुप्रजा कहलाने के हैं सब नारीनर पूरे अधिकारी॥

★ स्वरचित एक गायन की हमारी ये पंक्तियां प्रासगिक होने से यहां देते हैं– "तेजोमयिधेहि" माँगने के सँग मँग पुरुषार्थी बनते हैं। 'सहोमयिधेहि' याचना के सँग ही दुरितों से लड़ते हैं॥ जो कर्मनिष्ठ याचक होते उन पर बनते भगवान् सदय॥" ("ओ. प्रे.")

१९४० जिन वेदज्ञों के समक्ष यह मैंने घोषणा बड़ी की थी–
उन सबने इक स्वर से मुझको मंगलाश्वस्ति ऐसी दी थी–
१९४१ 'हे राजन् ! युगयुग तक अवश्य गुंजिता रहेगी यह वाणी–
आनेवाली पीढ़ियाँ प्रेरणा इससे लेंगी कल्याणी ॥'
१९४२ अन्य भी, प्रशंसापरक बहुत कुछ कथन किया था, पर उसका–
अपने मुँह से वर्णन करना, मुझको न तनिक भी है रुचता ॥
१९४३ हां, तो वह बड़ी घोषणा मैं कर पाया केवल इस कारण–
'मन्युम्मयिधेहि' प्रार्थना के सँगसँग श्रम किया असाधारण ॥
१९४४ दुष्टों पर सुमन्यु प्रकटाया वा सात्विक रोष किया उन पर।
अब भी करता हूँ वैसा ही, यदि आ जावे कोई अवसर॥
१९४५ प्रत्येक पुरुष महिला को यह चाहिये कि मन्यु करे धारण।
दुरितों का भीतर बाहर से, मेरे सम, करे पूर्ण वारण ॥
१९४६ अन्तिम जो वाक्य 'सहोऽसि सहो मयि धेहि' मंत्र में है पावन–
उसमें है क्षमाशीलता का सन्देश, बड़ा ही मन-भावन ॥
१९४७ धृति, क्षमा, धर्म के जो पहले दूजे लक्षण बतलाये हैं –
मनुमहर्षिवर ने जिन्हें मथित सिद्धान्तरूप में गाये हैं ॥ ●
१९४८ उन दोनों का हो जाता है इस एक शब्द में समावेश।
जिसका प्रभुवर की वाणी में कह 'सहः' शब्द में समादेश ॥
१९४९ 'वीरस्य भूषणं क्षमा' सूक्ति, इसका अच्छा व्याख्यान, अहो।
वस्तुतः शिवा शक्ति के बिना, सहने का तनिक महत्व न हो ॥

(दोहा) 'निराकार शिवः आप हैं अनन्त सहःस्वरूप।'
'सहोऽसि' में शुचि भाव यह, भरा सुदिव्य अनूप ॥२६४॥
दिया 'सहो मयि धेहि' जो कहने का निदेश।
सहनशक्ति की मांग का, है उसमें सन्देश। २६५॥

१९५० अर्थात् 'हे सहनरूप विभो ! मुझमें भी धारण कराइये।
सामर्थ्य, सहन करने का अथवा सुवीरता से सजाइये ॥

● "धृति, क्षमा, दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥" (मनुस्मृति) ['ओ. प्रे.']

१९५१ शब्दार्थ मनन करके फिर मैं इसका ही करूँ निदिध्यासन।
तब होता है इस प्रकार के भावार्थ–युक्त मेरा चेतन॥
१९५२ यानी, तन-इन्द्रिय-मन-चेतन; चारों के ही तेजादि सुगुण–
मुझमें से कदापि दूर न हों, मैं सदा करूँ इनको धारण॥
१९५३ जिससे की आपकी भक्ति या कि वेदाज्ञापालन का सुस्थिर–
कर सकूँ निरन्तर अनुष्ठान, हे ओंकारेश्वर! हे विभुवर!!
१९५४ एवं आपके अनुग्रह से जग में नित्य ही सुखी रहलूँ।
यदि उपाय कोई पूछे तो निज उदाहरण देकर कहदूँ॥
१९५५ यों मनन और निदिध्यासन से होता मुझ में साक्षात्कार।□
उस परमाशय का जो कि भरा इस भव्य मंत्र में बहुप्रकार॥
१९५६ बिन भूले, इसका पारायण मैं उपर्युक्त विधि से करता।
फलतः परमेश्वर भी मुझमें, साक्षात्कार का सुख भरता॥
१९५७ प्रेरित करता हूँ तुमको भी, इसका नित सक्रिय पारायण–
करती रह लो जिससे रीझें तुम पर भी सु–सत्यनारायण॥
१९५८ वे हो ओङ्कार परमप्रभु जो गुणकर्मस्वभाव अनन्त रखें।
इस कारण हो वेदों तक में जिनके शुभ नाम अनन्त दिखें॥
१९५९ कल, जब तुम सब आये थे तब जो ऋचा सामने थी मेरे–
उसमें बतलाया है कि 'तमीळा भरतम्' सो कितना प्रेरे!!
१९६० इस बारे में तब गुरुवर ने कह दिया बहुतकुछ पहले ही।
जैसा कि तुम्हारी अनुजा ने कल प्रकट किया था आते ही॥
१९६१ सो कहूँ अधिक मैं नहीं; बल्कि आधा घण्टा भी पूर्ण हुआ।
क्या नहीं समय–मापक सुयंत्र की सुइयों पर है ध्यान दिया॥
१९६२ (माङ्गो विजिज्ञासिता–सो बन, प्रवचन सुनने में लगी रही।
इसलिये घड़ी की ओर नहीं सचमुच थी उसकी दृष्टि गई॥)
१९६३ नृपवर के ऐसा कहने पर देखा सुयन्त्र उसने ज्योंही–
कर उठी प्रशंसा मन ही मन, इन ज्ञानिप्रवर की वह त्योंही॥

□ श्रवण, मनन, निदिध्यासन एवं साक्षात्कार– इसी को "श्रवण चतुष्टय" आप्तों ने कहा है। 'श्रवण' के स्थान पर आवश्यकतानुसार 'पठन' भी रखा जा सकता है, यह हमारी राय है। ("ओ. प्रे.")

१९६४ 'आहा', कितना है ध्यान इन्हें प्रतिपल का; इतना तो न कहीं—
देखा या सुना अभी तक भी, विज्ञों तक में यह बोध नहीं ॥'
१९६५ निश्चय कर लिया माण्डवी ने– 'भरतम्' वाले मंत्र के संग–
'मन्युम्मयिधेहि' सूक्तिसंयुत यह मंत्र भी जपूँ रख उमंग ॥
१९६६ इसके अतिरिक्त, समय-पालन करने पर भी कुछ अधिक ध्यान–
आज से निरंतर दूंगी मैं, जो लख उदाहरण, लिया ज्ञान ॥
१९६७ तब तक ही बोले भूप कि "अब तुम करो प्रश्न, मैं दूं उत्तर।
हैं वेदों में भी दिए हुए, संकेतरूप शुचि प्रश्नोत्तर ॥
१९६८ पर, इसके पहले, एक बात मैं कहना अधिक चाहता हूँ—
'प्रवचन सुनने की तव सुरीति, उर से अतिशय सराहता हूँ ॥
१९६९ कल प्रसन्न होकर दिया एक वरदान तुम्हें मैंने जैसे—
इस पर से भी प्रमुदित होकर दूजा देना चाहूँ वैसे ॥
१९७० बतलाओ, क्या है अभिलाषा जिसको वर देकर पूर्ण करूँ।
अपनी चिति में भी जिससे मैं, सच समझो, अपूर्व हर्ष भरूँ॥"
१९७१ माण्डवी लगी कहने कि "मुझे हाथ पर बांधने योग्य घड़ी।
दें आप आज ही, तो होगी वरदानरूप में कृपा बड़ी॥"
१९७२ यह सुन 'तथास्तु' कहकर नृपवर बोले कि "मांग है अत्युत्तम।
विश्वास मुझे पूरा कि तुम्हें देगा सु लाभ यह प्रवचन-क्रम"॥
(दोहे) तुरन्त घण्टी बजाकर अनुचर लिया पुकार।
मँगवाई उत्तम घड़ी, देने को उपहार ॥२६६॥
तब तक पूछी माण्डवी देवी ने यह बात–
(जिसे उत्तरित कर चले भूपति श्रुनिष्णात) ॥२६७॥
१९७३ बोली कि "आपने वेदों का, भगवन्! सुश्रेष्ठ स्वाध्याय किया।
प्रवचन सुन, इसका पता मुझे चल चुका अभी है पूर्णतया ॥
१९७४ इसलिए आप से यह पूछूं– वेदों में कितने मुख्य विषय।
उनमें जो हों विशेषताएँ, थोड़ा उनका भी दें परिचय ॥"
१९७५ उत्तर में कहा 'अश्वपति' ने "हे मेधाविनी वधू! तुमने--
इस एक प्रश्न द्वारा सब कुछ है पूछ लिया, सो धन्य तुम्हें ॥
१९७६ जैसे प्रवचन सुनने की विधि अति प्रशंसनीय तुम्हारी है।
वैसे ही, प्रश्न पूछने की तुममें सुयोग्यता भारी है॥

१९७७ मैंने विद्यालंकृता कई देखी हैं, पर तुम जैसी तो—
कोई न सुनी तक भी महिला जिसमें इतनी कुशाग्रमति हो॥
१९७८ इस पर प्रसन्न होकर मैं यह कोरी पुस्तिका तुम्हें देता।
इसके सँग ही मसिनिर्झरिणी देकर हूँ चिति में सुख लेता॥
१९७९ संस्मृतियां अन्य समय में तुम, इन प्रश्नोत्तर की, लिखा करो।
पुस्तिका तथा मसि-निर्झरिणी सुप्रयुक्त उसी में किया करो॥"
१९८० बोली माण्डवी कि "बड़ी कृपा की है, ये पदार्थ-द्वय देकर—
श्रद्धेय! आपने वहुत बड़ा उपकार किया, सचमुच, मुझपर॥
१९८१ केवल प्रश्नोत्तर की ही क्यों, मैं प्रवचन की संस्मृतियाँ भी-
प्रतिदिन इसमें अंकित करती रहकर आपको बताऊँगी॥"
१९८२ यह सुनकर नृपवर के मुंह से निकली उसके प्रति 'वाह वाह'।
(जिससे बढ़ गया माण्डवी की चिति का आध्यात्मिक समुत्साह॥)
१९८३ तदनन्तर लगे अश्वपति जी देने सुप्रश्न का यों उत्तर-
(अद्‌भुत सुदिव्यता अनायास अपने आनन पर धारण कर॥)
१९८४ वेदों में अवयवरूप विषय तो हैं अनेक, पर उनमें से-
केवल हैं मुख्य चार, पहला 'विज्ञान' विषय है जिनमें से॥
१९८५ अर्थात् समस्त पदार्थों को जानना यथार्थतः इसी की—
संज्ञा, 'विज्ञान' आर्ष ग्रंथों द्वारा आप्तों ने दे दी॥
१९८६ दूसरा विषय है 'कर्म' तीसरा 'उपासना' है, यह जानो।
चौथा है 'ज्ञान' इन सभी की महिमा को सुनकर पहचानो॥
१९८७ पहला जो है 'विज्ञान' वही इन चारों में है प्रधान भी।
इसके महत्व को जान सकें वर विवेकयुत नारीनर ही॥
१९८८ अविवेकी तो इसको सदैव रखते हैं पूर्ण उपेक्षित ही।
ऐसा करने का मिलता है निःसंशय उनको दुष्फल भी॥"
१९८९ माण्डवी बीच में बोल उठीं—"भगवन्! विस्तारसहित कहिये।
सँक्षिप्तरूप में ही कहकर कृपया मत आप मौन गहिये॥"
१९९० सस्मित होकर नृपवर बोले—"अब तो पूरा हो गया समय।
कल पुनः विवेचन कर पाऊँ, काल का आज क्यों हो व्यत्यय॥"
१९९१ अभिवादन करके नृपवर को, माण्डवी कक्ष में लौटी जब-
प्रपाठ भर्ता को वहीं अध्ययन-लीन पूर्णतः उसने तब॥

१९९२ आहट पाकर वे चौंक उठे, फिर बोले, करके ग्रंथ बन्द।
(बोलते समय मुस्काते भी जाते थे कुछ कुछ मन्द मन्द ॥)
१९९३ यों कहा कि "देवी जी ! तुम तो सहचर को भूलीं पूर्णतया।
मेरे नाना जी से तुमने कल एकाकी सब श्रेय लिया !!
१९९४ मेरा ही था यद्यपि सुझाव, तुम सफल हुईं जिसके कारण।
एवं वरदान लिया जिस पर शुभ, उत्तम, विरल, असाधारण॥
१९९५ है तथापि मेरा भी उसमें भाग तो, इसे विसराया क्यों !
अर्द्धांग रहे वंचित, ऐसा अन्याय तुम्हें मन–भाया क्यों ??
१९९६ सहचर को जो विस्मृत करदे, सहचरी उसे कैसे मानें ?
उर के भावों को तो केवल व्यवहारों द्वारा ही जानें ॥"
१९९७ उत्तर में कहा माण्डवी ने-"हे देव ! तुम्हें भी क्या वैसा–
भ्रम हुआ कि तव मामाजी को बेढंगा उपजा था जैसा ??
१९९८ यदि ऐसा हो तो स्मरण रखो, मेरे प्रति खेद–प्रकाश तुम्हें–
करना होगा वैसे, जैसे कल था करना पड़ गया उन्हें ॥"
१९९९ तत्काल भरत बोले कि "क्षमा तुमको भी तो माँगनी पड़े।
अतिशय रहस्यमय प्रकार से फिर मिटगाए सारे झगड़े ॥"

(दोहे) इस पर दोनों हँस पड़े– मिले नैन से नैन।
(उस भाषा के सामने, क्या बेचारे बैन ??) ॥२६८॥
नैनों से बातें हुईं उनमें काफी देर।
फिर बैनों को कहीं से पत्नी लाई घेर ॥२६९॥

२००० माण्डवी लगी कहने कि "तुम्हें कैसे मैं स्वामिन् ! भुला सकूँ ?
तुमभी न भुला सकते मुझको-यह प्रतीति चिति में पूर्ण रखूँ ॥
२००१ हम दोनों, प्रणयसूत्र में रह आबद्ध, परस्पर पूरक हैं।
गार्हस्थ्यधर्म के, मिले जुले यत्नों द्वारा, सत्साधक हैं॥
२००२ इसलिये उपेक्षा या विस्मृति होने की आशंका तक भी–
भर्त्ता भार्या के मध्य हो नहीं सकती किसी प्रकार कभी ॥
२००३ लो, सुनो, आज ही जब मुझको नानाजी ने प्रसन्न होकर–
कोरी पुस्तिका और मसि-झंरिणी प्रदान की, यह कहकर–

२००४ हे शुभे ! लिखा करना इसमें, इससे तुम प्रश्नोत्तर सब वे-
जो अपने बीच नित्य होंगे, रहलेंगे विविध विषय जिन के ॥
२००५ इस पर मैंने यों कहा कि 'हे भगवन् ! जो सुनती हूँ प्रवचन-
उनका भी किया करूँगी मैं प्रतिदिन इसमें ही लेखांकन ॥
२००६ फिर बतलाकर आपको, अपेक्षित सुधार के निर्देशन भी-
आपसे प्राप्त करती रहलूँ, यों प्रामाणिक वे बने सभी ॥'
२००७ हो गया निवेदन मान्य, करूँ प्रारम्भ आज ही मैं वह क्रम।
पर, नानाजी से क्या कहती, ध्यान में रहे तब तुम प्रियतम !!
२००८ सोचा मैंने कि "देव मेरे वंचित रहलें क्यों प्रवचन से ?
यह कहाँ उचित, इसलिये लाभ पहुँचाऊँगी इस साधन से ॥"
२००९ इतने में ही शत्रुघ्न तथा श्रुतिकीर्ति उभय आगये वहाँ।
(कक्ष का द्वार था खुला हुआ, सो गोपनीयता रही कहाँ ??)
२०१० आते ही अनुजा बोल उठी—"दीदो ! मैं भी वंचित न रहूँ।
है जीजाजी के बाद मुझे अधिकार, भले ही नहीं कहूँ ॥"
२०११ शत्रुघ्न लगे कहने कि "मुझे चाहे तीसरा मिले नम्बर।
पर, भाभी मैं भी वंचित क्यों रहलूँ, क्या न हो कृपा मुझपर ??"
२०१२ तब तक मामाजी भी सहसा आ गये और यों कहे वचन—
"मेरे ही पूज्य पिताश्री के मैं ही क्यों रख न सकूँ प्रवचन ??
२०१३ मैंने प्रमाद करके न लिखे उनके अनेक प्रवचन उत्तम।
जो विद्वन्मण्डल में अबतक हैं दिये उन्होंने शुचि अनुपम ॥
२०१४ माण्डवी वधु की वह संस्मृति-पुस्तिका महत्वमयी होगी।
जिसमें प्रश्नोत्तर तथा सदुपदेशों की शुभा छटा होगी ॥"
२०१५ श्रुतिकीर्ति पूछ बैठी कि "शक्य कैसे इतनी प्रतियाँ होना ?
हाथ से करेगा नकल कौन, है प्रमाद का ही तो रोना ॥"
२०१६ बोले मामाजी—"अहो बहू श्रुतिकीर्ति ! यहाँ वह भी साधन-
जिसके द्वारा हो एक साथ सौ सौ प्रतिलिपियों का अंकन ॥
२०१७ 'शतलेख-(सु) यन्त्र' है रखा जो, यह कठिनाई सुलझा देगा।
प्रतियाँ सबको मिल जायेंगी, वंचित कोई न रह सकेगा ॥

२०१८ थोड़ा प्रयत्न तो करना ही आवश्यक होगा, इस पर भी।
जिसकी शत्रुघ्न देव पर मैं हूँ डाल रहा जिम्मेदारी ॥
(दोहे) बोल उठे शत्रुघ्न तब यों कि "मुझे आदेश–
मामाजी का मान्य है, करूँ यथा–निर्देश ॥२७०॥
भाभीजी से है विनय–'प्रतिलिपि का अधिकार–
दें उन प्रवचन आदि पर जिससे हो सु प्रचार' ॥२७१॥
२०१९ बोली माण्डवी कि "आप सभी दें लिखने का तो अब अवसर।
अन्यथा नकल किसकी होगी, धृष्टता क्षमा हो पूज्यप्रवर !!"
२०२० इस पर तीनों (भरतातिरिक्त), चल पड़े वहाँ से उसी समय।
पतिपत्नी दोनों रहे वहाँ, पर वे भी तुरत हुए तन्मय ॥
२०२१ पति ने स्वाध्याय हेतु फिर से उस आर्षग्रन्थ को खोल लिया।
जिसको पत्नी की आहट पा, कुछ देर पूर्व था बन्द किया ॥
२०२२ पत्नी, लिखने में व्यस्त हुई संस्मृति, अमृतमय प्रवचन की।
सारी प्रवृत्ति हो गई उधर उसके गौरवमय चेतन की ॥

पक्का जिज्ञासुभाव (उन्नीसवाँ प्रकरण)

२०२३ आरंभिक आधे घण्टे में अगले दिन जो उपदेश दिया।
उसमें नृपवर ने 'अभय-भावना' का महत्वमय विषय लिया ॥
२०२४ 'अभयम् मित्रात्' प्रतीकयुक्त, शुचिमंत्र, अथर्व-संहिता का–●
शब्दार्थ और भावार्थ सहित, दौहित्र–वधू को समझाया ॥
२०२५ बस, इस प्रकार शुचि आध्यात्मिक तत्वों के बारे में प्रवचन–
करते थे आधे घण्टे तक, नृप श्रेष्ठ 'अश्वपति' जी प्रतिदिन ॥
२०२६ कम से कम एक मन्त्र का भी उस प्रसंग में ही सु–व्याख्यान–
करने का रखते थे अवश्य वे ज्ञानी राजा नित्य ध्यान ॥

● "अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्तामयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥"
(अथर्व० १९ / १५ / ६) [आगे]

२०२७ फिर पिछले आधे घण्टे में होता था शंकासमाधान।
(जिसके महत्व का हो सकता जिज्ञासु विज्ञ को सही ज्ञान॥)
(दोहे) रहा माण्डवी में यतः ज्ञानार्जन का चाव।
अतः नृपति में भी बढ़ा समाधान--सद्भाव ॥२७२॥
बीच बीच में प्रश्न वह करती रही अनेक।
उनके उत्तर वे रहे देते चट, सविवेक ॥२७३॥
२०२८ यों कहा अश्वपति ने कि "वेदविषयों की थी कल वात कही॥
उसकी विवेचना सुनने में रुचि, हे मनस्विनी ! तुम्हें रही॥
२०२९ पर, समय हो गया था पूरा इसलिये कल न सुन पाई थीं।
लो. उससे आगे की बातें अब तुमको बतलाई जातीं॥
२०३० जो वेदों के विषयों में से बतलाये मैंने मुख्य चार।
उनमें से भी 'विज्ञान' प्रथम, जिसको प्रधानता सब प्रकार॥
२०३१ 'विज्ञान' उसे कहते कि परम प्रभु अन्तर्यामी से ले के-
तृणतक सारे ही पदार्थ का साक्षात् बोध जो हो पावे॥×
२०३२ बोध ही न हो केवल, प्रत्युत उपयोग यथावत् भी उनसे-
लेना पूर्णतः विवेकयुक्त रहकर शुचि वेदविहित विधि से॥
२०३३ एवं कर्मोपासनाज्ञान--इन तीनों-- से ही सदुपयोग-
सर्वथा यथावत् ही लेना, करके इनका उत्तम प्रयोग॥
२०३४ 'विज्ञान' की यही परिभाषा होना शब्दों में सम्भव है।
इससे बढ़कर कुछ बतलाने वाला तो, बस, निजानुभव है॥
२०३५ परिणामतः द्विविध होता यह, अब जानो वे दोनों प्रकार।
(जिनकी व्याख्या के बजाय मैं थोड़े में कहता हूँ सु-सार॥)
२०३६ एक तो यथावत् परमेश्वर का ज्ञान, हृदय में ही, करना।
एवं उसकी वेदाज्ञा के पालन पर पूर्ण ध्यान धरना॥
२०३७ दूजा प्रकार है यह कि उसी के रचित जो सभी हैं पदार्थ-
उनके गुणगण का सदा यथावत् करना विचार, गह यथार्थ॥

× लिखा यह भी हमने ही है किन्तु आन्तरिक (अज्ञात की) प्रेरणा पर; हमारा विवेक कहता है कि 'तृण से लेके परम प्रभु तक' होना चाहिये था फिर भी परिवर्तन न करके [illegible] रहने दिया है। ["आ. प्र."]

२०३८ फिर उनसे वे सब कार्य सिद्ध करना जो वेदविहित, शुभ हों।
विज्ञानवान् मानव को तो सर्वथा हितावह सब कुछ हों॥
२०३९ इसकी सुप्राप्ति में पुरुष तथा महिला का भेद नहीं रहता।
सुविचारी मनुजमात्र इसको सदसद्विवेकपूर्वक गहता॥
२०४० इस प्रसंग में कह दूं कि भरत की दिवंगता दिव्या नानी—
ऐसी थीं जिनका वर चेतन बन सका यथोचित विज्ञानी॥
२०४१ दूजे प्रकार का (सु) विज्ञान गह पाई थीं श्रम-श्रद्धा से।
फिर निज इकलौती पुत्री को सिखलाया भी वह निष्ठा से॥
२०४२ निज एकमात्र सुत को जिसने बचपन से ही विज्ञानवान्—
बनने की सुप्रेरणा दी है फलतः तव पति अति बुद्धिमान्॥"
२०४३ माण्डवी पूछ बैठी कि "यथावत् विचार उन सब गुणगण का।
कैसे करना चाहिये? बोध हे भगवन्! थोड़ा दें इसका॥"
२०४४ गुरु तुल्य नृपति बोले कि "सोचना यह चाहिये सुपूर्णतया—
'प्रभु रचित पदार्थों का महत्व है अपने लिए, अहो कितना॥'
२०४५ 'ओंकार ने रचे जितने भी हैं पदार्थ, उतनें सबमें से —
हैं कौन कौन-से, किसकिस प्रमुख प्रयोजन को?' मनुष्य सोचे॥
२०४६ इसमें अनुभूति, सुसंग और स्वाध्याय, सहायक बन पावें।
इनसे, विचार के रुद्ध स्रोत निःसंशय पूरे खुल जावें॥
२०४७ हाँ, तो उन दोनों में से भी है प्रधान, प्रथम प्रकार वही—
जिसके अन्तर्गत ईश्वर के प्रतिपादनवाली बात कही॥"
२०४८ इस पर श्रोत्री ने वक्ता से पूछा कि "प्रमुख है पहला क्यों?
कृपया कहिये, प्रधानता के जो कुछ भी विशिष्ट कारण हों॥"
२०४९ इस जिज्ञासा पर प्रसन्न हो, यों लगे 'अश्वपति' जी कहने—
"माण्डवी वधू! यह प्रश्न अवान्तर किया बहुत अच्छा तुमने॥
२०५० लो, उत्तर सुनो कि वेदों का तात्पर्य, मुख्य है उसमें ही—
जो परमेश्वर-प्रतिपादन है, बस, प्रधान मानूं इससे ही॥
२०५१ मेरी मान्यता वेद-सम्मत, उपनिषद्-वचन से भी संगत।
पातंजल योग सूत्र एवं वेदान्त शास्त्र का भी यह मत॥
२०५२ वेदादि सत्य शास्त्रों का, यह पहला प्रकार है प्रमुख विषय।
इसलिए पूर्णतः प्रामाणिक मम उक्त वचन भी निःसंशय॥

२०५३ विभु प्रभुवर के उपदेश रूप वेदों से ही सब अनुष्ठान-
कर्मादि शेष तीनों काण्डों वाले हों, बस, यह (सु)–'विज्ञान'॥
२०५४ इसके द्वारा संसिद्धि प्राप्त करनी चाहिये पारमार्थिक।
एवं इससे ही सिद्ध करें शुचिमानव, सुफल, व्यावहारिक॥
(दोहे) मनुष्य–तन का है यही फल सर्वोत्तम एक।
'सदुपकार के हेतु हों कार्य सर्व स-विवेक' ॥२७४॥
अगर न कोई गह सके, उत्तम प्रमुख प्रकार –
तो दूजे से ही रखे सज्जित निज व्यवहार ॥२७५॥
दोनों में से एक का धारण है अनिवार्य।
उन्हें कि बनना चाहते जो नारीनर 'आर्य' ॥२७६॥
२०५५ जो मुख्य वेद विषयों में से है दूजा– 'कर्म', उसी का अव–
संक्षिप्त विवेचन यहाँ करूँ, सब कह सकना तो संभव कब!!
२०५६ प्रामुख्य है क्रिया का इसमें, यह 'कर्मकाण्ड' भी कहलाता।
मैं परिभाषापूर्वक इसको थोड़े में हूँ यों बतलाता –
२०५७ 'विद्याओं का अभ्यास तथा शुभज्ञान, अपूर्ण रहें तब तक–
यह कर्मकाण्ड सहयोग उन्हें देकर न करे पूरा जब तक॥"
२०५८ पुनरपि माण्डवी पूछ बैठी– "भगवन्! क्यों होता है ऐसा?
बिन कारण जाने, चेतन का विश्वासी बन सकना कैसा??"
२०५९ नृपवर बोले कि "यथार्थ कथन यह भी वस्तुतः तुम्हारा है।
सो, कारण भी बतलाता हूँ, तव प्रश्न जँच रहा प्यारा है॥
२०६० जितने भी हैं व्यवहार, भले ही बाह्य रहें या मानस हों।
भीतर बाहर दोनों जगहों से हैं संबंधित, विलग न हों॥
२०६१ इसलिए कर्म के बिना पूर्ण होता है विद्याभ्यास नहीं।
इसके बिन कभी ज्ञान भी तो हो पाता पूरा नहीं कहीं॥
२०६२ वैसे तो कई तरह का है माण्डवी बहू! वह कर्मकाण्ड।
पर, दो हैं उसके मुख्य भेद, जैसा कहते पण्डित प्रकाण्ड॥
२०६३ पहला प्रकार कहलाता है 'परमार्थ मार्ग' सो यों जानो–
इससे परमार्थ–सिद्धि करनी होती है, महत्व पहचानो॥
२०६४ इस मग पर चलने वालों को जो जो करना पड़ता, वह वह–
सुनलो, समझो, ऐसी मेरी प्रेरणा तुम्हारे प्रति साग्रह॥

२०६५ पहला कर्त्तव्य-'ओ३म्-प्रभु की संस्तुति अथवा संस्तवन सदा-
करना, (उस निराकार स्वामी अन्तर्यामी करुणाघन का)
२०६६ जो परमशक्तिमत्वादि सुगुण उसके हैं, उनका शुभकीर्त्तन-
करते रहना, वे ही सुनना, करना उन पर पावन प्रवचन ॥
२०६७ दूजा कर्त्तव्य- 'प्रार्थना' है अर्थात् ईश से सहायता-
संप्राप्ति हेतु भरसक श्रम के उपरान्त शिवा करनी इच्छा ॥
२०६८ तीजा कर्त्तव्य-'उसी विभु की विधि विहिता उपासना करना'
या उसके ही स्वरूप में होकर मग्न, ध्यान पूरा धरना ॥'
२०६९ इतना चेता दूं यहाँ कि हो वह उपासना वेदानुसार।
एवं पातंजल योगशास्त्र की सुरीति से ही सब प्रकार ॥
२०७० चौथा कर्त्तव्य- 'परमगुरुवर शिव के आदेशों का पालन।
जो वेदों के द्वारा उसने हैं किये प्रदान सुखद, शोभन ॥
२०७१ जो सत्यभाषणादिक सुखदा आज्ञाएं वरदा हैं उसकी —
सब सदा यथावत् पालन कर पा लेना कृपा-दृष्टि विभु की ॥

(दोहे) जो पंचम कर्त्तव्य है, अब लो उसको जान।
उस अन्तिम का नाम है- 'सत्यधर्म का ज्ञान' ॥२७७॥
अनुष्ठान भी यथावत् करना, है अनिवार्य।
धर्म-ज्ञान के साथ ही क्रिया तो अपरिहार्य" ॥२७८॥
यह सुन, बोली माण्डवी- "क्या धर्म का स्वरूप ?
अनुष्ठान किस भाँति हो, यह भी कहिये, भूप !!" ॥२७९॥

२०७२ जब नृप ने 'न्यायाचरण, धर्म का स्वरूप' कहा, सूत्र सम हो।
तब तुरत माण्डवी ने कर दी यह विनय कि 'व्याख्या हो इसकी'॥
२०७३ इस पर हँसकर बोले राजा- 'पक्की जिज्ञासु हो बहू ! तुम।
पाकर तुम सम श्रोत्री को, है मम हृदयरूप खिल गया कुसुम ॥
२०७४ कहते हैं 'न्यायाचरण' उसे जो पक्षपात को तजकर हो—
सत्य का ग्रहण ही सब प्रकार, छोड़ा भी जावे असत्य को ॥
२०७५ बस, इसी धर्म का ज्ञान, इसी का अनुष्ठान विधिवत् करना-
कर्त्तव्य पांचवाँ है पावन, पांचों पर ध्यान क्यों न धरना ??
२०७६ परमार्थ मार्ग वाले प्रकार के अन्तर्गत ही ये सारे—
आते हैं विषय कि शास्त्रों ने समुचित, जो पूर विस्तारे ॥

२०७७ परमेश्वर–प्रतिपादन, प्रधान, विज्ञान–काण्ड में है जैसे।
यह कर्मकाण्ड का भाग प्रथम एवं प्रधान बिल्कुल वैसे॥
२०७८ इसके द्वारा हों नारोनर मोक्ष की प्राप्ति में सत्प्रवृत्त।
जितने भी हैं बन्धन, उनसे, निःसंशय हो जावें निवृत्त॥
२०७९ भ्रम तुम्हें न हो 'मनुष्य' पढ़ सुन ऐसा कि 'पुरुष' से ही आशय-
अभिप्राय वस्तुतः 'मानव' से जिसमें नारी शामिल निश्चय॥
२०८० दूसरा मार्ग जो कर्मकाण्ड का है वह जानो इस प्रकार–
परिभाषामात्र यहाँ कहकर मैं जिसका बतला रहा सार॥
२०८१ हो सिद्धि, लोक-व्यवहारों की; बस, इसीलिए वह मार्ग अपर।
होती है प्राप्ति इसी के साधन-समूह की, उस पर चलकर॥
२०८२ अर्थात् धर्म द्वारा जिससे मानव पा लेवे अर्थ, काम।
एवं इन दोनों की सुसिद्धि–कारक साधन पावे ललाम॥
२०८३ व्यवहार मार्ग कहला सकता यह कर्मकाण्ड का अपर भेद।
दूजे क्रम पर इसका भी है पूरा महत्व, यों कहें वेद॥
२०८४ संक्षिप्त रूप में भेद तुम्हें, दोनों मार्गों का, बतलाऊँ।
तुम विचक्षणा हो, इसीलिए गागर में सागर भर पाऊँ॥
२०८५ जब मुक्ति–प्राप्ति के लिए किये जावें धर्मतः कर्म सारे–
या केवल परमेश्वर को ही पाने का लक्ष्य मनुज धारे॥
२०८६ एवं सुकृत्य उस हेतु यथावत् धार्मिक सब करता रह ले।
बिल्कुल भी नहीं जागतिक भोगों के प्रवाह में वह बह ले॥
२०८७ तब कहें उसे 'निष्काम मार्ग' जिस पर ऐसा मानव चलता।
उसको फल भी इसका अक्षय सुखरूप श्रेष्ठ रुचिकर मिलता॥
२०८८ सांसारिक भोगों की इसमें कामना ही नहीं की जाती।
सचमुच प्रवृत्ति ही नहीं उधर उस महामनुज की हो पाती॥
२०८९ पर, जिसमें विशिष्ट सांसारिक भोगों की इच्छा धारण कर-
हैं धर्मयुक्त सत्कर्म किये जाते मानव द्वारा प्रियतर॥
२०९० वह मार्ग 'सकाम' कहा जाता, फल नाशवान् मिलता उसका
इसलिए कि इन्द्रिय भोगों से अक्षय सुख कभी न मिल सकता॥
२०९१ करके ये सभी सकाम कर्म, एवं इन्द्रियगण के द्वारा–
भोगों को होकर प्राप्त, कहाँ टूटे क्लेशों वाली कारा!!

२०९२ इस पथ पर चलकर जन्म-मरण से मनुष्य छूट नहीं सकता ।
फिर भी उत्तम से कुछ घटिया, मध्यम सुख फल अवश्य गहता ॥
२०९३ इसके अन्तर्गत 'अग्निहोत्र' से लेके 'अश्वमेघ' तक भी—
आते हैं सारे यज्ञ, होम, सत्रादि, बड़ी महिमा जिनकी ॥
२०९४ ओहो, 'यज्ञ' का नाम निकला मुख से, तो मुझे स्मरण आया ॥
वह वचन कि जिसको मैं पूरा अबतक न भूल से कर पाया ॥
२०९५ पर, अब तो कल होंगी बातें, हो गया बराबर घण्टा भर ।
अतिक्रमण, समय का, न हो कभी, यह रखें ध्यान सब नारीनर ॥"
(दोहा) इतने में ही आ गई, सुखदा भी उस ठौर ।
देते थे प्रवचन जहाँ, नृप, ज्ञानी-सिरमौर ॥२८०॥
२०९६ बोली कि "आ गई थी मैं तो पहले ही परन्तु रही खड़ी—
बाहर, यह तकती राह कि पूरा कब करती है समय, घड़ी ॥
२०९७ दीवार पर लगी बड़ी घड़ी दिख रही सामने थी मुझको ।
इक टक देखती उसे रहकर सुन भी पाई टिक्-टिक् स्वर को ॥
२०९८ विश्वास मुझे था पूर्णतया, क्षणभर न अधिक हो पाएगा ।
घण्टा भर पूरा होते ही कार्यक्रम पूर्ण हो जायगा ॥
२०९९ पर, यह संयोग रहा कि याद मैं वही दिलाने आई थी ।
जिसके बारे में बात अभी श्रीमुख से भी चल पाई थी ॥
२१०० मैंने जब शोभादेवी के स्वप्न की बात आप से कही ।
तब (सु) यज्ञ एक रचाने की सहसा आपकी सदुक्ति रही ॥
२१०१ उसमें कौशिक मुनि को साग्रह बुलवाने का भी तो निश्चय—
स्वप्नानुरूप था प्रकट किया आपने मुदित बन उसी समय ॥
२१०२ थी शर्त एक ही कि वह बात सच्ची निकले उस देवी की ।
अर्थात् भरत से वास्तव में हो शादी हुई माण्डवी की ॥
२१०३ सो, अक्षरशः सब सत्य हुआ, माण्डवी आपके सम्मुख है ।
इसकी सुबुद्धि को भी परखा, पाया आपने बहुत सुख है ॥
२१०४ अतएव दीजिये धन्यवाद प्रभुवर को सुयज्ञ के द्वारा ।
कीजिये वचन भी पूर्ण, करूँगी प्रबंध मैं सत्वर सारा ॥"

(दोहे) "एवमस्तु" कह भूप ने मानी तुरन्त बात ।
चमक उठे उनके नयन, पुलके भी सब गात ॥२८१॥
तिथि-पत्रक में देकर निश्चित भी तत्काल-
किया कि पूनम को रचा जावे यज्ञ विशाल ॥२८२॥
आठ दिनों के बाद ही था वह दिवस पुनीत ।
यज्ञ हेतु नृप को हुआ जो उपयुक्त प्रतीत ॥२८३॥
कौशिक मुनि भी हो सकें आमन्त्रित इस मध्य ।
तथा बुलाये जा सकें सब नरनारी सभ्य ॥२८४॥

२१०५ सब सोच समझकर नृपवर ने तय किया पूर्णमासी का दिन ।
सँग सँग हो जिससे इष्टि-याग जो अलग हुआ होता उस दिन ॥
२१०६ फिर कहा माण्डवी से नृप ने-"कौशिक मुनि के श्रीमुख से तुम ।
यह कर्मकाण्ड का विषय, उसी अवसर पर सुन लेना अनुपम ॥
२१०७ जैसा यह विषय अनूपोत्तम वैसी ही तुम श्रोत्री भी हो ।
अनुपम हो जानो वक्ता भी इस बारे में उन मुनि जी को ॥
२१०८ हाँ, यज्ञों के हैं विशेषज्ञ; मैं पहले भी कई बार-
आमन्त्रण यज्ञ-सत्र के उनको दिये, पधारे वे उदार ॥
२१०९ तब उनका इस विषयक गहरा अध्ययन जान पाया मैं भी ।
अब तक वे यज्ञ रचाते हैं यद्यपि संन्यासी, वनवासी ॥
२११० मख-रक्षण हेतु राम एवं लक्ष्मण को साथ ले गये थे ।
फिर उन्हें संग ले विदेह के शुचि बृहद् यज्ञ में पहुँचे थे ॥"
२१११ माण्डवी बीच में ही बोली- "हे पूज्यप्रवर ! कौशिक मुनि को-
आभास तभी था हुआ कि आमन्त्रण आपका मिले उनको ॥
२११२ सभ जनक से कहा था कि 'तुम्हारी दोनों कन्याओं को मैं-
कैकय नृप के घर देखूंगा, ये वहीं पहुँचनेवाली हैं ॥'
२११३ भूपति इक यज्ञ रचा उसमें साग्रह बुलवाएँगे मुझको ।
बस, उसी समय जाऊँगा मैं, लखपाऊँगा अवश्य इनको ॥'
२११४ अब तदनुसार हो रहा कार्य, इसका आनन्द मुझे भारी ।
मैं यज्ञ-विषय में सुप्रश्न कुछ करने की रखलूँ तैयारी ॥"

२११५ मुसकाती सुखदा बोल उठी–"वे भी पहले थे भूपतिवर।
प्रश्नों से परेशान करने ठाने क्या तुमने सब नृपवर ??
२११६ है इनसे तो पूछना ठीक, पर उनसे केवल प्रवचन ही–
चुप रह सुनलो तो अच्छा है, सुनती हूँ मुनिवर हैं क्रोधी ॥"
२११७ यों कहा माण्डवी ने कि "बड़ी उत्तम यह प्रश्नोत्तर–विद्या।
मामीजी ! सच जानिये कि मिल पाती इससे पूरी शिक्षा॥"
२११९ तब तुरत 'अश्वपति' जी बोले-"माण्डवी बहू का सत्य कथन।
प्रश्नोत्तर-विद्या का महत्व तो वेद स्वयं करते वर्णन ॥
२११९ फिर यह भी तुमने गलत सुना कौशिक मुनिवर के बारे में–
क्रोधित रहने की गप्प उड़ाई किसी अज्ञ मतिमारे ने ॥
२१२० जबतक वे नृप थे, यह दुर्गुण तबतक उनमें कुछ अधिक रहा।
उनसे हम राजा लोगों ने इस बारे में था बहुत कहा ॥
२१२१ पर जबसे हैं ब्रह्मर्षि बने, राजर्षि रूप तजकर अपना–
तब से तो क्रोधभाव का आया तक न कभी उनको सपना॥
२१२२ मैं कई बार उनसे मिलकर सब तरह लख परख चुका उन्हें।
इसलिये कह सकूं प्रतीति से ऐसा कि भ्रान्ति है बहू ! तुम्हें॥
२१२३ यदि अब भी क्रोधी होते वे तो मख-रक्षण के लिये, अहो।
लाते क्यों राम तथा लक्ष्मण दोनों को, यह तुम सोच कहो॥
२१२४ मुझको पूरा विश्वास कि वे प्रश्नों को सुन, होंगे प्रमुदित।
माण्डवी-बहू प्रश्न भी कहाँ करती है थोथे या अनुचित ??
२१२५ तिस पर मैं पहले ही इसकी वास्तविक प्रशंसा कर दूँगा।
मेरे बजाय उनसे इसको उत्तम उत्तर दिलवाऊँगा ॥
२१२६ अच्छा, अब जाओ, तुम दोनों, बेकार समय खोओ न अधिक।
है तुम्हें पता कि ध्यान मेरा, इस ओर सर्वदा सर्वाधिक ॥"
२१२७ यह सुनते ही माण्डवी तथा सुखदा वापिस लौटीं फौरन।
नृपवर को जाते समय किया अति भक्तिभाव से अभिवादन॥
२१२८ जाने पर निज निज कक्षों में निज निज भर्ता से भेंट हुई।
यज्ञ के सुनिश्चयवाली वह उनसे कहदी तब बात नई ॥

२१२९ [किस तरह उभय पत्नियाँ स्वकक्षों में अपने पतियों के प्रति-
रखती निज वर्तन रहीं, (बात यह रहस्य की ही सचमुच अति)॥
२१३० पतियों का भी व्यवहार प्रणयमय किस प्रकार का रह पाया।
इन दोनों के ही बारे में हमने प्र--मौन--पथ अपनाया ॥]
२१३१ दूजे दिन, प्रभात में होने लग पड़ी यज्ञ की तैयारी ।
आमन्त्रण-पत्र युधाजित् ने कर दिये सैंकड़ों ही जारी ॥
२१३२ कौशिक मुनिवर को विशेषतः आग्रहपूर्वक आमंत्रित कर-
सूचित भी किया पिताश्री को "यों दिये बुलावे, पूज्यप्रवर!"
२१३३ सहयोग, भरत ने भी, रुचिपूर्वक, मामाजी को पूर्ण दिया।
शैथिल्यभाव मामा भान्जे न मिलकर चूर्णविचूर्ण किया॥
२१३४ (इसकी प्रेरणा प्रीति से दी माण्डवी और सुखदा ने जो-
करके अनुमान तक नहीं कोई भी है लख सकता उसको ॥)
२१३५ (वैसे तो सुखदा ने ली थी नृप के समक्ष जिम्मेदारी।
माण्डवी न कुछ तब थी बोली पर उर में थी उमंग भारी॥
२१३६ इसलिये भरत को अवश्य ही प्रेरणा, प्रणयभरिता, उसने-
दी होगी, जिसका लगा दूसरे दिन से ही प्रभाव दिखने॥)
२१३७ जो हो, पर यज्ञ-व्यवस्था में चारों सोत्साह जुट गये जब-
शत्रुघ्न और श्रुतिकीर्त्ति भला पीछे इसमें रह पाते कब ??
२१३८ वे भी सहयोगी बने, इस तरह तीनों युगलों ने मिलकर-
पूरे पूरे प्रयत्नपूर्वक सब प्रबन्ध कर डाला सत्वर ॥

दिव्य - दृष्टि - रहस्य (बीसवाँ प्रकरण)

२१३९ माण्डवी प्रभृति चारों आये वरवीर युधाजित सँग जिस दिन-
शोभा देवी ने दिया बुलावा दोनों बहिनों को उस दिन॥
२१४० ये तदनुसार दूजे दिन ही लेकर अशोक को सँग अपने-
जा पहुँचीं उनके यहाँ, सुने उनसे निद्रित, जाग्रत सपने ॥

२१४१ इसके पीछे भी कई बार हो आई थीं ये उनके घर।
सुखदा से मिलने कई बार वे भी आईं सुत-द्वय लेकर ॥
२१४२ पर अबतक पूछ न पाई थी माण्डवी कि तुम कैसे धारण-
कर पाईं भविष्य-दर्शन की रहस्य वृत्ति जो नहीं साधारण ॥
२१४३ यज्ञ का सुनिश्चय होने के अगले दिन गई जिस समय वह-
शोभा दीदी के घर, पूछा तब यही विनयपूर्वक साग्रह ॥
२१४४ गत सर्व अवसरों पर तो था श्रुतिकीर्त्ति को रखा सँगसँग ही-
पर इस मर्तबा अकेली ही वह भरतदेव की प्रिया गई ॥
२१४५ गंभीरभाव धारण करके शोभादेवी कहचलीं कि "हैं-
माण्डवी ! बड़े ही रहस्य की ये बातें जो अब कहती मैं ॥
२१४६ शब्दों में जितना सम्भव है उतना ही बतला पाऊँगी।
अनुभूति का, भला, किस प्रकार में तुम्हें हाल जतलाऊँगी ??
२१४७ सांकाश्यपुरी में जब थी मैं तब तो बहिरंग साधनों तक-
थी मेरी गति सीमिता, यों कि मानों वह वहीं गई हो टिक ॥
२१४८ पर जब से लौटी हूँ तब से योग के अन्तरंगों की भा-
साधना यथासम्भव करके मैंने पाई सुसिद्धि थोड़ी ॥
२१४९ यह उसका ही था चमत्कार जो सत्य हुआ मेरा 'कहना'-
फिर भी, इससे न मुझे बिल्कुल है गर्व- प्रवाह मध्य बहना ॥
२१५० अनुभव होता है तनिक आत्मगौरव अवश्य मम चेतन को।
इतने पर भी शासक अपना बनने दूँगी न कभी मन को ॥
२१५१ इसलिये स्वप्न देखे थे वे निद्रित जाग्रत रहकर जो दो-
उनका वर्णित होना पसन्द आता है अधिक नहीं मुझको ॥
२१५२ आशंका होती है कि मुझे इस भाँति न हो अभिमान कहीं-
एवं साधना-दुर्ग मेरा हो जावे चकनाचूर नहीं ॥"
२१५३ बोली माण्डवी कि "तुमने तो दीदी ! कह दिये पारिभाषिक-
दो 'अन्तरङ्ग' 'बहिरङ्ग' शब्द जो मेरे लिये कहाँ सार्थक ??
२१५४ समझाकर आशय बतलाओ सन्दर्भ सहित कृपया सत्वर।
जिससे कि प्रश्न के उत्तर का पाजाऊँ मैं निज इच्छित वर ॥"

(दोहे) शोभा दीदी ने कहा—"तुम 'पातञ्जल-योग—
पढ़कर यह अज्ञानमय दूर कर सको रोग ॥२८५॥
फिर भी, थोड़े में कहूँ— किन्हें कहें 'वहिरङ्ग' ।
'अन्तरङ्ग' हैं कौन-से राजयोग के अङ्ग ॥२८६॥

२१५५ पहला 'यम,' दूजा 'नियम' और तीजा कहलाता है 'आसन'।
चौथा है 'प्राणायाम' पाँचवाँ 'प्रत्याहार'; सभी शोभन ॥
२१५६ 'वहिरंग,' योग के, पाँचों ये; अब 'अन्तरंग' की बात सुनो।
केवल सुनना ही अपर्याप्त, आओ चिति में भी इन्हें गुनो॥
२१५७ जो 'यत्रमेकत्र संयमः' यह शुभ सूत्र है पतँजलि मुनि का—
'धारणा, ध्यान एवँ समाधि' तीनों से है आशय उसका ॥+
२१५८ अर्थात् इन्हीं का एकत्रित है एक नाम--'संयम'-- पावन।
उसके फल हैं कैवल्य--प्राप्ति एवं विभूति मिलना शोभन॥
२१५९ 'कैवल्यपाद' में 'पहले' का वर्णन कर रहा "योग--दर्शन"।
'दूजे' का 'विभूति-पाद' नाम वाले प्रकरण में किया कथन॥
२१६० हैं कितनी--ही विभूतियाँ जो मिलतीं, करके विभिन्न संयम।
साधना किस तरह किसकी हो, इसका भी सब है निश्चित क्रम॥"
२१६१ इस पर बोली माण्डवी कि "सीता दीदी ने भी सु--साधना—
करके योगज सामर्थ्य प्राप्त करना था जतलाया अपना॥
२१६२ लाखों वर्षों के बाद किस तरह उनकी हम अनुजा त्रय का—
यश होगा, यह सब दिव्यदृष्टि द्वारा, मुझसे था स्वयँ कहा॥
२१६३ पर, इतना फिर भी कहा कि "है कुछ अधिक बताना उचित नहीं।
डर है कि उपेक्षा, वर्तमान के प्रति, जागे तुममें न कहीं॥"
२१६४ शोभा फिर कहने लगी कि "है इसके अतिरिक्त, दूसरा भी-
कारण, जिससे न बात कहनी चाहिये अधिकतर भावी की॥
२१६५ वह यही कि सिद्धि- प्रदर्शन से क्षीणता, सिद्धि में, आती है।
कुछ अहंकार- भावना, प्रदर्शक में, सच, आ ही जाती है॥

\+ इस तथा आगेवाले कतिपय त्रिगच्छंदों को सम्यक्तया समझने के लिये कृपया हमारा (स्वतन्त्र रूपेण) पद्यानूदित 'हिन्दी पद्यमय पातंजल दर्शन' पढ़िये- धन्यवाद ! ("आ. प्र.")

२१६६ यह राजयोग का दिव्यमार्ग है जितना बढ़िया, प्रामाणिक—
उतना ही क्यों न समझलो तुम इसको अतिगूढ़, विमल, सात्त्विक ॥
२१६७ पातञ्जल योगशास्त्र में ही जो 'समाधि' 'साधन' पाद उभय-
उनका अध्ययन करोगी तो इसमें न रहेगा कुछ संशय ॥
२१६८ रहना पड़ता है सावधान इसके साधकगण को प्रतिपल ।
संयम के संस्तर पर तो मन रखना पड़ता है नित अविचल ॥
२१६९ जब विश्वामित्र महामुनि तक थोड़ो असावधानी से ही—
मन के थे बने दास तब फिर क्या चली और तो है किसकी ??
२१७० यद्यापि कर विकट तपस्या, वे ब्रह्मर्षि अन्ततः बनपाये ।
जो एक बार त्रुटि हुई, न वह दुहराने का अवसर लाये ॥
२१७१ इससे, तथापि, शिक्षा तो सब ले सकते हैं कि सतर्क रहें ।
इन्द्रिय भोगों के दुष्प्रवाह में पड़कर नहीं कदापि बहें ॥
२१७२ अन्यथा अगर कौशिक मुनिसम कर कठिन तपस्या बढ़ न सके ।
तो रजक-श्वान के तुल्य, रहेंगे नहीं घाट के औ' घर के ॥
२१७३ मुनिवर की बात निराली है, वे तो गिरकर सम्हले ऐसे --
बिन गिरे, नहीं ब्रह्मर्षि कभी शायद हो पाते, अब-जैसे ॥"
२१७४ माण्डवी बीच में फिर बोली— "पूनम के दिन वे आएँगे ।
नृपवर उनसे उपदेश मुझे शुचियज्ञपरक दिलवाएंगे ॥"

(दोहे) फिर पूरा विवरण दिया, (कैसे यज्ञ विशाल—
उस दिन होना तय हुआ) कहे अन्य भी हाल ॥२८७॥
"साग्रह आमन्त्रित हुए हैं कौशिक मुनिराज ॥
जिनको अति रुचिकर सदा यज्ञों का शुचिकाज" ॥२८८॥

२१७५ तब शोभा ने प्रसन्न होकर फिर चालू किया कथन-क्रम को ॥
कुछ देर बताया वह कि महामुनि में तप का है विक्रम जो ॥
२१७६ तदनन्तर कहा कि "भाग्यशालिनी अतिशय हो तुम जो उनकी—
सत्कृपा हुई तुम पर, सुलब्धि है अनुपम यह तव चेतन की ॥
२१७७ प्रस्ताव उन्हीं ने रखा कि हो श्री भरतदेव से तव परिणय ।
यह भी है छोटी बात नहीं प्रत्युत महत्व इसका अतिशय ॥

२१७८ कर तव भविष्य-दर्शन एवं श्री भरतदेव जी का भी, वे–
लख पाये होंगे यह कि इन उभय का परिणय तो होना है॥
२१७९ फिर, यहाँ बुलाये जाने की बात भी बहुत पहले कह दी–
इसमें क्या तुम्हें नहीं उनकी चामत्कारिक सुशक्ति दिख ली?
२१८० वे तो महान् हैं पर मुझसम छोटी साधिका देख पाई।
तव संबंधित भविष्य भी, पर कब स्वयं ही सुनाने आई ??
२१८१ अब, तुम्हीं अकेली जबकि यहां सुनने वाली हो तथा चला–
अब है प्रसंग भी ऐसा ही, तब यह कह डालूँ क्यों न भला!!
२१८२ अपने तक ही सीमित रखना, पति से भी इसे न तुम कहना।
मानों कुछ नहीं जानती हो, ऐसी बनकर सदैव रहना॥
२१८३ होगा उद्वेग नहीं तुमको होनेवाली घटनाओं से।
है लाभ यही सुनने में (दो फिर भी महत्व क्यों न्यून इसे !!)
२१८४ हाँ, तो सुनलो कि निज तनयपर तव सास, मोह अतिशय रखकर
आर्यत्व तजेगी, बनलेगी वह किसी अनार्या से बढ़कर॥
२१८५ दासी की पाकर कु-प्रेरणा, सहसा उसमें यह परिवर्तन–
हो जाएगा जिस पर उसको धिक्कारेंगे सारे ही जन॥
२१८६ देवासुर समर मध्य पति का जो किया वीरतामय रक्षण–
उसके बदले में नृप ने दो वर देना चाहे थे तत्क्षण॥
२१८७ 'जो चाहो सो माँगो तुरन्त दोनों वर' ऐसा कहने पर–
था कहा कि "है न त्वरा मुझको, ले लूँगी कभी ये उभय वर॥
२१८८ मन्थरा नाम की दासी को तव सास ने कही घटना यह।
उसने बाँधली, याद रखने को, मन में मानों बड़ी गिरह॥
२१८९ बस, कु-प्रेरणा देने में वह उपयोग करेगी इसका ही।
जिससे कैकेयी अति दुष्टा नारी जैसी हो जाएगी॥
२१९० इसके आगे जो-जो होगा वह तुमसे है सम्बन्द्ध अधिक।
सो, कहूँ न कुछ उस बारे में, तुम विकसाओ क्षमता आत्मिक॥

२१९१ अन्यथा दैववादिनी बनी, पुरुषार्थ ø और प्रतिभा छोड़ो।
सर्वथा शक्य है यह कि विहित कर्मों तक से तब मुख मोड़ो॥
२१९२ सीता ने सही कहा कि 'अधिक जो भविष्य में विचरण करता—
वह मानव (नारी हो या नर) अवनति की ओर चरण धरता॥'
२१९३ कौशिक मुनिवर सम सुसिद्ध तो कोई कोई ही नरनारी—
होते हैं जो भविष्य जानें, पर रहें सुकर्तव्यधारी॥
२१९४ ऐसा प्रतीत भी कभी कराते नहीं कि भावी को लखकर—
हैं कर्म अमुक संपन्न कर रहे, वे तो; निमित्त ही बनकर॥
२१९५ कहना पड़ जाए तो कहते हैं इतना ही कि 'भास होता—
या नियति दे रही अमुक बात होने का मानो है न्याता॥'
२१९६ यों अहंकार से बचते हैं, करते न प्रदर्शन, विभूति का।
वे रहते योग-सिद्धि में हैं, उनमें रहता सिद्धत्व टिका॥"
(दोहे) यह कह कर शोभा नहीं, बोली यद्यपि बैन।
तथापि उसके चुप नहीं रहे विशाल सुनैन॥२८९॥
नैनों के उन बैन को सुनने वाले कान—
बने माण्डवी के नयन, सुनो थे धर ध्यान॥२९०॥
२१९७ कुछ देर दशा यह रही, स्वमुख से ध्यान नहीं हुआ था वह।
कानों से इसीलिये कुछ भी सुनतातो भला किस तरह यह॥
२१९८ पर, उसके नयन बोलते जो, सुनतीं इसकी आँखें उसकी।
(यह दृश्य विलक्षण था, उपमा कोई दी जावे कुछ इसकी॥)
२१९९ मौखिक चुप्पी तोड़ते हुए माण्डवी लगी कहने अपना—
दूसरी बार जीवन में जो देखा उसने भीषण सपना॥
२२०० बोली कि "बड़ा दुःस्वप्न अयोध्या में उस प्रातः मुझे दिखा।
विस्मृत यों होता नहीं कि ज्यों हो अमिट रूप में गया लिखा॥
२२०१ उस वृद्ध विज्ञ का वह 'कहना' एवं हँसना 'हो, हो, हो, हो।
इससे है मिलताजुलता-सा तुमने कह दिया अभी जो जो॥

ø "दैवं निहत्य कुरु पौरुष आत्मशक्त्या" (आप्तोक्ति) "कादर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥" (रामचरित मानस) [ओ.प्रे.]

२२०२ पर, मम चेतन को है प्रतीति पूरी कि दशा हो कैसी भी।
इसकी उदात्त भावना बनी रहलेगी बिल्कुल ऐसी ही॥
२२०३ तुमने सुप्रेरणा आज बड़ी भारी दे डाली है, दीदी!
इससे मुझको मिल गई राह, आत्मिक विकास की, है सीधी।
२२०४ मैं प्राणायाम-परा होकर क्रमशः बढ़ती ही जाऊँगी।
आठों शुभ योगसाधनों को श्रमश्रद्धा से अपनाऊँगी॥
२२०५ अबतक जो विकास कर पाई वह नहीं शृंखलाबद्ध रहा।
कर्म से पूर्व जो इस विषयक था ज्ञान अपेक्षित, वह न गहा॥
२२०६ पातंजल योगशास्त्र का अब अध्ययन करूँ, यह ठाना है।
उसका महत्व सुनकर तुमसे, आजही पूर्ण पहचाना है॥
२२०७ कहकर प्रियतम से, राजकीय पुस्तक संग्रह में से उसको-
मँगवाऊँगी एवं प्रतिदिन स्वाध्याय कराऊँ भी 'उन' को॥
२२०८ फिर हम दोनों, विचार-विनिमयपूर्वक सूत्रों पर करे मनन।
शंका यदि होगी तो उसका आकर तुमसे करूँ कथन॥
२२०९ मेरी अच्छी शोभादीदी! करदेना कृपया समाधान।
क्या मेरे नम्रनिवेदन पर दोगी इतना भी नहीं ध्यान??
२२१० शोभा हँसकर बोली कि "अरी* आएगा ऐसा क्यों अवसर?
त्रुटि है तेरी, बस, बड़ी यही, अविदित है तुझको ही तव घर॥
२२११ क्या देखे हैं तूने, तेरे पति के स्वाध्याय-ग्रंथ उत्तम?
जिनका वे आकर यहाँ, रख रहे हैं प्रतिदिन अध्ययन-सुक्रम॥"
२२१२ माण्डवी चकितसी बन बोली--"ऐसा तो किया न कभी कहीं।
क्या बात यहाँ की पूछो तुम, ग्रंथ तो वहाँ भी लखे नहीं॥
२२१३ पर, शंकासमाधान का है इससे कुछ भी सम्बन्ध कहाँ?
आ सके स्मरण 'उन' का तुमको-ऐसा प्रसंग क्या उठा यहाँ??"

---

* "आत्मा वा अरे दृष्टव्यः" आदि उपनिषद्वचन में मैत्रेयी को भी 'अरे' कहा गया है, 'अरी' नहीं पर हिन्दी में 'अरी' का प्रचलन है वैसे ही जैसे उर्दू के सही प्रयोग 'ताज़ा जलेबी' को हिन्दी में ग़लत 'ताज़ी जलेबी' कहा जाता है। ["ओ प्रे"]

२२१४ तब और अधिक हँसते हँसते शोभा ने दिया उसे उत्तर—
(ऐसा कि देसकी नहीं माण्डवी कोई जिसका प्रत्युत्तर ।!)
२२१५ बोली शोभा कि "सहचरी है जिनकी तू, वे तेरे सहचर—
किस मार्ग पर चला करते हैं, यह भी रखती क्यों तू न खबर ॥
२२१६ सहचरण कर सकेगी कैसे—पथ का ही जब तुझको न ज्ञान ।
इस ओर कभी शायद तूने है दिया नहीं क्षणमात्र ध्यान ॥
२२१७ स्वाध्याय स्वयं है बड़ा यज्ञ, उसमें पति–पत्नी, संगसंग—
क्यों नहीं सहचरण करें, अन्य यज्ञों सम, भर उर में उमंग ??
२२१८ वेदों में 'अनवद्या नारी पतिजुष्टा' की उपमा देकर—
पत्नीं कर्त्तव्य सुझाया हैग पति भी क्यों रहे नहीं सहचर ??
२२१९ श्री भरतदेव तो इस दिशि में हैं जागरूक, पर तू सोती !
सहचरण–प्रक्रिया इसीलिए है सम्यक् या नहीं होती ॥
२२२० भर्त्ताभार्या तो प्रणयसूत्र द्वारा जुड़ जाते हैं ऐसे—
दो तनधारी, पर एक सुमिश्रित चित्त-युक्त कोई, जैसे ॥
२२२१ वह अर्द्धांगिनी कहाती है, सचमुच पति की पूरिका रहे ।
पति भी पत्नी का पूरक है, अर्द्धत्व–भाव प्रत्येक गहे ॥
२२२२ फिर मजेदार सुन बात कि नर है नहीं 'धर्मपति' कहलाता ।
नारी ही सदा धर्मपत्नी कहलाती, यह क्या बतलाता ?
२२२३ मैं तो ऐसा मानूं कि धर्मकार्यों में भी सर्वदा संग—
रहले पत्नी रखकर समस्त कर्मों सम, इनमें भी उमंग ॥
२२२४ बस, इसीलिए तो नारी को यह दिया विशेषण अत्युत्तम ।
हैं क्योंकि नारियाँ अनेक जो अनभिज्ञा रहती हैं तुझ सम ॥
२२२५ है पता ही नहीं तुझे कि तव पतिदेव, योगदर्शन पढ़ते
केवल पढ़कर ही नहीं रहें, साधना-सुगिरि पर भी चढ़ते ॥

ग ' देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा। पुरः सदः शर्म-
-सदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥" (ऋग्० अष्टक १, अध्याय
५ वर्ग १९ मंत्र ३) [जैसे कि अत्यन्तोत्तम गुणयुक्त पति की सेवा में—
तत्पर पतिव्रता नारी (स्त्री) रात दिन तनमनधन और अतिप्रेम से अनु
कूल ही रहती है—] . महर्षि दयानंद कृत मंत्र व्याख्यान में से, [ओ० प्र०]

२२२६ अब, जाकर लखना ग्रंथरत्न जिनको वे पढ़ते हैं प्रतिदिन।
आप्तों के भाष्यों सहित पुस्तकें प्राप्त उन्होंने की इक दिन॥
२२२७ मुझको यों पता चला कि ग्रंथसंग्रह विशाल जो राजकीय।
उसपर निगरानी रखते हैं मम श्वसुर महोदय माननीय॥
२२२८ मेरे पति को है दिया उन्होंने पुस्तक विषयक पूर्णभार।
यह भरतदेव के बारे में उनसे ही पाया समाचार॥
२२२९ दूसरी मजे की बात कहूँ; अब रही न मैं तव दीदी ही।
जब तब आकर हैं भरतदेव मुझको पुकारते– 'मामी जी'॥
२२३० उनका इसमें है तर्क सबल ऐसा कि सखी जो मामी की–
वह क्यों न माननीया रहले मेरे द्वारा मामी–सी ही॥
२२३१ सो, 'इन' को 'मामाजी' कहते, 'मामीजी' पुकारते मुझको।
'इन' के जो पूज्य पिताश्री हैं, 'नानाजी कहते वे उनको॥
२२३२ बच्चे बेचारे उलझन में पड़ते कि पुकारें 'मौसाजी'।
मेरे कहने से उन्हें या कहें उस नाते से 'भ्राताजी'॥

(दोहा) इतने में ही बाल-द्वय, आये कुछ हो क्लान्त।
किया 'नमस्ते' मात्र ही, दोनों दिखे अशान्त॥२९१॥

२२३३ शोभा से कहा दड़े ने यों– "माताजी ! ये हैं 'मौसीजी'–
अथवा भ्राताजी के नाते हम कहें अब इन्हें 'भाभीजी' !!
२२३४ यदि 'मौसी' इन्हें पुकारेंगे तो भ्राताजी न पसन्द करें।
'भाभी' कहने पर शायद ये संभाषण हमसे बन्द करें॥"
२२३५ माता ने सस्मित मुद्रा में यों कहा कि "तुम यह क्रिया करो-
जैसा हो अवसर वैसा ही सम्बोधन इन को दिया करो॥
२२३६ मेरे समीप जब हों बैठी, तब इन्हें पुकारो 'मौसीजी'।
हों जब भ्राताजी यहाँ, भले ही तब कह सकते– 'भाभीजी'॥
२२३७ इसपर फिर से दोनों बच्चे 'मौसीजी' कहकर अभिवादन-
कर उठे और दिख पड़े तुष्ट (मानों हो सुलझ गई उलझन)
२२३८ जो घड़ी कलाई पर थी वह देखकर माण्डवी हुई खड़ी।
बोली कि "ध्यान ही नहीं रहा, मुझको, कि हो गई देर बड़ी॥

२२३९ नृपवर की सेवा में जाकर प्रवचन सुनने का, समीप ही—
आ रहा समय है, सो मुझको जाने की अनुमति दो, दीदी !!
२२४० प्रश्नोत्तर-वेला में पूछे मैंने वेदों के मुख्य विषय—
सो, उत्तर देकर मिटा रहे नाना जी हैं मेरे संशय ॥
२२४१ जो चार विषय हैं कहे प्रमुख, उनमें से दो तो समझाये।
अवशिष्ट उभय का भी परिचय क्रम क्रम से पूरा मिलपाये॥
२२४२ दूसरे विषय का उत्तरार्द्ध कौशिक मुनि से सुनवाएंगे।
जैसा कि वताया तुम्हें अभी 'मुनि पूनम के दिन आएँगे ॥'
२२४३ जाते जाते देदूँ तुमको दीदी ! मैं एक जानकारी।
'प्रश्नोत्तर एवं प्रवचन की संस्मृतियां लिखती हूँ सारी ॥
२२४४ मम प्रियतम की सेवा में वह अर्पित कर देना ठाना है।
मैंने तो यही सहचरी के नाते सुकार्य इक माना है ॥
२२४५ कर्त्तव्य, धर्मपत्नी का भी, अब निवाहने में बन तत्पर—
मैं तव सत्प्रेरणा शोभना को सक्रिय आदर दूँगी सत्वर ॥
२२४६ अच्छा, तो अब चलती हूँ मैं, आना तुम भी सुविधानुसार।
मैं यहां रहूँ उन दिवसों में हम क्यों न मिल सकें बहुत बार॥"
२२४७ आपस में किया 'नमस्ते' दोनों ने आत्मीयभावपूर्वक।
फिर चली गई माण्डवी क्योंकि प्रवचन सुनने को थी उत्सुक॥

जनसंपर्क-योजना (इक्कीसवाँ प्रकरण)

२२४८ शोभा दीदी के घर से आ, नृपवर की सेवा में पहुँची--
माण्डवी समय पर ही प्रवचन सुनने, प्रतिदिनानुसार, लगी ॥
२२४९ आधे घण्टे के बाद चला प्रश्नोत्तर का दैनिक जब क्रम—
तब वही वेदविषयोंवाला प्रकरण समक्ष था अत्युत्तम ॥
२२५० आगे भी, कई दिनों तक वह चलता ही प्रकरण, श्रेष्ठ, रहा।
कर बीच बीच में प्रश्न कई श्रोत्री ने था शुचि बोध गहा ॥

(दोहे) जो 'उपासना' 'ज्ञान' के विषय थे बड़े क्लिष्ट ।
उन्हें पूर्णतः समझना श्रोत्री को था इष्ट ॥२९२॥
सो, विचार कर प्रश्न वह रखती थो तैयार ।
करते जिनको उत्तरित, वक्ता परमोदार ॥२९३॥

२२५१ प्रवचन में कितनी ही बातें नृप ने बतलाईं नई नई ।
शब्दार्थ और भावार्थ सहित श्रुतिमंत्र किये व्याख्यात कई ॥
२२५२ वे सारी बातें स्मृति में रख ज्यों की त्यों थी अंकित करती ।
माण्डवी, कक्ष में जाते ही, प्रतिदिन थी ध्यान इधर धरती ॥
२२५३ फिर नृपवर को अपनी लिखिता संस्मृति-पुस्तिका दिखा देती ।
यदि सँशोधन करते वे कुछ तो उसे तुरत अपना लेती ॥
२२५४ इस भाँति जब हुआ मास एक, तब कहा माण्डवी ने इक दिन-
"हे भगवन् ! ग्रामों को अब मैं चाहूँ लखना थोड़े-से दिन ॥
२२५५ उपदेशों का संग्रह यथेष्ट हो गया, पुस्तिका भरी, अहा ।
आदेश आपका मान, लिखा मैंने, तो अच्छा बहुत रहा ॥
२२५६ मैं ही क्यों, उपकृत इससे तो होंगे सहस्रशः नरनारी ।
यह प्रवचन-संग्रह बन लेगा मेरे माध्यम से उपकारी ॥
२२५७ आपके सदनुभव-सुयुक्त जो पावन विचार हैं वे ही तो-
सुनकर मेरे द्वारा अंकित हैं किये गये सु-प्रभावित हो ॥"
२२५८ नृपवर बोले कि बात छोटी कब है कि वचन सब ज्यों के त्यों-
स्मृति में रख अंकित किये जायँ, प्रत्युत उत्तम परिवर्द्धित हों ॥
२२५९ फिर प्रश्न तथा शंकाओं का है महत्व किसी भाँति क्या कम ?
जिनका सब श्रेय तुम्हीं को है, दिखता जिनमें आध्यात्मिक श्रम ॥
२२६० हे वहू माण्डवी ! मनस्विनी ! तुम पर मैं हूँ प्रसन्न अतिशय ।
आत्मा का निरख उच्च संस्तर मम चेतन में सहर्ष विस्मय ॥
२२६१ पर, ग्रामों को लखने की जो अभिलाषा तुमने दर्शाई ।
उसकी प्रयोजनीयता मुझे कुछ भी न समझ में है आई ॥
२२६२ समझाकर बतलाओ कि तुम्हारे उर में यह क्यों उठी चाह ।
किस कारण से हो रहा तुम्हें इस कार्य के लिये समुत्साह ?"

२२६३ सविनय बोली माण्डवी कि "मैं सांकाश्यपुरी में ही जब थी।
गुरुवर श्री उपाध्याय जी से तव कीर्ति आपकी थी सुनती॥
२२६४ भव्याघोषणा आपकी जो गूँजती रहेगी युग युग तक—
उसका तबसे ही मुझ पर है पावन प्रभाव अविचल अबतक॥
२२६५ सारे जनपद के बारे में आपने किया है घोषित जो—
मैं 'अपनी आँखों से लखना चाहती यथा विधि हूँ उसको॥
२२६६ निज पिष्टराज्य के ग्रामों का, सीता दीदी के सुझाव पर –
दौरा, इकमास किया मैंने शोभा दीदी से सब सुनकर॥
२२६७ हाँ, बहुत उन्होंने बतलाया आपके राज्य का शुभ गौरव।
पर, शब्द चित्र को लखकर ही कानों से, तोषन हो अनुभव!!
२२६८ फिर कही राजगृह की उन्नति, 'इस पर से ही ग्रामों का भी-
अनुमान करो', यह दी सम्मति जो तब तो मैंने थी मानी॥
२२६९ पर अब दौहित्रवधू बनकर आपकी, हूँ यहाँ आ पाई।
तो क्यों न लखूं निज नेत्रों से ग्रामों की प्रगति हर्षदायी॥
२२७० जब अवधपुरी में पहुंची मैं तव नरनारी–सेवा में तत्पर–
आपकी सुपुत्री के सुभव्य निर्देशन में बन ली सत्वर॥
२२७१ सहयोग मुझे श्रुतिकीर्ति सदा है देती रहती, बस, वैसे।
दौहित्र आपके, नित पाते शत्रुघ्न वीर से हैं जैसे॥
२२७२ मेरा विचार यह था कि उभय भ्राता वे, हम सहोदराद्वय।
चारों ही मिलकर ग्रामों के जीवन से भी कर लें परिचय॥
२२७३ तीनों सासों की तथा ससुर जी की अनुमति लेकर हम सब।
जाते गाँवों में, अवधराज्य के, लखने को जीने की ढब॥
२२७४ पर, इसी बीच आपका पत्र पहुँचा, हम चारों, जिस पर से–
आपके सुपुत्र महोदय के सँग यहाँ आ गये उस पुर से॥
२२७५ 'अध्ययन करेंगे नगर तथा ग्रामों-युत कैकय जनपद का'
यह भी आते आते विचार निश्चित हो पाया हम सब का॥
२२७६ योजना बनाने का सदैव मुझ पर ही पड़ता रहा भार।
सो, इसकी भी योजना बनाना करती कैसे अस्वीकार??

२२७७ बड़भागिनी हूँ कि योजनाएँ होती हैं सर्वमान्य मेरी।
इसबारे में भी हुई मान्य चारों को, लगी न कुछ देरी॥
२२७८ इतना ही क्यों, मामा जी भी मामी जी समेत, हैं सहमत।
यह भी मुझ पर ही भार है कि आपसे कराऊँ वह स्वीकृत॥
२२७९ आपकी प्रादन करना अनुमति सर्वथा इसलिये आवश्यक-
हम सबसे हैं अनुभवी अधिक, नृपराज! आप सबके रक्षक॥
२२८० सांकाश्यपुरी में पिता, अवध में ससुर, यहाँ श्रद्धेय आप—
अनुमति देने के अधिकारी, पूजार्हता रखें नित अमाप॥
२२८१ ससुराल में पिता के समान दशरथ जी मान्य मुझे जैसे।
पति कीं ननिहाल मध्य दिखते आप ही पूज्य सचमुच वैसे॥
२२८२ उनसे भी बल्कि अधिक मानू आपका महत्व बहुत कुछ मैं।
अवधेश्वर के भी क्योंकि आप सम्मान्य श्वसुर अति हितकर हैं॥
२२८३ अर्थात् पिता-सम हैं उनके, सो मेरे हुए पितामह—सम।
सास के पिता होने से भी आपकी सुमहिमा हैं अनुपम॥
२२८४ सास की मातुभी नहीं रहीं, सो उनके बजाय नानी भी—
मम भर्त्ता की आप ही, अहो, यों बढ़ी पूज्यता कई गुनी॥

(दोहा) मेरे गुरु भी आप हैं, देने से उपदेश।
किया अनुग्रह आपने, रहा न संशय लेश॥२९४॥

२२८५ हाँ, तो जिस पर स्वीकृत चाहूँ वह सुयोजना है इस प्रकार-
(निज लघुमति से तैयार किया जिसको मैंने करके विचार॥)
२२८६ कैकय-जनपद के दो विभाग—नगरीय तथा ग्रमीण—करें।
सँग ले इक इक को हम दा दो, इन उभय विभागों में विचरें॥
२२८७ दौहित्र आप एवं मैं, सँग लिये आपके सुत—वर को—
ग्रामीण क्षेत्र विचरण कर अध्ययन करें, सब प्रमाद खो॥
२२८८ शत्रुघ्न तथा मेरी अनुजा, तव पुत्र वधू को सँग लेकर—
नगरीय क्षेत्र का पूर्ण करें अध्ययन, ध्यान अतिशय देकर॥
२२८९ श्री भरत देव, ग्रामीणों का देखें उन्नयन विशेषतया।
मैं ग्रामीण महिलाओं की उन्नति का लूँ पूरा लेखा॥

२२९० मेरे समेत निज भान्जे को मामाजी दें सब सुविधाएँ ।
पड़ सकें न थोड़ी भी हमको ग्रामों में कहीं असुविधाएँ ॥
२२९१ पत्नी समेत शत्रुघ्नवीर सुखदा मामीजी से पावें—
संपूर्णतया सहयोग, ताकि सर्वथा सफल वे हो जावें ॥
२२९२ फिर दोनों दल अपने अपने लेखी विवरण कर दें प्रस्तुत ।
उन पर से एक बनाऊँ मैं लेखा जो हो संक्षिप्त बहुत ॥
२२९३ रख सेवा में आपकी, सुप्रेरक परामर्श पाया जावे ।
जो दें सुप्रेरणा आप, उसे श्रद्धा से अपनाया जावे ॥
२२९४ 'इस जनपद में कोई न चोर, मद्यप; स्वैरी भी है न कहीं ।
जो यज्ञशीलता–विरहित हो ऐसा है कोई मनुज नहीं" ॥ %
२२९५ आपकी घोषणा में वर्णित यह ऊँची संस्थिति, किस क्रम से–
आई है, इसका भी करना अध्ययन बच न पाये हम से ॥
२२९६ जब अवधपुरी में लौटे तब हम चारों मिल शुभ यत्न करें ।
नगरीय तथा ग्रामीण, उभय, क्षेत्रों में विकास-रत्न भरें ॥
२२९७ हम दोनों बहिनें अगर कभी सांकाश्यपुरी जा पाएँगी—
तो उस विवरण के प्रकाश में उत्थान वहाँ भी लाएँगी ॥
२२९८ वैसे भी, जन सम्पर्क तथा जनसेवा में रुचि बहुत मुझे ।
यह प्यास अबुझ-सी ही मुझमें, जो कभी कदाचित नहीं बुझे ॥
२२९९ इस पर नृपवर बोले कि "बहू माण्डवी ! पूर्वजन्मार्जित ये–
संस्कार सुपावन हैं कि रहो सतोरित अब भी तुम जिनसे ॥
२३०० योजना बहुत ही अच्छी है, मम स्वीकृति पूर्णतया इस पर ।
प्रवचन भी इतने हुए कि तुम ले सकतीं लाभ इन्हें पढ़कर ।
२३०१ वैसे भी, वर यह तुमने ही पहले दिन मुझसे मांगा था ।
उस समय, जबकि मैंने तुमसे तब इष्ट जानना चाहा था ॥

% "न मे स्तेनो जनपदे, न कदर्यो न मद्यपः । नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणीकुतः ॥" (छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ५ खण्ड ११ श्लोक ५, मध्यभाग) [मेरे जनपद (राज्य) में कोई चोर नहीं, कंजूस नहीं, शराबी नहीं, अग्निहोत्र से शून्य नहीं, विद्याहीन नहीं, व्यभिचारी नहीं तो व्यभिचारिणी कहाँ ?] इस विनियोग पर हमें ससौख्य सुविस्मय है] ("ओ० प्रे०")

२३०२ इसलिए तुम्हीं पर निर्भर है यह भी कि समय मेरा कब तक-
प्रवचन सुनने में तुम लेना चाहो, मैं तो दूंगा तब तक ॥
२३०३ पर, एक बात मैं नहीं और भी समझा हूँ, वह बतलाओ।
विस्तृत विवरण देकर मुझको पूरी पूरी तुम जतलाओ ॥
२३०४ अर्थात् कहा जो यह कि 'लाभ लेंगे सहस्रशः नारीनर—
प्रवचन–संग्रह का, जिसे बनाया तुमने श्रद्धा से जुटकर ॥'
२३०५ यह संभव कैसे है, इसका सोचा है तुमने क्या उपाय ?
इसमें किस भाँति कौन कितना कब हो पावे तुमको सहाय ??"

(दोहे) हँसकर बोली माण्डवी– "आज कर रहे आप–
मुझसे भगवन् ! बहुत ही यह सब प्रश्नालाप !! ॥२९५॥
अब तक जो मैं पूछती रही अनेक सवाल ।
उनका बदला मिल रहा क्या मुझको इस काल" ॥ २९६ ॥

२३०६ फिर कही बात सारी कि वीर शत्रुघ्नदेव ने अपने पर—
जैसे उत्तरदायित्व लिया पहले दिन चर्चा छिड़ने पर ॥
२३०७ सब कहने में भी मर्यादा माण्डवी पूर्णतः थी रखती।
कोई भी वचन. अमर्यादित बोलती हुई कब थी दिखती ??
२३०८ अन्त में कहा उसने कि "अभी बोलते बोलते, एक बात –
मेरी चिति में सहसा उभरी, वह भी कह दूं हे पूज्य तात !!
२३०९ है यही कि इसका नाम 'अश्वपति-प्रवचन-संग्रह' रखकर हम -
दोनों दलवाले, यह प्रसाद वितरित करते रह लें अनुपम ॥
२३१० प्रत्येक ग्राम के पुरुषों की पंचायत में प्रति हो इसकी।
दूजी प्रति से लाभान्वित हो महिलाओं की पंचायत भी ॥
२३११ यों, सब गाँवों में दो दो प्रति रह लें इसकी, सुपाठ जिनका।
निज निज साप्ताहिक गोष्ठी में नरनारी क्रमशः सुनें सदा ॥
२३१२ नगरीय क्षेत्र के सभी मुहल्लों में जो नारीनर–मण्डल—
इक इक हों अलग अलग, जिनका उद्देश्य समूहोन्नति अविकल ॥
२३१३ प्रति, उन सबमें भी, एक एक वितरित की जावे जिनका वे-
सबके हितार्थ सुप्रयोग करें जिससे वैदिक सुबोध आवे ॥

२३१४ अपने सँग कतिपय प्रतियाँ हम लेजाएँ अवधपुरी में भी—
उस राज्य में बनें लाभान्वित, सब ग्राम, नगर भी ऐसे ही ।।
२३१५ साँकाश्यपुरी में जाने का अवसर आने की राह कहाँ—
इस बारे में तक सकती हूँ भेजूँगी प्रतियाँ शीघ्र वहाँ ।।
२३१६ मिथिला के भी सब नगर ग्राम, प्रतियाँ पाएँगे उस प्रकार ।
केकयप्रदेश में ये वितरित होने वाली हैं जिस प्रकार ।।
२३१७ इस भाँति चार राज्यों के तो नारीनर लाभ उठा पाएँ ।
कितनी ही तृषिता चितियों की ये प्रवचन प्यास बुझा पाएँ ।।
२३१८ इसके अतिरिक्त, पधारेंगे मुनिवर कौशिक परसों ही जब—
उनकी सेवा में भी इसकी प्रतियाँ कुछ धर दूँगी मैं तब ।।
२३१९ विश्वास मुझे पूरा कि साथ अपने, वे उनको ले जाकर—
वितरित कितने ही राज्यों में कर देंगे, उपयोगी पाकर ।।
२३२० उपरुक्त सहस्रशः नारीनर होने की बात कही थी जो—
मैंने, वह इस प्रकार श्रीमन् ! अक्षरशः पूरी सार्थक हो ।। ”
२३२१ सु-प्रशंसा कर बोले नृपवर-“ माण्डवी बहू ! तुम धन्य-धन्य ।
वैदिक प्रचार में समुत्साह रखतीं, आहा, कितना अनन्य ।।
२३२२ मैंने सोचा भी न था कि यों ‘ शतलेख ’ प्रयुक्त हो सकेगा ।
वह राजकीय उपयोग हेतु ही अब तक माना जाता था ।।
२३२३ फिर, मेरे वचनों का ऐसा हो सकता है प्रचार, यह भी—
मुझमें विचार ही आपाया अब तक बिल्कुल था नहीं कभी ।।
२३२४ अच्छा, तो इतना और करो, परिशिष्ट रूपमें वे सु-वचन—
इसमें लिखकर जोड़ना तभी जब कौशिक मुनि दें शुचि प्रवचन।।
२३२५ अन्यथा रहेगा अपूर्ण ही वेदों के मुख्य विषय वाला—
प्रकरण, जिसका प्रवचन-प्रभार मुनिवर पर मैंने है डाला ।।
२३२६ उनसे तुमको सुनवाऊँगा जो कर्मकाण्ड-विषयक विचार—
उनका भी मम वचनों के सँग, होना आवश्यक है प्रचार ।। ”
२३२७ यह सुन, बोली माण्डवी कि “ है निर्देश आपका अत्युत्तम ।
इसके अनुसार करूँगी मैं, सचमुच रहजाता उतना कम ।।

२३२८ वह बने 'अश्वपति-कौशिक-प्रवचन संग्रह' परिवर्द्धित होकर-
उसके महत्व में भी सुवृद्धि होगी परिशिष्ट श्रेष्ठ जुड़कर ॥
२३२९ रख छोड़े प्रश्न अनेक छाँटकर मैंने, यज्ञ विषय के, हैं।
जिनके उत्तर उन मुनिवर के श्रीमुख से चाहूँ सुनना मैं ॥
२३३० प्रश्नोत्तर की विधि से उनका उपदेश मुझे दिलवा देवें।
मम शंकाएँ, हे पूज्यप्रवर ! कौशिक मुनि को सुनवा देवें ॥
२३३१ 'क्यों है आवश्यक यज्ञ ?' 'किसे करना चाहिये उसे' 'कैसे?'
'क्या हानि है नहीं करनेमें'–लिख रखे प्रश्न ऐसे-ऐसे ॥
२३३२ आपने प्रश्न करने की दी सुविधा जैसी थी पूर्णतया।
वैसो ही उनसे भी मुझको दिलवा दें हे भगवन् ! कृपया ॥
२३३३ उस दिन सुखदा मामीजी ने क्रोधी होने की उनके, जो-
थी कही बात, उस पर से हीं यह कहना पड़ता है मुझको ॥
२३३४ प्रतिवाद आपने तुरन्त ही यद्यपि कर दिया, कथन का, था।
मैं तथापि रखती हूँ अपने उर में सुक्षीण-सी आशंका ॥
२३३५ पहले वे राजा थे, इससे यह नहीं असंभव है कि उभर-
आवें संस्कार क्रोध के फिर, केवल इस कारण मुझको डर ॥
२३३६ यह तो परिशिष्ट के विषय में हो गई बात, पर सब प्रवचन-
आपके, बहुत ही श्रेयस्कर, उनमें प्रभूत है विद्या-धन ॥
२३३७ स्वाध्याय परायणता पूरी उनसे आपको झलकती है।
अध्ययनशीलता की झाँकी छविमयी अनूठी दिखती है ॥
२३३८ मेरा अनुमान है कि उनमें जिन आर्षग्रन्थ का मिले सार-
उन सबकी संख्या अवश्य हो न्यूनातिन्यून है दो हजार ॥
२३३९ फिर, है दिव्यानुभूति का भी उनमें पूरा-पूरा प्रसार।
कोई-कोई तो पूर्णतया मौलिक, नवीन हैं सद्विचार ॥
२३४० शुचि वेदमन्त्र भी, तीसों ही प्रवचन में, लगभग सौ आये।
मैंने औसत से तीन-तीन गिनकर हरेक में हैं पाये ॥

२३४१ उनकी आपने सु-व्याख्या की, वैज्ञानिक विधि से है जैसी। ०
शायद ही कोई ऋषि मुनि भी अति सरल कर सकेंगे वैसी ॥
२३४२ समुचित गौरव है मुझे कि यह सब हो पाया मेरे कारण।
प्रवचन-संग्रह निर्माण कार्य संभव बन सका असाधारण ॥
२३४३ अधिकांश आपको ही इसका है श्रेय, किन्तु इतने पर भी—
क्यों आत्महीनता का अनुभव करके बन लूँ आत्मिक रोगी ॥
२३४४ स्वल्पांश मुझे भी श्रेय कि मैं इन सबका संग्रह कर पाई।
पर, गर्व—भावना तनिक नहीं मुझ में इस से है आ पाई ॥
२३४५ देती ओंकारनाथ प्रभुवर अन्तर्यामी को धन्यवाद।
मैं सदैव इसके लिये कि जो भरता था मुझ में समाह्लाद ॥
२३४६ भीतर से ही उल्लास तथा उत्साह उमड़ता मुझ में था।
जब जब मैंने इन प्रवचन के अंकन का प्रतिदिन कार्य किया ॥"
२३४७ कुछ देर चुप रही, फिर बोली माण्डवी, तनिक संकोच सहित।
(शायद रह मौन, सोचती हो- 'क्या बोलूँ अब मर्यादित ?')
२३४८ यों कहा कि "लखकर नाम 'भरत' ऋग्वेद संहिता में विभु का-
आपने कराया नामकरण छब्बीस वर्ष पहले जिनका ॥
२३४९ वे सुयोग्य जो दौहित्र आपके हैं, उनको प्रभु से दूजा —
मानकर सदा ही करती हूँ मैं भर्त्तास्वरूप में पूजा ॥
२३५० 'प्रवचन संग्रह' लिखने में था उनका भी पूरा मुझे ध्यान।
यह उन्हें समर्पित करना है— ऐसा था मैंने लिया ठान ॥
२३५१ शोभा दीदी से तो विचार यह अपना, कह भी हूँ आई।
पर नहीं आपसे कहने का, अब तक थी साहस कर पाई ॥
२३५२ अब अनुमति दें, तैयार वीर शत्रुघ्न से इसे करवाऊँ।
प्रवचन सुनने के लिए नहीं परसों तक, भगवन् ! आ पाऊँ ॥
२३५३ फिर, कौशिक मुनि से आप मुझे सुनवा देवें परसों प्रवचन —
बस, ग्रामों के पर्यटन हेतु जाऊँगी उसके अगले दिन ॥"

---

० यहां बरबस हमें याद आ गई एक छोटी सी पुस्तिका—'वेद से : वेदार्थ' नाम व.ली की, जो श्री रुलियाराम एम एस.सी. कृत है। ('ओ.प्रे')

२३५४ हो गया समय था वहुत अतः कह "तथास्तु" राजा चले गये।
देने, प्रवचन का समय, अन्य कार्यों में, जो हों भले, नये ॥

सहचर सहचरी संभाषण (बाईसवाँ प्रकरण)

२३५५ नृपवर से प्रवचन सुनने में घण्टे भर का जो प्रतिदिन ही —
लगता था ससय माण्डवी को, अब उसकी पूरी बचत हुई ॥
२३५६ सो, वही दिया उसने 'प्रवचन संग्रह' को पुनः देखने में।
त्रुटियाँ सुधार लीं वे सब जो आई थीं कहीं लेखने में ॥
२३५७ फिर लिखा 'समर्पण-लेख' तथा 'प्राक्कथन' विनम्र सुभाषा में-
जिसमें वे भी लिखदीं कि रहीं जो उसकी दो अभिलाषाएँ ॥
२३५८ "अधिकाधिक नारीनर 'प्रवचन-संग्रह' से लाभ उठा पाएँ।
केवल समूहशः नहीं बल्कि व्यक्तिशः सुशिक्षा अपनाएँ ॥
२३५९ ग्रामों की पंचायतें और नगरों के सारे हो 'मण्डल'।
इक इक प्रति पर से करवा लें प्रतियां शतशः रख चाह प्रबल ॥
२३६० फिर दें हरेक नारीनर को दैनिक स्वाध्याय हेतु प्रति वह।
कम से कम एक पाठ प्रतिदिन पढ़ने का उनसे कर आग्रह ॥
२३६१ जब एक माह में हो समाप्त, दूसरी बार प्रारम्भ करें।
इस भाँति निरन्तर पारायण द्वारा उर में प्रेरणा भरें ॥
२३६२ आजीवन कई बार इसका अध्ययन सभी करते रह लें।
व्यवहारों में भी ये बातें, भरसक प्रयत्न करके, गह लें ॥
२३६३ इसमें शारीरिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक, तीनों ही—
उन्नतियों के उत्तम उपाय वर्णित, शैली में, आप्तों की ॥
२३६४ दे यह संग्रह, जन-जीवन को वैदिक भावों की शुचि ढेरी।
हों व्यक्ति व्यक्ति भी लाभान्वित; बस, ये दो अभिलाषा मेरी ॥
(दोहे) 'प्रवचन-संग्रह' को दिया, जुटकर अन्तिम रूप।
आत्मतोष पाया कि अब, यह बन सका अनूप ॥२९७॥

प्रियतम से फिर विनय की–" देखो इसको, देव !
त्रुटियाँ कैसे लखसकूं इसकी मैं स्वयनेव " ॥२९८॥
२३६५ इसपर, हँसकर प्रियतम बोले, " प्रियतमे! तुम्हारा आत्मा तो–
मुझसे भी कहीं अधिक ऊँचा, जो रिझा सके परमात्मा को।
२३६६ पति-पत्नी यद्यपि हम तुम हैं, इस बार, तथापि सभी नाते–
आत्मिक संस्तर पर कहाँ तनिक भी हैं महत्वमय रह पाते ??
२३६७ मैंने तो गुरुवर वसिष्ठ से पातंजल–योग शास्त्र पढ़कर–
एवं उसमें दर्शिता साधना की सोपानों पर चढ़कर ॥
२३६८ आत्माओं की विशेषता पर एवं नातों के रहस्य पर–
भरपूर मनन कर लिया तभी परखा है तव चिति का संस्तर ॥
२३६९ प्रतिवाद–भीति है कुछ न मुझे, कहने में अपना यह विचार–
फिर दुहराता हूँ मैं कि 'तुम्हारा चेतन, मुझसे है उदार ॥'
२३७० हाँ, इतना अवश्य है कि मात्र उन्नीस बीस जैसा अन्तर ।
सो, अनुचर मुझे न बना सको, मैं रह लूँगा सुयोग्य सहचर ॥
२३७१ जब नहीं तुम्हारे लेखन में त्रुटि होना मुझे लगे सम्भव–
तब क्यों उसको इस हेतु लखूँ, भर अपने में मिथ्या गौरव ??
२३७२ इतने पर भी, सहचर को तुम अनुचर समझो, तो आज्ञा दो–
ऐसी कि–' त्रुटि किसी प्रकार भी इसमें निकालकर दिखलाओ'' ।
२३७३ गम्भीर बात कहते-कहते, जब विनोद पर आगये भरत ।
माण्डवी तब हुई सुगांभीर्यसंयुक्ता मुद्रामयी तुरत ॥
२३७४ बोली कि " हँसी इस बारे में अच्छी लगती है नहीं मुझे ।
अनुचर तुमको समझूँ'-ऐसी क्या चेष्टा मेरी दिखी तुम्हें ??
२३७५ प्रियतम ! सोचो भी मत कि सहचरी करे कभी कुछ भी ऐसा -
जिससे सहचर का मान घटे, अनुचर समझा जाना कैसा !!
२३७६ पर, मुझे सहचरी बना सके तुम पूरी तरह नहीं अब तक ।
शायद चाहो कि अनुचरी ही मैं बनी रहूँ जीवन भर तक ॥
२३७७ अन्यथा मुझे भी राजयोग के पावन पथ पर साथ-साथ–
चलने को सम्प्रेरित करते, सँगसँग ले चलते थाम हाथ ॥

२३७८ मैंने तो पहले ही दिन से यह ठान लिया था, हे सहचर !
जो ज्ञान तुम्हारे नानाजी देंगे, वह सारा संग्रह कर–
२३७९ हार्दिक सुप्रेमपूर्वक तुमको सोत्साह समर्पित कर दूँगी।
शोभा दीदी को भी इसकी सूचना आज ही तो देदी ॥
२३८० नानाजी को भी अभी-अभी यह सूचित करके आई हूँ।
इस पर से ही जाँचो कि तुम्हारा ध्यान छोड़ कब पाई हूँ ॥
२३८१ पर, तुमने तो पुस्तकें, योगविषयक, लाकर, एकाकी ही–
स्वाध्याय का रखा क्रम उनके, मानों मैं अनधिकारिणी थी ॥
२३८२ जो वसिष्ठजी से मिला ज्ञान, उससे भी वंचित मुझे रखा।
अपनी अनुभूतिराशि का भी परिचय पलभर क्या कभी दिया??
२३८३ नातों की वैदिक मर्यादा, यदि नहीं भुलाई जावे, तो–
निश्चय ही तुम सम कभी किसी को इस बारेमें भ्रान्ति न हो ॥
२३८४ क्यों भूतकाल को ही अपना आधार बनाकर हम जी लें।
जो कुछ हम वर्त्तमान में हैं उसका महत्व भी क्यों भूलें ??
२३८५ आधी है, सही तुम्हारी, आधी मेरी बात सही, प्रियतम !
आध्यात्मिकता, सांसारिकता; दोनों का ही महत्व है सम ॥
२३८६ जीवनरूपी गाड़ी के ये दो पहिये हैं जो समान ही–
महिमा वाले हैं उभय और गरिमा भी है समही इनकी ॥
२३८७ हों आत्मिक संस्तर पर मैं तुम, चाहे उन्नीस-बीस जैसे।
पर, इससे पति-पत्नी वाला सम्बन्ध, महत्व तजे कैसे??
२३८८ गार्हस्थ्य-धर्म का जो पावन आदर्श बताया वेदों ने।
एवं भार्याभर्ता के जो कर्त्तव्य बखाने आप्तों ने ॥
२३८९ उन सब पर यदि सुध्यान दो तो ऐसा न कभी कह पाओगे।
पूरी प्रतीति है मुझे कि मेरी प्रमान्यता अपनाओगे ॥
२३९० फिर, जो विवाह के अवसर पर हैं दिये परस्पर 'वचन' अहो।
उनका भी क्या तुम सम विचार धारण करने से भंग न हो ??
२३९१ मैं तो समस्त नातों में से पतिपत्नी का ही सर्वोत्तम–
सम्बन्ध समझती हूँ, मेरी चिति में इस पर है तनिक न भ्रम ॥

२३९२ चाहे कुछ भी हो, मानूँ मैं तुमको परमेश्वर से दूजा।
करती रहती हूँ देव ! तुम्हारी सदैव निज उर में पूजा ॥"
२३९३ अत्यन्त प्रभावित हुए भरत, यह विवेचना सुनकर उसकी—
जो सच्चे अर्थों में उनको दिख रही इस समय थी देवी ॥
२३९४ फिर पश्चातापयुक्त स्वर में बोले कि "सहचरी अब तुमको–
प्रत्येक क्षेत्र में रखलूँगा, जो बीत चुका, भूलो उसको ॥
२३९५ मैं आत्मिक संस्तर पर तुमको अपने से ऊँचा जान सका।
पत्नी का परन्तु भव्यरूप था कभी नहीं पहचान सका ॥
२३९६ पति के नाते जो कुछ मेरा कर्त्तव्य है, उसे तुमने अब–
है सुझा दिया, जब, करूं न मैं तब उसको, संभव मुझसे कब ??
२६९७ विश्वास रखो पूरा कि रखूँ सहचरी, रहूँ बनकर सहचर।
अनुचरी बनाऊँ नहीं तुम्हें, बन लूँ न तुम्हारा मैं अनुचर ॥"

(दोहे) तदनन्तर कुछ देर चुप, रहे श्री भरत देव।
वैसे, अधिक न बोलने की थी उनकी टेव ॥२९९॥
पर जब कहना थे शुरू करते कोई बात।
लगते थे उस समय तो, वक्ता अति निष्णात ॥३००॥

२३९८ पत्नी की आंखों में आँखें डालकर देखते हुए कहा -
पति ने कि "नहीं गंभीर भाव तब जाता मुझसे, अहो, सहा ॥
२३९९ तुम कहती थीं कि 'हंसी ऐसी है नहीं मुझे बिल्कुल भाती'।
मैं कहता हूँ कि 'पसन्द नहीं यह गंभीरता मुझे आती।'
२४०० तुम तो केवल 'प्रवचन मंग्रह' कर रही समर्पित हो मुझको।
पर मैंने आत्मसमर्पण ही कर दिया अभी रानी ! तुमको ॥
२४०१ अब तो छोड़ो गाम्भीर्य और आओ खुलकर हँस लें मिलजुल"
बस, इतना कहना था कि लगी गूँजने कक्ष में 'खिल खिल खिल' ॥
२४०२ चतुरा पत्नी, द्वार के निकट जा पहुँची तुरन्त ही बढ़कर।
आंखें चमका, हँसते हँसते कर लिये कपाट बन्द, कसकर ॥
[उन दोनों में क्या क्या बातें फिर होती रहीं, पता किसको ?
२४०३ वर्तन कैसे कैसे आपस में रहे कौन जाने इसको ??]

२४०४ दूजे दिन, कहा माण्डवी ने शत्रुघ्न देव को बुलवाकर —
"देवर जी ! यह प्रवचन संग्रह टंकित करवा लो तुम जाकर ॥
२४०५ शत लेख यन्त्र की मामाजी सुविधा दिलवा देंगे तुम को।
इक सहस्र प्रतियाँ करवा कर तैयार, आज ही दो मुझ को ॥
२४०६ कल कौशिक मुनि जब आएँगे तब उनका प्रवचन होने पर।
परिशिष्ट बनादूँगी तुरन्त जो टंकित करवाना सत्पर ॥
२४०७ सब प्रतियों के संग उसे जोड़ कल ही ग्रंथित करवा लेना।
मुनिवर समेत सब लोगों को वह एक एक प्रति दे देना ॥
२४०८ परिशिष्ट सहित पूरे संग्रह का टंकण होगा यदि कल ही -
तो बड़ी असुविधा रह लेगी, शायद पूरा हो काम न भी ॥
२४०९ इसलिये कहा जैसा मैंने वैसा ही करो, पाण्डुलिपि लो।
सब अन्य कार्य तजकर पहले इस पर हो ध्यान पूर्णतः दो ॥"
२४१० कहकर 'जो आज्ञा' गही पाण्डुलिपि तथा गये शत्रुघ्न वीर-
कितनी ही त्वरा मध्य भी जो थे तनिक न दिख पाते अधीर ॥
२४११ मामाजी से मिलकर समुचित टंकण प्रबंध तब करवाया।
पूरी जिम्मेदारी से वह सत्कार्य शीघ्र ही निवटाया ॥
२४१२ पहले पत्नी को वतलाईं वे हजार प्रतियाँ, 'सग्रह' की।
फिर सँग चलने का प्रेम भरा पति ने करडाला आग्रह भी ॥
२४१३ कर मान्य जिसे, श्रुतिकीर्ति चली शत्रुघ्न देव के संग तुरत।
जा पहुँचे दोनों वहाँ कि बैठे जहां दिखे माण्डवी-भरत ॥
२४१४ दोनों, अशोक से विनोदमय बातें करते थे उस वेला।
(तीनों ने शायद 'छुपाछुपी' का खेल अभी ही था खेला ॥)
२४१५ लख इन दोनों को, अशोक से उन दोनों ही ने एक संग—
यह कहा कि 'तनिक काम करलें, फिर खेलेंगे उरभर उमंग ॥"
२४१६ उसके जाने पर चारों ने 'प्रवचन सँग्रह' की चर्चा की।
स-विशेष, अग्रजा की अनुजा ने शब्दमयी अभ्यर्चा की ॥
२४१७ सायं-संध्योपासन का था सन्निकट समय आ रहा यतः।
चलपाई चर्चा अधिक नहीं, अनिवार्यतया रुक गई अतः ॥

२४१८ यज्ञ की सभी तैयारी का, भोजन के बाद, निरीक्षण कर–
मामाजी ने सन्तोष व्यक्त कर दिया, सुपूर्ण परीक्षण कर ॥
२४१९ माण्डवी लगी कहने उनसे–"मामीजी ने था भार लिया।
मेरे समक्ष, नानाजी को स्वेच्छापूर्वक आश्वस्त किया ॥
२४२० सो, आप उन्हें विवरण प्रस्तुत कीजिये कि सब संतोषजनक।
है तैंयारी हो चुकी, लीजिये उनसे ही प्रमाण–पत्रक ॥
२४२१ यह नहीं अवज्ञा क्या उनकी, जो आप उन्हें पूछते नहीं।
पहले दिन जैसा दिखा दृश्य, वैसा न देखना पड़े कहीं ॥
२४२२ उस बार आपने माना था ऐसा कि उपेक्षित हुए आप।
इसबार क्यों न वे उपेक्षिता अपने को मानें त्यों अमाप ॥"
२४२३ सुखदा हँसती हँसती बोली- "हो गई संधि जो अटूट तब--
वह किसी तरह भी नहीं टूट सकती हम दोनों की है अब ॥
२४२४ तुम वही दृश्य लखना चाहो तो रहना होगा निराश ही।
दोनों पक्षों में किसी भ्रान्ति की आशंका तक नहीं रही ॥"

(दोहे) तबतक अनुचर ने दिया, आकर यह संवाद।
" किया बहू जी को अभी नृपवर ने है याद " ॥३०१॥
कहा माण्डवी ने कि " वे पूछेंगे यह बात।
रही बीच में आज की ही तो केवल रात ॥३०२॥
सभी व्यवस्था, यज्ञ की, है तो रीत्यनुसार ?
त्रुटि तो उसमें है नहीं, कुछ भी किसी प्रकार ??॥३०३॥

२४२५ उत्तरदायित्व आपने जब अपनी इच्छा से ग्रहण किया।
तब समीचीन ही यह कि आपको नानाजी ने स्मरण किया ॥
२४२६ अन्यथा बुलाये जाते श्री मामाजी ही सामान्यतया।
पर आप यज्ञ के बारे में उत्तरदायिनी विशेषतया ॥"
२४२७ सुखदा ने कहा कि "स्वामी का विश्वास पूर्णतः करती हूँ।
सो इनकी सुतुष्टि को अपनी मानकर पूछने पर कह दूँ ॥
२४२८ तैयारी सब सन्तोषजनक हो चुकी, यज्ञ की, हे भगवन् !
कोई भी त्रुटि रहसकी नहीं, विश्वास रखें मुझ पर श्रीमन् ॥"

२४२९ यह सुनकर अनुचर समेत सब हँस पड़े उपस्थित नर नारी।
(जिनमें परोसने वाली भी थीं भृत्याएँ प्यारी प्यारी ।।)
२४३० भूपति ने वह तो पूछा ही, अनुमान माण्डवी का था जो।
उत्तर में सुखदा ने कहकर जो आई थी, कह डाला सो ।।
२४३० अन्त में कहा नृप ने कि पधारे अभी अभी कौशिक मुनिवर।
सो, उनकी नहीं प्रतीक्षा का अब प्रश्न रह गया रत्तीभर ।।
२४३२ पुर के बाहर उपवन में वे ठहरे हैं, प्रातः जब आएँ—
तब नियत समय पर सुयज्ञ का आरम्भ करा निश्चय पाएँ ।।
२४३३ इसमें कोई गड़बड़ न पड़े, यह कहने तुम्हें बुलाया था।
अब तुम जा सकती हो वापिस, निर्देश यही, बस, देना था।।"
२४३४ मामीजी, श्वसुर महोदय की सुन बात नहीं लौटीं जब तक।
माण्डवी प्रभृति सब जमे रहे, भोजन सुकक्ष में ही तब तक ।।

(दोहे) आकर सुखदा ने कहा, सारा वार्तालाप।
सुनकर सबके उरों में गया हर्ष अति व्याप ।।३०४।।
निज निज कक्षों में गये, शयन हेतु सब लोग।
था हरेक यह सोचता- 'कल है प्रवचन-योग' ।।३०५।।
भरत-प्रिया के हृदय में था विशेष उत्साह।
कर्मकाण्ड का विवेचन सुनने की थी चाह ।।३०६।।

यज्ञ और उसकी महिमा (तेईसवाँ प्रकरण)

२४३५ पूनम के प्रभात में, होते ही सूर्योदय; प्रारम्भ हुआ—
शुभ यज्ञ, महामुनि कौशिक ने 'ब्रह्मा' का आसन ग्रहण किया।।
२४३६ थे नृपति 'अश्वपति' विधुर अतः युवराज युधाजित् सह सुखदा।
यजमान बने, यजमानिन का आसन सुखदा ने तुरत लिया ।।
२४३७ विधिपूर्वक ऋत्विग्वरण हुआ, तदनन्तर ध्वनि गुंजायमान—
वैदिक मंत्रों की, वहाँ लगी होने; दर्शक थे विद्यमान ।।

२४३८ उनमें ही थे माण्डवी, भरत, श्रुतिकीर्ति और शत्रुघ्न वीर।
सब समागतों के स्वागत में रत रहे 'अश्वपति' भूप, धीर ॥
२४३९ सबसे पहले 'संकल्प' लिवाया गया सुयज्ञ हेतु, उत्तम।
जिसमें दिन, मास, वर्ष की भी गणना का प्रामाणिक था क्रम ॥
२४४० प्रातः स्मरणीय मंत्र पाँचों, 'संकल्प'—ग्रहण पर, पढ़े गये।
ऋग्वेद-संहिता के सप्तम मंडल में से जो चुने गये ॥ ●
२४४१ फिर ब्रह्मयज्ञ (अथवा 'संध्या' सामूहिक रीत्या करवाई)
मुनि कौशिक ने आवाज़ 'एक श्रुति' स्वर में सबकी मिलवाई ॥
२४४२ सारे ही यज्ञकार्य में यह स्वर सौम्य ('एक श्रुति') बनारहा।
उन 'ब्रह्मा' के निर्देशों को सबने, रह श्रद्धान्वित, गहा ॥
२४४३ दर्शकगण में से भी सँग-सँग जो करते थे मन्त्रोच्चारण—
माण्डवी उन सभी में अपना रख सकी महत्व असाधारण ॥
२४४४ 'ईश्वर (सं) स्तुति प्रार्थनोपासना' वाले फिर शुचिमंत्र आठ।
जो सुविख्यात × उनका सबने मिलजुल अत्युत्तम किया पाठ ॥
२४४५ इन आठों का शब्दार्थ और भावार्थ बताया मुनिवर ने।
इक-इक सुमंत्र की समाप्ति पर; (जो गहा सभी नारी-नर ने)
२४४६ तदनन्तर वे इकतीस मंत्र अति प्रीति भक्ति से पढ़े गये।
विनियुक्त 'स्वस्तिवाचन' में जो आप्तों द्वारा हैं किये गये ॥
२४४७ इनमें चारों ही वेदों के हैं प्रथम मंत्र भी चारों ही— ००
इस ओर भी यथा-स्थान, ध्यान दिलवाते गये (सु) 'ब्रह्मा' जी ॥
२४४८ अबतक बीसियों बार बोले ये मन्त्र, 'स्वस्तिवाचन' के, थे।
पर हुआ माण्डवीं का परिचय अब उनकी इस विशेपता से ॥

● ऋग्वेद, ७।४१।१-२-३-४-५ ("आ. प्रे,")

× क्रमशः यजु० ३०।३, यजु. १३।४, यजु. २५।१३, यजु. २३।३ यजु. ३२।६, ऋग् १।१२१।१०, यजु. ३२।१० एवं यजु ४०।१६—ये 'ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना' के ८ मंत्र सुविख्यात हैं। ("ओ. प्रे.")

---

०० इकतीस मंत्रों में से प्रथम तो ऋग्वेद का है, २३ वां यजुर्वेद का; २९ वां सामवेद का और अन्तिम (३१ वां) अथर्ववेद का है। ये चारों ही चारों वेदों के प्रथम-प्रथम मंत्र हैं। ("ओ. प्रे.")

२४४९ कौशिक मुनि के संचालन का उस पर था पावन शुभ प्रभाव।
थोड़ा भी उसे न दिखपाया ऐसा कि रखें क्रोधी स्वभाव ॥
२४५० झुँझलाना तक भी नहीं लखा उनका, त्रुटि कोई होने पर।
वे अपितु स्नेहपूर्वक सुधार थे करवाते सस्मित रहकर ॥
२४५१ फिर उन मंत्रों का हुआ पाठ जिनको सब कहें 'शान्ति(प्र)करण'
संख्या में अट्ठाईस कि जो चारों वेदों से किये ग्रहण ॥

(दोहे) आप्तों ने ही था किया इनका भी विनियोग।
पूर्वकाल से था चला आता सतत प्रयोग ॥३०७॥
हुए आचमन प्रभृति सब सुरीति के अनुसार।
अग्न्याधान किया गया विधिवत् भले प्रकार ॥३०८॥

२४५२ सामान्य और (सु)प्रधान होम करवाकर पौर्णिमेष्टि की भी–
आहुतियाँ विशेष दिलवाईं, पूरे सतर्क थे 'ब्रह्मा' जी ॥
२४५३ तब, यजुर्वेद के प्रथम और दूजे अध्यायों को पढ़कर–
आहुतियाँ दीं ऋत्विग्गण ने, मुनि के निर्देशों पर चलकर ॥
२४५४ मन्त्रोच्चारण से पूर्व कहा 'ब्रह्मा'जी ने कि "विषय इनका– +
है दर्शपौर्णिमास्येष्टिपरक इसलिये इन्हें विनियुक्त किया ॥
२४५५ दर्शेष्टियाग में भी ये ही दोनों अध्याय लिये जाते।
विनियोग, पूर्व से है इनका; हम सुनते यही चले आते ॥"
२४५६ इनके अतिरिक्त, अनेक मंत्र ऐसे बुलवाये मुनिवर ने–
आया था पावन शब्द "पौर्णमासी" प्रत्यक्ष तथा जिनमें ॥
२४५७ माण्डवी आज ही लखपाई विनियोग, 'इष्टि' में, इस प्रकार।
इन मन्त्रों का, जिनमें सचमुच संकेत, 'इष्टि' का, था उदार ॥
२४५८ उसके मनमें आया कि अमावस्या की पूछे बात अभी।
फिर मौन रही यह सोच कि उत्तर इस वेला मिल सके न भी॥
२४५९ 'ब्रह्मा' जी उसके मनोभाव, बिन कहे भी, तुरत जान गये।
सो, कहा उन्होंने पुकार कर "शंकित क्यों हो, माण्डवी, शुभे ॥

+ 'देवता' = मन्त्र का विषय (जो उसमें वर्णित हो) ["ओ. प्र."]

२४६० पृच्छा में है संकोच तुम्हें तो मैं स्वयमेव कहे देता।
सर्वत्र, समाधानों का, हूँ दायित्व, अहो, बरबस, लेता ॥
२४६१ सुनलो, दर्शेष्टिपरक भी हैं शुचिमन्त्र कई बिल्कुल ऐसे–
ये पौर्णिमेष्टि वाले तुमने आहुतिसंयुक्त सुने जैसे ॥
२४६२ पर्याय शब्द 'अनुमति' जो है उसका अभिप्राय "पौर्णमासी"।
है शब्द सुपावन 'दर्श' बड़ा प्रख्यात, अमावस्या–वाची ॥
२४६३ उनमें हैं 'दर्श' 'अमावस्या' आये सुशब्द प्रत्यक्षतया।
यज्ञोपरान्त लेना मुझसे, तुम चाहो तो, यह बोध नया ॥"+
२४६४ कर नमन, माण्डवी ने कृतज्ञतायापन किया किन्तु कुछ भी–
वह बोली नहीं ताकि रह ले मर्यादा अखण्ड, सुयज्ञ की ॥
२४६५ अब, प्रभु को धन्यवाद–सूचक बुलवाये सुमन्त्र मुनिवर ने।
अधिकांश यजुर्वेदीय तथा कुछ अन्य वेद के थे जिनमें ॥
२४६६ 'ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः' टेक वाले छः मंत्र तथा कतिपय।
ऐसे जिनमें साक्षात् 'नमस्ते' शब्द ø नमन का, गौरवमय–
२४६७ आता ही था, वे सभी कराये उच्चारित आहुतिपूर्वक।
चिति हुई माण्डवी को, इन सबका संग्रह करने को उत्सुक ॥
(दोहे) ताड़ गये मुनिवर पुनः उसके उर की बात।
क्योंकि मनोविज्ञान में थे पूरे निष्णात ॥३०९॥

\+ यज्ञ के सन्दर्भ में (विशेषतया इष्टि की दृष्टियों से) 'अनुमति' =पूर्णमासी एवं 'दर्श' = अमावस्या– ये पारिभाषिक शब्द हैं ऐसा जानिये। यहां यह भी विशिष्टोल्लेख हम कर देना चाहते है कि ऐसी 'इष्टियाग पद्धति' पहले बार हमारे पूज्य पिताजी श्रद्धेय स्वामी सूर्यानन्द जी आर्यसंन्यासी (अब दिवंगत) ने ही विनियोगपूर्वक बनाई है– अस्तु। ("ओ प्रे.")

ø यहां केवल दो उदाहरण दिये जाते हैं, विस्तार भय से अधिक वेदवाक्य नहीं लिखते हैं– (१) शिवोनामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा माहि ँसीः। (यजु. ३/६३, पूर्वार्ध) (२) नमस्ते भगवन् अस्तु। (इनमें प्रत्यक्ष 'नमस्ते' आया है।) ["ओ प्रे."]

कहा कि " लिख लेना इन्हें अभी, यज्ञ के वाद ।
तव उत्सुकता निरखकर, शुभे ! मुझे आह्लाद ॥३१०॥
देवी हो माण्डवी ! तुम, दिव्य तुम्हारे भाव ।
जिनका मुझपर भी हुआ, हर्षद भव्य प्रभाव ॥" ॥३११॥

२४६८ पुनरपि मुनि को प्रणाम करके उसने पहले के ही समान ।
करदी ज्ञापित निज कृतज्ञता, पूरा पूरा दे सु–सम्मान ॥

२४६९ पूरे पौने दो घण्टे में वह यज्ञ–कार्य निबटा सारा ।
था वातावरण बड़ा उत्तम, प्यारा प्यारा, न्यारा न्यारा ॥

२४७० माण्डवी शुभा कल्याणी को सबसे अच्छी जो बात लगी–
वह यही कि विषय सूचना भी प्रत्येक मंत्र के पूर्व रही ॥

२४७१ एवं समस्त मन्त्रों के सँग यह 'ब्रह्मा' जी ने दिया बता–
क्या है उनका पूरा पूरा, अध्याय प्रभृति के सहित, पता ॥

२४७२ प्रारम्भ में कहा यह कि " 'विषय' ही कहलाता 'देवता' अहो ।
यह शब्द पारिभाषिक, यज्ञों का, है; इसमें कुछ भ्रान्ति न हो ॥"

२४७३ सब मन्त्रों का उच्चारण होता दिखा 'ओ३म्' पूर्वक उसको ।
'स्वाहा के पहले भी बुलता था 'ओ३म्', समाप्ति जताने को ॥

२४७४ मंत्रों के बीच बीच में जो 'स्वाहा' आते थे, उन सब पर–
आहुति देते थे नहीं, यही संकेत समझ वे ऋत्विग्वर ॥

२४७५ मिथिला, सांकाश्यपुरी एवं ससुराल में लखे यज्ञ कई ।
पर ये प्रणालियां प्रथमवार देखी थीं, अच्छी और नई ॥

२४७६ पूर्णाहुति के पश्चात् हुआ सामोक्त सु पावन दिव्य गान ।
जो विशिष्ट लोगों ने गाया, अन्यों ने केवल दिया ध्यान ॥

२४७७ जब ' वामदेव्यगायन ' का भी हो चुका सुकार्य , तब नृपतिवर–
बोले कि "विनय मैं करता हूँ, अब प्रवचन करें महा मुनिवर ॥

२४७८ पर, एक निवेदन है कि विषय, हो कर्मकाण्ड की महिमा का ।
जिसमें व्याख्यान किया जावे यज्ञों की महती गरिमा का ॥

● सामोक्त सुपावन दिव्यगान (विनियुक्त) का ही पारिभाषिक नाम ' वामदेव्यगान ' है । (' ओ. प्रे. ")

२४७९ विदुषी देवी माण्डवी कि जो प्यारी दौहित्र–वधू मेरी।
यह बीच बीच में प्रश्न करेगी, पावन चेतन से प्रेरी ॥
२४८० कृपया उनके उत्तर भी दें इसको जिनसे हो समाधान।
वस्तुत: बड़ी प्रतिभा इसमें, यह श्रवण में बहुत सावधान ॥
२४८१ जब मुझसे लेती रही ज्ञान, प्रश्नोत्तर की सुरीति से ही।
तब तीसों दिन में जंचा मुझे इसका अत्यन्त उच्च देही ॥
२४८२ पहले ही दिन इसने पूछा मुझसे कि वेद के मुख्य विषय–
कितने हैं, उनके बारे में विस्तृत दीजिये मुझे परिचय ॥'
२४८३ मैंने कर दिया तीन का तो क्रम क्रम से इसके प्रति वर्णन।
पर, कर्मकाण्ड के लिए कहा था यही कि मुनिवर' करें कथन'॥
२४८४ यज्ञ की इसी पर से तो थी आ गई मुझे उस समय याद–
मम पुत्रवधू भी याद दिलाने आई कुछ ही समय बाद ॥
२४८५ सो, आज हो गया प्र-सम्पन्न वह यज्ञ आपकी सुकृपा से।
प्रवचन सुनने का भी सुयोग आ सका ईश-अनुकम्पा से ॥
२४८६ पर इसी बीच सुखदा ने यों कह दिया कि 'हैं क्रोधी मुनिवर'।
ऐसा मैंने सुन रखा, अत: क्यों करे माण्डवी प्रश्नोत्तर ॥
२४८७ मैंने प्रतिवाद किया, फिर भी माण्डवी चाहती थी कि करूँ–
आपसे सिफारिश मैं इसकी, प्रश्नों की अनुमति दिलवा दूँ ॥
२४८८ बस, इसीलिये मैंने इसके बारे में इतनी बात कही।
वैसे तो बहुत जानकारी होगी इसकी आपको सही ॥"
२४८९ मुनिवर हंसकर बोले कि "अहो राजन् ! मैंने ही तो विवाह–
प्रस्ताविक, मिथिला में, इसका था किया, परख पावनोत्साह ॥
२४९० फिर भी आपकी सिफारिश के अनुसार औपचारिक अनुमति–
प्रश्नों की देता हूँ इसको, पूछे यथेच्छ यह मेरे प्रति ॥
२४९१ क्रोधी होने का दुष्प्रचार वे लोग अभी तक हैं करते–
जो मम नृपत्व में दण्ड भोगते मेरे द्वारा थे रहते ॥
२४९२ यह भरत जानता है कि गया था राघव-द्वय को लेने जब।
मैंने बिल्कुल भी क्रोध नहीं था किया किसी के प्रति ही तब ॥

२४९३ पर, उन झूठे लोगों ने ऐसी गप्प उड़ाई निराधार–
मानों मैं रहा अयोध्या में बनकर पूरा क्रोधावतार ॥
२४९४ इतना ही क्यों, वशिष्ठजी का द्वेषी कहकर बदनाम करें।
यद्यपि वस्तुतः परस्पर हम सख्य ही नित्य अभिराम धरें ॥
२४९५ परमेश्वर तक से संस्पर्द्धा करने का दोष लगाते हैं–
कहते कि 'भैंस, कौशिक मुनि ही, करके अभिमान, बनाते हैं॥'
२४९६ कितनी थोथी हैं ये बातें, फिर भी उड़ती जब कई बार।
तब सुखदा सम वनिता में भी उनसे आ पाते दुर्विचार ॥
२४९७ आता था क्रोध प्रथमतः कुछ, पर अब तो मुझे तरस उनपर–
आता है क्योंकि दण्ड देगा उन पापी जन को परमेश्वर ॥
२४९८ मैं 'तम् वो जम्भे दध्मः' का छः बार सुबह, छःबार शाम–
संध्योपासन में पारायण करके भी धारूँ क्यों न साम ॥+
२४९९ अब उसी 'अर्य' की न्यायमयी डाढ़ों में धरा, अहो, उनको।
जिसके अपत्यवत् बनने पर आर्यत्व प्राप्त हो जन-जन को ॥
२५०० हाँ, नर-नारी सब उसके ही सुतसुता समान रह सकें जब–
आर्यता पनप सकती उनमें सात्विकी वस्तुतः केवल तब ॥"
(दोहे) सुखदा ने तब तक किया, मुनि के प्रति प्रस्ताव।
"प्रातराश पहले करें, सारे महानुभाव ॥३१२॥
यह अनुमति दें, फिर करें निज प्रवचन प्रारम्भ।
ताकि ध्यान खींचे नहीं, रिक्त–सा जठर–कुम्भ ॥३१३॥
२५०१ संयमी आप तो हैं भगवन्! पर हम सब कर पाएँ न श्रवण–
प्रवचन को तबतक भलीभाँति जब तक न करें कुछ अन्नग्रहण ॥
२५०२ जितने समुपस्थित नारीनर, सबके ही लिये व्यवस्था है।
पहले से, प्रातराश विषयक, अनुमति की ही सुप्रतीक्षा है ॥"
२५०३ मुनिवर ने 'ओ३म्' कहा स्वीकृति देने की मुद्रा में ज्यों ही–
इक इक दोना उत्तम अमरस आया सबके समक्ष त्योंही ॥

+ ब्रह्मयज्ञान्तर्गत संध्या विधान के शुचि मन्त्रों में 'मनसा परिक्रमा' शीर्षकयुक्त जो अथर्ववेद के तृतीय कांड के २७ वें सूक्त के १ से ६ तक अनुक्रम वाले मंत्र विनियुक्त हैं उनमें से प्रत्येक (छहों) के अन्त में 'तं वो जम्भे दध्मः' आता है। ["आ. प्र."]

२५०४ फिर शुचि प्रवचन प्रारंभ किया मुनिवर कौशिक ने इस प्रकार–
"मान्या महिलाओं तथा भव्य भद्रों ! सुनिये मेरे विचार ।।
२५०५ वेदादि सत्य शास्त्रों का वर आधार है इन्हें मिला हुआ ।
इन पर आप्तोपदेश का भी है रंग पूर्णतः चढ़ा हुआ ।। ❁
२५०६ फिर भी, अनुभूति सम्मिलित है मम सुसाधना वाली इनमें ।
एवं शैली भी मेरी ही, सो कहूँ कि विचार मेरे हैं ।।
२५०७ जो चार हैं प्रमुख वेद विषय, इनमें से दूजा- 'कर्म काण्ड' –
जिसको पूरा तो कह पाये शायद कोई पण्डित प्रकाण्ड ।।
२५०८ फिर भी, सामान्यों से बढ़कर मैंने अध्ययन किया इसका ।
यज्ञों पर भरसक रख पाया साधनायुता सक्रिय निष्ठा ।।
२५०९ इसलिये स्वयं को प्रवचन के मानूँ क्यों बिल्कुल अनुपयुक्त ?
चाहे विज्ञों से बहुत न्यून फिर भी यथेष्ट हूँ सदुपयुक्त ।।
२५१० हैं कर्म काण्ड के दो भेद परमार्थपरक; व्यवहारपरक ।
(निष्काम, सकाम मार्ग, क्रमशः पर्यायरूप जिनके वाचक ।।)"
२५११ बोली माण्डवी कि "पूज्य मुने ! पहले प्रभेद का विवरण तो–
नानाजी हैं दे चुके आप व्याख्यात करें दूजे ही को ।। "
(दोहा) इस पर मुनिवर ने कहा–" न्यून हुआ मम काम ।
अब केवल कहना रहा, मुझको 'मार्ग, सकाम' ।।३१८।।
सांसारिक सुख की इच्छा से हैं काम किये जाते जिसमें–
२५१२ सब धर्मयुक्त ही, उसे आप्त नारीनर 'मार्ग, सकाम' कहें ।।
सम्मिलित इसी में अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध तक सब ।
२५१३ जितना भी कर्मकाण्ड है, कुछ भी परे रह सका इससे कब ' !
फिर द्रव्य, चतुर्विध, का उसमें करना होता है सविधि होम ।
२५१४ जिससे प्रसन्न होते प्रभुवर अन्तर्यामी ओंकार, सोम ।।
इसके अतिरिक्त, वायु एवं जल वर्ग, दोनों, को भी वह–
२५१५ करता है शुद्धि, सौख्य भी सब जग को देता जो सभी तरह ।।
उन द्रव्य, चतुर्विध में से है पहला तो सुगंध गुण–संयुत ।
२५१६ दूसरा, मिष्ट गुण युक्त और तीसरा, पुष्टिकारक गुणयुत ।।

❁ 'आप्तोपदेशः शब्दः' (न्यायदर्शन) [अ. १]

२५१७ चौथा है रोग विनाशक शुभगुण युक्त द्रव्य, इन चारों का–
शोधन एवं संस्कार किया जावे पहले, अनिवार्यतया ॥
२५१८ फिर यथा योग्य मिश्रित करके, अग्नि में युक्तिपूर्वक उनका–
जब होम किया जावे तब वह सत्फल होता जो अभी कहा ॥
२५१९ पर जिसे करें केवल भोजन-दादन, यन्त्रादि के लिये ही–
एवं हो कला कुशलता की सीमा तक व्यापकता जिनकी ॥
२५२० जो विमानादि यानार्थ और सामाजिक नियमों की खातिर।
मानव, करते हैं कर्म, कहाँ तक सुख वे ले पाए आखिर ॥
२५२१ यद्यपि है कर्मकाण्ड वह भी, सीमित फल तथापि है देता।
करले उसको चाहे कोई, नृप या जनता किंवा नेता ॥
२५२२ अधिकांशतः सुखद होता है कर्त्ता को ही वह कर्म अहो।
उससे व्यापक सुख तो कदापि, अग्नि में होमके तुल्य, न हो ॥
२५२३ जो होमरूप शुभ कर्मकाण्ड, उसमें है धर्मशास्त्र की भी–
सम्मति मैं दूँ संक्षिप्तरूप में यहां जानकारी जिसकी ॥
२५२४ सुनलो कि 'पूर्व मीमांसा' में ★ यह बात है कही इस प्रकार–
'आवश्यक यह कि यज्ञकर्त्ता कर ले द्रव्यों का सुसंस्कार ॥
२५२५ उपयोग यथावत् करना भी, द्रव्यों का है अनिवार्य उसे।
वह, द्रव्य तथा संस्कार और उपयोग, सभी पर ध्यान रखें ॥'
२५२६ सो उपर्युक्त चारों प्रकार के द्रव्यों का संस्कारित कर–
अग्नि में होम करने से हो सारे जग का उपकार प्रचुर ॥
२५२७ दृष्टान्त एक देता हूँ मैं जिससे तुम समझ सको सत्वर–
व्यापक सुख पहुँचाते कैसे हैं यज्ञ–होम सबसे बढ़कर ॥
२५२८ जब दाल या कि शाकादि बनें तब उनमें 'छौंक' दिया जाता।
यानी चमचे में द्रव्य सुगंधित एवं घृत डाला जाता ॥
२५२९ फिर अग्नि पर तपाकर उनको, विधि सहित छौंकते हैं ज्योंही–
शाकादि सुगंधित पूर्णतया होकर बनलें सुस्वादु त्योंही ॥

★ सुप्रसिद्ध षड्दर्शनों में से जैमिनि मुनि (व्यास जी के शिष्य) कृत 'पूर्वमीमांसा' भी एक है जिसमें यज्ञों का ही विशिष्ट प्रामाणिक विवरण है। (" ओ. प्रे. ")

२५३० इसलिये कि तप्त सुगँध द्रव्य एवं घृत के अणु, व्यापक बन–
उन दाल आदि को सुरभितकर उनमें भरते हैं रोचकपन ॥
२५३१ वे पुष्टि तथा रुचि के वर्द्धक उस तनिक छौंक से हों जैसे।
जग भर में सुख की व्यापकता होमों से भीं होती वैसे ॥
२५३२ यज्ञ से वाष्प जो उठता है वह भी निर्दोष सुगन्धयुक्त।
करता है वायु, वृष्टिजल; दोनों को ही, कर जग दुःखमुक्त ॥
२५३३ इसमें प्रमाण है आर्षग्रन्थ उस ऐतरेय ब्राह्मण का भी –
ऋग्वेद–संहिता का जो शुचि व्याख्यान बहुत गौरवशाली ॥
२५३४ उसमें यह बतलाया कि "यज्ञ होता है जनता के सुखार्थ।
(अर्थात् मनुष्यों का समूह लाभान्वित होता है यथार्थ ॥)
२५३५ वस्तुतः सभी को सुख इससे मिलता है, जितनी भी जनता—
(नर नारी का समुदाय, पूर्णतः प्रमुदित इससे ही बनता ॥)
२५३६ सँग सँग आनन्द प्राप्ति होती उसको भी जो सद्मनुज विज्ञ–
संस्कारित करके द्रव्यों को होमे, श्रुति विधि से करे यज्ञ ॥"

(दोहे) यह सुनकर माण्डवी ने, 'क्यों कह, किया सवाल।
मुनिवर ने उत्तर दिया, सस्मित हो, तत्काल ॥३१५॥
" छोटे–से 'क्यों' में यतः प्रश्नों का न हिसाब।
अतः शुरू मैं 'क्योंकि' से अपना करूँ जवाब ॥३१६॥

२५३७ तो, क्योंकि यज्ञ होता सदैव सर्वोपकार के ही निमित्त--
सो, जग भर की आनन्द प्राप्ति सुनकर क्यों संशयग्रस्त चित्त ?
२५३८ याजक भी सौख्य प्राप्त करता, इस पर क्यों हो संदेह तनिक ?
माण्डवी ! तुम्हारे ताऊजी क्यों विस्मृत बनें, विदेह जनक ?
२५३९ जो नारीनर उपकार, जगत् का, सच्चा, कर पाएँ जितना–
परमेश्वर- व्यवस्था से उनको सुख अवश्य मिल पाए उतना ॥
२५४० अतएव यज्ञ में फल श्रुति ही सचमुच उसका है अर्थवाद।
यह कर्म, श्रेष्ठतम बतलाया वेदों ने, जो है निर्विवाद ॥
२५४१ इस भाँति यज्ञ की संस्तुति जब होगी, सदर्भ संयुता शुभा–
तब उनको करने की प्रवृत्ति मनुजों में विकसेगी वरदा ॥

२५४२ वह यज्ञ सर्वथा, अनर्थमय दोषों को, परे हटाता है।
एवं पूर्णतः विश्वभर में आनन्द अमन्द बढ़ाता है॥
२५४३ फिर कहता हूँ मैं उसी 'पूर्वमीमांसा' का देकर प्रणाम–
जो याज्ञिक मनुजों को ऐसी प्रिय है जैसे होता स्व–प्राण॥
२५४४ हाँ, वही 'पूर्व मीमांसा' यों कहती कि 'होम के द्रव्यों का—
उत्तम संस्कार और करने की, होम; पवित्र श्रेष्ठ विद्या॥□
२५४५ आनी चाहिये अवश्य सभी मनुजों को (या नारी, नर) को।
शुचि रुचि एवं श्रद्धा का भी उन पर प्रभाव श्रेयस्कर हो॥
२५४६ इस ही प्रकार के यज्ञकर्म करने से सबको उत्तमफल—
होता है प्राप्त,' आप्तजन का यह स्वानुभूत सिद्धान्त अठल॥
२५४७ स–विशेष, यज्ञकर्ता को होता सुफल किन्तु अन्यथा नहीं।
ऐसी कितनी ही बातें हैं उस 'मीमांसा' में, अहा, कहीं॥
२५४८ जो यजुर्वेद × का है 'शतपथ ब्राह्मण' (व्याख्यान-ग्रन्थ) पावन।
उसमें तो वैज्ञानिक विधि से है यज्ञों का सु–लाभ–वर्णन॥
२५४९ उसको वचनों का भी आशय, थोड़ा-सा तुम्हें सुनाता हूँ।
सारा वह प्रकरण बहुत बड़ा, पर सार-मात्र बतलाता हूँ॥
२५५० 'जो द्रव्य, होम करने के, हैं; वे अग्नि मध्य जब विधिपूर्वक–
डाले जाते हैं तब होते हैं धूम तथा वाष्प के जनक॥
२५५१ यह क्योंकि अग्नि का स्वभाव ही नैसर्गिक है कि पदार्थों में–
हो प्रविष्ट, करती भिन्न उन्हें, रस भी रहने दे कब उनमें॥
(दोहे) सर्व पदार्थों में करे अग्निदेव सु--प्रवेश—
इसमें संशय को नहीं, स्थान है लव--लेश॥३१७॥

□ यद्यपि हम विशेष्यानुसार ही विशेषण रखने के पक्षधर हैं तथापि यहां 'पवित्र श्रेष्ठा विद्या' न रख सके इसका हमें खेद है। ("ओ प्रे.")

× यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के प्रथम मंत्र में ही यज्ञ को श्रेष्ठ–तम कर्म कहा गया है। (यह टिप्पण, त्रि, छं. क्र २५४१ से भी संबद्ध है)। ("ओ. प्रे.")

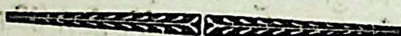
औषधि, जल, वृक्षादि में होकर सहज प्रविष्ट –
भिन्न–भिन्न करना उन्हें उसको रहता इष्ट ॥३१८॥
२५५४ फिर वे हल्के बन, पवन संग, अम्बर में उड़ जाते ऊपर।
जो उनमें जल का अंश, उसे कहते हैं 'वाष्प' सुबुद्ध–प्रवर ॥
२५५५ जो शुष्क, वही तो पृथिवी का है भाग– तथा इन दोनों के–
योग का नाम है 'धूम' कि सब परमाणु परस्पर जब मिलते–
२५५६ हैं तभी बना करते बादल जिनसे है वृष्टि हुआ करती।
इस भाँति, आग्नि से ही यवादि औषधि की सृष्टि हुआ करती ॥
२५५७ फिर औषधियों से अन्न, अन्न से 'धातु' ⊙धातुओं से शरीर।
बनता शरीर से कर्म, ध्यान इस क्रम पर दें सब ज्ञान-वीर ॥
२५५८ जब औषधि, वायु, जलादि शुद्ध, होते यों होम कर्म द्वारा–
तब सर्व जगत् को सुख होता, आनन्दित बने विश्व सारा ॥
२५५९ एवं अशुद्ध ये जलादि जब रहते हैं तब सब दुःख–युक्त –
वैसे ही बनते हैं जैसे हों यज्ञ कर्म से क्लेश–मुक्त ॥
२५६० इससे, इनकीं संशुद्धि करें– यह मनुजों को आवश्यक है।
'शतपथ' के ऋषि की वाणी तो वास्तव में वर प्रामाणिक है ॥
२५६१ अब, उनकी शुद्धि हेतु जो दो हैं प्रयत्न उनका भी वर्णन—
मैं करूं किन्तु उसमें सम्भव कैसे होगा संक्षिप्त कथन ??
२५६२ इसपर माण्डवी लगी कहने- "हे पूज्य मुने ! संध्या को अब-
कृपया अवशिष्ट कहें बातें, पुनरपि हम जुड़ जाएँगे सब ॥
२५६३ पौने दो घण्टे चला यज्ञ, फिर चला सवा घण्टे प्रवचन।
यों एक प्रहर हो गया अतः बन रहे श्रान्त सबके तन मन ॥
२५६४ नानाजी के प्रिय पौत्र और मेरे ये छोटे से देवर—
प्यारे अशोक जी भी तब से बैठे हैं प्रौढ़ों–सम जमकर ॥
२५६५ श्री राजपुरोहितजी के भी ये दोनों पौत्र बड़े अच्छे।
जो मम गुरुवर के नाती हैं, शोभा दीदी के प्रिय बच्चे ॥

⊙ वीर्यादिक धातुओं से आशय है। ("ओ. प्रे,")

२५६६ इन तीनों नन्हें मुन्नों से कुछ गायन मधुर सुना जावे ।
यह मेरा है प्रस्ताव और फिर अबकी सभा बिखर जावे ॥
२५६७ अपरान्हकाल में तीन बजे सारे श्रोता पुनरपि आएँ ।
अपने सँग सँग अन्यों को भी आग्रह करके अवश्य लाएँ ॥
२५३८ यजमान और नानाजी की ओर से प्रसाद बँटेगा जो ।
वह लिये बिना, कोई न यहाँ से गमन के लिये प्रस्थित हो ॥

(दोहे) आज शाम को बँटेगा जो प्रवचन के बाद–
नृपवर के दौहित्र का होगा वह सु–प्रसाद ॥३१९॥
उनकी हूँ मैं सहचरी, सो रखती अधिकार–
करने का यह घोषणा, पूरा, सभी प्रकार" ॥३२०॥

२५६९ यह सुनकर सब मुस्कुरा उठे, मुनिवर ने प्रवचन बन्द किया ।
तीनों बच्चों के गायन का सबने अनुपम आनन्द लिया ॥
२५७० फिर 'मोहन भोग' हुआ वितरित, बच्चों को मिला पारितोषक ।
जिनका सुमधुर गायन सचमुच सबके उर का था परितोषक ॥
२५७१ बिखरी वह सभा, माण्डवी ने कक्ष में लौटते ही, लिखना–
प्रारम्भ किया परिशिष्ट क्योंकि था अभी न कठिन, याद रखना ॥



'प्रवचन-संग्रह' का सुसम्पादन

(चौबीसवाँ प्रकरण)

२५७० मानों हो समाधिस्थ योगी—ऐसी माण्डवी हुई तन्मय।
परिशिष्ट—प्रलेखन कार्य चल रहा था अविरत, केवल स्मृतिमय॥
२५७१ इस वीच, भरत कब कक्षमध्य आगे, स्वाध्यायनिलीन बने-
यह सब, लखकर भी लख न सकी, थे क्योंकि लेखमें भाव सने॥
२५७२ संयोग रहा कि लेख का जब भार्या ने कार्य समाप्त किया—
बिल्कुल तब ही भर्त्ता का शुभ स्वाध्याय कर्म भी पूर्ण हुआ॥
२५७३ बोले श्री भरतदेव उनसे—"हे देवी! बड़ी चतुरता की—
जो तुमने मेरा मन पढ़कर मेरी इच्छिता घोषणा की॥
२५७४ इस पर मैं हूँ अतिशय प्रसन्न, अब परामर्श दो, क्या प्रसाद—
वितरित अपनी ओर से किया जावे कि तुम्हें दे समाह्लाद॥"
२५७५ माण्डवी लगी हँसकर कहने—"हे देव! तुम्हारा मन जैसे—
मैंने पढ़ लिया वहाँ, तुम क्यों मेरा न यहाँ पढ़ लो, वैसे॥"
२५७६ तब हँसे बड़े जोर से और घूरते हुए कह उठे भरत—
"कल ही योग की बात की थी, ले रहीं परीक्षा आज तुरत!!
२५७७ अच्छा तो सुनो कि सर्वाधिक उत्तम जो प्राप्य मिठाई हो
तुम यथेष्ठ मात्रा में उसका वितरण करना उर से चाहो॥"
२५८८ पत्नी बोली कि "परीक्षा में पतिदेव हुए उत्तीर्ण, अहो।
भार्या को इसकी अलग मिठाई क्यों न चाहिये? तुम्हीं कहो!!"
२५८९ इस पर दोनों ही बहुत हँसे फिर भरत; व्यवस्था करने को—
चल पड़े सोचते हुए कि सारा प्रवन्ध समुचित कैसे हो॥
२५८० माण्डवी गई परिशिष्ट-लेख लेकर, नृपवर की सेवा में।
'प्रवचन-संग्रह' की टंकित प्रति भी साथ ले गई, बतलाने॥
(दोहे) नृप ने दोनों वस्तुएँ, कीं अत्यन्त पसन्द।
बहुत सराहा बहू का वह उत्साह अमन्द॥३२१॥

मुनि समीप तब वे गये, लेकर उसको साथ।
ले लीं दोनों वस्तुएँ हँसकर अपने हाथ ॥३२२॥

२५८१ नृपवर माण्डवी सहित पहुँचे जब मुनि के समीप, उपवन में।
तब वे स्वाध्याय कर रहे थे, रह-रह रत होकर चिन्तन में ॥
२५८२ 'संग्रह' एवं 'परिशिष्ट'-लेख दोनों ही उनको दिखलाये।
थोड़े-थोड़े-से पढ़कर ही मुनि बोले—"मुझे बहुत भाये ॥
२५८३ ज्यों का त्यों विवरण देने का परिशिष्ट में दिखा भव्य ढंग।
स्मृति का यह चमत्कार लखकर मैं सचमुच हूँ रह गया दंग ॥
२५८४ माण्डवी धन्य है जिसपर प्रभु ओंकार देव की यह सुकृपा—
हो पाई है कि प्रदान उन्होंने की इसको ऐसी प्रतिभा ॥"
२५८५ नृपवर बोले कि "पात्रता जब विकसित की इसके आत्मा ने।
यह न्याय-दया-परिपूर्ण दान तब दिया इसे परमात्मा ने ॥
२५८६ भगवन्! विचार मेरा ऐसा, इसमें आपका सु-मत क्या है?"
मुनिवर ने कहा कि "हे राजन्! तुमने यथार्थ यह सोचा है ॥"
२५८७ माण्डवी स्वयं की सराहना सुनना चाहती न थी ऐसी—
नृपवर मुनिवर दोनों मिलकर इस समय कर रहे थे जैसी ॥
२५८८ इस कारण, बात बदलने को, बोली कि "मन्त्र कृपया मुझको—
मुनिराज! सभी वे लिखवा दें, प्रातः विनियुक्त हुए थे जो ॥
२५८९ देखिये कि मैंने सुयज्ञ का विवरण जो लिखा, आज का, है—
उसमें छोड़ दी जगह काफी जिसमें मन्त्रों को लिखना है ॥
२५९० परिशिष्ट सहित प्रवचन-संग्रह, कर में जिस-जिसके पहुँचेगा।
उस-उसको इन मन्त्रों से भी इस भाँति लाभ पूरा होगा ॥"
२५९१ फिर वह सु-योजना बतलाई जो 'प्रवचन-संग्रह' का प्रचार—
करने के हेतु बनाई थी, यद्यपि उसका भी कहा सार ॥
२५९२ मुनि बोले—"मैं सहर्ष इसकी, सँग लेजाऊँगा कुछ प्रतियाँ।
पहुँचूँ यज्ञों में जहाँ जहाँ, प्रचरित कर दूँगा वहाँ-वहाँ ॥
२५९३ लो, पूर्त करो सब रिक्त-स्थल, मैं तुम्हें मन्त्र लिखवाता हूँ।
जो थे सुयज्ञ में नये पढ़े, वे सारे ही बतलाता हूँ ॥"

२५९४ रीता जितना था स्थान, उसी में समा गये सब मन्त्र नये।
यह देख वृद्धवर वे दोनों फिर से विस्मित अत्यन्त हुए ॥
२५९५ तदनन्तर कहा माण्डवी ने–" यह अभी अभी मेरे मन में—
आया कि चित्र भी रहें आप दोनों के, न क्यों संकलन में !!"
२५९६ यह सुन, बोले नृपवर कि "तुम्हारा भी चाहिये चित्र, फिरतौ-
माण्डवी बहू ! वस्तुतः श्रेय इसका है पूर्णतया तुम को ॥"
२५९७ मुनिवर बीच में तुरत बोले–" राजन् ! प्रस्ताव न पूरा है।
पति का यदि न हो संग ही, तो पत्नी का चित्र अधूरा है ॥
२५९८ मैं इसका उर पढ़ रहा, मुझे उस पर भी दिखता लिखा यही-
संकोचशीलता से चाहे यह बेचारी, गह मौन रहो ॥"
२५९९ कुछ लजा गई माण्डवी किन्तु मुद्रा से ऐसा प्रकटाया।
मानो मुनिवर ने उसका उर था ठीक ठीक ही पढ़ पाया ॥

(दोहा) कौशिक तब कहने लगे, कर कुछ देर विचार।
"होगा बेटी माण्डवी ! तव इच्छा–अनुसार ॥३२३॥

२६०० जिस इभ्यग्राम के सभ्य देवव्रत' नामक ने मुझसे की थी –
सबसे पहले तव सुप्रशंसा उसको है मुझ पर भक्ति बड़ी ॥
२६०१ वह छायाचित्र खींचने में अति कुशल हो गया है जब से –
मम चित्र खीचने हेतु कर चुका अनुनय बहुत बार तब से ॥
२६०२ उसकी यह इच्छा है कि हो रहा जब हो सार्वजनिक प्रवचन–
तब का वह खींचे चित्र, अभीतक, पर, न आ सका ऐसा दिन ॥
२६०३ मिथिला से गया रैक्वपर्णा जब मैं, तब वहीं मिला था वह।
पर मैंने ही तब परिणय में शामिल होने भेजा साग्रह ॥
२६०४ सो, अभिलाषा पूरी उसकी, हो सकी नहीं, चित्र की, वहां।
प्रातः वह आकर पहुँच नहीं पाया सुयज्ञ में आज यहाँ ॥
२६०५ फिर भी, अपराह्न–कार्यक्रम तक आने वाला है निःसंशय।
भासित होता मुझको ऐसा, जो सच हो; यह भी मम निश्चय ॥"
२६०६ [यह सुन, आ गई माण्डवी को शोभा दीदी की बात याद–
'कौशिक मुनि, भास बताते हैं भावी लखने के तुरत बाद ॥]

२६०७ सांकाश्यपुरी में दौरे पर जाने में, पहला इभ्यग्राम—
था पड़ा, जहाँ का वह सुसभ्य था ज्ञात (स्मरण था नहीं नाम)॥
२६०८ संसद का प्रतिनिधि भी उसको थी वही स्वयं चुनवा आई।
(सारी यह संस्मृति–राशि चित्त ने तब उसके प्रति प्रकटाई ॥)
२६०९ यदि वह आवे तो अभिलाषा, 'प्रवचन संग्रह' के प्रसार की–
सांकाश्यपुरी के सुराज्य में, हो जावे अनायास पूरी ॥
२६१० इतने में ही आ गये देवव्रत, मुनिवर को खोजत हुए।
आकर सबसे पहले स्वभक्तिभाजन के पावन चरण छुए॥
२६११ फिर नृपवर को भी नमन किया एवं सहर्ष विस्मयपूर्वक—
आत्मीय भाव से किया माण्डवी को अभिवादन, बन उत्सुक॥
२६१२ थे छायाचित्र खींचने का यन्त्र × भी पीठ पर लटकाये।
(मानों इसबार महामुनि का हों चित्र खींचने ही आये ॥)
२६१३ संक्षिप्त रूप में कौशिक ने उनसे बातें कह दीं सारी।
निर्देशित किया कि " है निबाहना तुमको यह जिम्मेदारी॥
२६१४ प्रवचन वेला में चारों का समवेत चित्र खींचना आज।
हो फिर से जब अपराह्न–काल में एकत्रित श्रोता–समाज॥
२६१५ तुम नहीं आ सके थे प्रातः, शायद इससे ही यह अवसर—
दूसरी बार प्रवचन का है आया, माण्डवी समाग्रह पर॥"
१६१६ "चलिये, श्रुतिकीर्ति से मिला दूँ" यह कह माण्डवी ने उनसे–
फिर संग देवव्रत को लेकर चल पड़ी, माँग अनुमति मुनि से॥
(दोहे) नृपवर मुनिवर, उभय ही, बातों में तल्लीन—
काफी देर बने रहे, (मानों द्वैत–विहीन ॥) ॥३२४॥
तीन बजे के पूर्व ही, जुड़ा समूह विशाल।
बहुत अधिक उससे कि था जितना प्रातःकाल ॥३२५॥
ध्वनि विस्तारक यंत्र ● की आवश्यकता जान—
मामाजी को बहू ने तुरत दिलाया ध्यान॥३२६॥

× फोटोग्राफी का कैमरा। ("ओ, प्रे.")

● लाउडस्पीकर। ("ओ. प्रे.")

२६१७ माण्डवी वहू की बात मान, मामाजी ने सुप्रबन्ध किया।
शत्रुघ्नवीर को बुला, उधर, भाभी ने वह परिशिष्ट दिया ॥
२६१८ 'अंशिका दूसरी, देवर जी ! टंकित करने को देती हूँ।
मिल सके साँझ तक तीजी भी, इसका मैं जिम्मा लेती हूँ ॥"
२६१९ था निकट आ चुका नियत समय, सो बातें हो पाईं न अधिक
माण्डवी सभास्थल पर पहुंची, थे संग देवव्रत इत्यादिक ॥
२६२० निश्चित सुकाल पर मुनिवर ने आरम्भ कर दिया निज प्रवचन।
प्रातः के ही क्रम को आगे चालू रखकर यों किया कथन ॥
२६२१ 'दो प्रकार के होते प्रयत्न हैं वायुजलादि-शुद्धि के जो-
उनमें से प्रथम सोम-शिवकृत जानों, जीवों का दूजे को ॥
२६२२ ओंकार परमप्रभुकृत प्रयत्न है यही कि उसने अग्निरूप-
उत्पन्न किया रवि तथा सुगंधित पदार्थ, कुसुमादिक अनूप ॥
२६२३ वह सूर्य निरन्तर सर्वरसों को है खींचा करता ऊपर।
सुमनदिक द्रव्यों का सुगंध जो है वह भी तो कुगन्धहर ॥
२६२४ पर, हो जाते विश्व में नित्य परमाणु सुगंध कुगंधयुक्त।
जिससे जल तथा वायु बनते हैं मध्यमगुणयुत, अनुपयुक्त ॥
२६२५ उस जल के वर्षण से ओषधियाँ, अन्न, वीर्य्य, देहादिक भी-
मध्यमगुण वाले हो जाते, इसमें क्यों हो संशय कुछ भी ॥
२६२६ उनका होने से योग, बनें वे भी गुण अवश्य मध्यम ही।
जो बुद्धि, पराक्रम, शौर्य, धैर्य्य एवं बलादि थे श्रेष्ठ सभी ॥
२६२७ इस पर माण्डवी पूछ बैठी 'क्यों' कहकर छोटा सुप्रश्न फिर-
प्रारम्भ 'क्योंकि' से कर उत्तर पूर्व सम दे चले तब मुनिवर ॥
(दोहा) "क्योंकि रहे कारण-सदृश, सर्वकाल में कार्य्य।
(ज्यों कारण हो, कार्य भी त्यों होना अनिवार्य्य ॥) ॥३२७॥ ×
२६२८ हैं दोषयुक्त होते दिखते सर्वत्र वृष्टि-जल तथा वायु।
जिससे घटती हैं मनुजों की क्षमता, उत्तमता और आयु ॥

× 'कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणोदृष्टः।' (वैशेषिक दर्शन, अ-२। आ.१। सूत्र २४) [भावार्थ-उपादान कारण के गुण, कार्य में देखे जाते हैं।]
("ओ. प्रे.)

२६२९ यह दोष नहीं परमेश्वर की सृष्टि का, अपितु मनुजों की ही–
सृष्टि से नित्य होती रहती हैं दुर्गन्धादि यहां सारी ।।"

(दोहा) फिर 'क्यों' वाला माण्डवी, बैठी पूछ सवाल ।
'क्योंकि'–युक्त उत्तर दिया, मुनिवर ने तत्काल ।।३२८।।

२६३० सब दुर्गन्धादि विकार क्योंकि होते हैं मनुज सृष्टि से ही ।
इस कारण है यह उचित कि उनका, करें निवारण भी वे ही ।।

२६३१ जैसे ईश्वर ने सत्य भाषणादिक सुधर्म व्यवहार सदा–
करने की ही आज्ञा दी है, कर इसके विरुद्ध की निन्दा ।।

२६३२ मिथ्याभाषण इत्यादि अधर्मों की आज्ञा दी कहीं नहीं ।
यदि श्रुति–आज्ञा मानी जावे तो पुण्य का सुफल मिले यहीं ।।

२६३३ जो इससे उल्टा करे काम, वह अतिशय पापी होता है ।
ईश्वर की न्याय व्यवस्था से होकर क्लेशित नित रोता है ।।

२६३४ वैसे ही, आज्ञा दी विभु ने है सभी मनुष्यों % को ऐसी–
'तुम करो यज्ञ सब नर नारी' फिर उससे विरुद्धता कैसी ??

२६३५ आदेश यह नहीं माने जो, वह नारी, नर पापी होकर–
दुःखों का भागी होता है, पामर बनकर खावे ठोकर ।।

२६३६ 'क्यों' संज्ञक प्रश्न पुनः तुमने धीरे से जो माण्डवी ! किया–
तब मुखमुद्रा देखते हुए सत्वर मैंने सुन उसे लिया ।।

२६३७ पूर्वानुसार कह 'क्योंकि' शब्द, उत्तर देता हूँ मैं इसका ।
(यह 'क्यों' 'क्या' 'कैसे' की पृच्छा करने का अच्छा है चस्का ।।)

२६३८ तो, क्योंकि मनुष्यों को लगता है दोष, अ-याजक रहने से ।
अर्थात् सभी के उपकारक पावन यज्ञ को न करने से ।।

२६३९ पापी होकर अतएव दुःखभागी अवश्य हैं वे होते ।
जैसा था मैंने कहा अभी, फलकर क्लेशों में हैं रोते ।।

२६४० समुदाय, मनुष्य प्रभृति का हो जितना ही रहता अधिक जहां-
दुर्गन्ध भी अधिक उतना ही पाया जाता है नित्य वहाँ ।।

% 'मनुष्य' में हम आबालवृद्धनारीनर को समाविष्ट करते हैं ।
(केवल पुरुषों व बालकों को नहीं, स्त्रियों व बालिकाओं को भी)

['ओ० प्रे०]

२६४१ ईश्वर की सृष्टि से नहीं वह दुर्गन्ध हुआ करता निश्चय।
थोड़ा भी रहा न कभी मुझे इस प्रकट तथ्य में है संशय ॥
२६४२ इसलिये कि मनुजों के निमित्त से ही दुर्गन्ध उपजता है।
हयगयादि को भी मानव ही निज सुखार्थ संचित रखता है ॥
२६४३ सो, इन पशुओं से भी होता दुर्गन्ध अधिक जो समुत्पन्न–
वह मनुजों की ही सुखवाली इच्छा से होवे कुसम्पन्न ॥
२६४४ इस भाँति, प्रकट है वात कि जब वायु का तथा वर्षा-जल का–
दूषणकारक दुर्गन्ध सर्व, है मनुजों के निमित्त वाला ॥
२६४५ तव, क्यों न योग्य हो उनको ही करना उसका सु-निवारण भी।
वैसे भी, सर्वप्राणियों से उत्तम केवल मानवगण ही ॥

(दोहा) जान सकें, बस, मनुज ही, क्या होता उपकार।
विदित उन्हीं को हो सके– बुरा है अनुपकार ॥३२९॥

२६४६ है विचार का पर्याय, मनन; जिसके होने से ही 'मनुष्य'–
हो पाता नाम, नारिनर का; अन्यथा नहीं– (यह तो अवश्य)
२६४७ कारण इसका ऐसा कि मनुज–तन में ही प्रभु परमेश्वर ने –
अपनी महिमा से रचे ज्ञानपूर्वक अवयव इस प्रकार के –
२६४८ विज्ञानों के उत्पादन की जिनमें अनुकूल रहे क्षमता।
(परमाणु आदि का सुसंयोग करके रखदी यह विशेषता) ॥
२६४९ सो, ज्ञानोन्नति, केवल मनुष्य कर सकते हैं, न अन्य प्राणी–
इनमें ही विवेकशक्ति प्राप्त करने की क्षमता कल्याणी ॥
२६५० इसलिए, धर्म का अनुष्ठान करने में, अधर्म तजने में –
केवल मानव ही समर्थ हों, सामर्थ्य कहां यह अन्यों में !!
२६५१ इस विवेचना से यही प्रमाणित हुआ कि नरनारी को ही–
सर्वोपकार के हेतु यज्ञ का अनुष्ठान आवश्यक ही ॥"
२६५२ सस्मित हो कहा माण्डवी ने– "करती हूँ बड़ा प्रश्न मैं अब।
केवल छोटे से 'क्यों' से ही सब मनोभाव कह पाऊं कब ??"
२६५३ मुनिवर इसपर हँसकर बोले–"हाँ, हाँ, पूछो इच्छानुसार।
मुझको न क्रुद्ध तुम पाओगी, प्रश्न का रहे कोई प्रकार ॥"

२६५४ प्रोत्साहन पाकर यों बोली माण्डवी कि "हे श्रद्धेय मुने !
आपसे अभी तक हम सबने उपकार के बड़े सुयश सुने ।।
२६५५ पर, जो सुगंध संयुत पदार्थ, कस्तूरी प्रभृति, उत्तमोत्तम ।
उनको मिष्टादि वस्तुओं के सँग मिश्रित करके यथानियम—
२६५६ अग्नि में डालने से उनका हो जावे नाश सर्वथा ही ।
उनसे उपकार भला कैसे हो सकता है थोड़ा-सा भी ।
२६५७ हाँ ऐसे मिष्ट, पुष्टिकारक इत्यादि चतुर्विध सब पदार्थ—
दे सकते अधिक लाभ, यदि हम देदें मनुजों को भोजनार्थ ।।
२६५८ सचमुच, यज्ञ की अपेक्षा हो उपकार अधिक ही इस प्रकार ।
फिर होम किसलिये हमें चाहिये करना, कहिये, कर विचार ।।"
२६५९ मुनिवर ने कहा कि "विदित नहीं तुमको विनाश का सही अर्थ ।
सामान्यतया जो है माना जाता, वह तो वस्तुतः व्यर्थ ।।
२६६० होता न किसी भी पदार्थ का अत्यन्त विनाश कदापि, अहो ।
वह केवल मात्र वियोग, जिसे भ्रम से तुम पूर्ण विनाश कहो ।।
२६६१ सुस्थूलरूप में दिखता जो पहले, वह फिर न दिखाई दे—
उसको हैं विनाश कह देते, पर इसमें नहीं सचाई है ।।
२६६२ माण्डवी ! कहो, कितने प्रकार का होता 'दर्शन' याकि 'ज्ञान'?
यह प्रश्न उत्तरित पहले हो, फिर होगा, शंका--समाधान ।।"
२६६३ बोली माण्डवी कि 'आठ प्रकारों का 'दर्शन' वा 'ज्ञान' रहे ।
गोतमाचार्य ने न्यायशास्त्र में जिसके लक्षण पूर्ण कहे ।।
२६६४ उन प्रत्यक्षादि प्रकारों के आठों प्रमाण को मानूँ मैं ।
उनके अतिरिक्त, ज्ञान किंवा दर्शन का भेद न जानूँ मैं ।।" +
२६६५ मुनिवर प्रसन्न होकर बोले- "तुममें स्वाध्यायशीलता है ।
अन्यथा कौन ऐसा उत्तर, प्रामाणिकतम, दे सकता है !!

+ गोतमाचार्यकृत न्यायदर्शन के अनुसार अष्ट प्रमाण ये हैं – १. प्रत्यक्ष, २. अनुमान ३. उपमान ४. शब्द ५, ऐतिह्य ६. अर्थापत्ति ७ संभव ८. अभाव (विवेचना के लिए उक्त शास्त्र देखें ।)
["ओ. प्रे."]

२६६६ तुमने सत्य ही कहा, सचमुच इन आठों के बिन माने तो—
होता ही नहीं यथार्थज्ञान, वस्तुत: किसी भी मानव को ॥
२६६७ फलत: समस्त व्यवहार और परमार्थ, किसी का नहीं सिद्ध-
हो पाता है, यह तथ्य विवेकी नारिनरों में अति प्रसिद्ध ॥
२६६८ भूल से, अदर्शन ही को हैं जगजन विनाश बहुधा कहते ।
पर स्वाध्यायी तो उसका हैं आशय सर्वदा सही गहते ॥
२६६९ यह बात समझने को देता दृष्टान्त एक हूँ, जो यों है—
मिट्टी का ढेला कोई जन पीसकर वायु में यदि फेंके —
२६७० तो कहते हैं लखने वाले ऐसा कि हो गया वह विनष्ट ।
आँख से दिखाई क्योंकि नहीं देता, विशेष कब करें कष्ट ॥
२६७१ इससे भी, इतना तो सु-प्रकट होता कि नाश होना तब ही—
कहते कि बाह्य इन्द्रियगण से जब दिखती नहीं वस्तु कोई ॥
२६७२ हो जाते जब परमाणु अलग, तब नहीं दृष्टिगत होते वे ।
इसलिए कि वे इन्द्रियगण के हैं विषय न बिल्कुल तब रहते ॥
२६७३ एवं संयुक्त बनें जब वे परमाणु तथा सु-स्थूलभाव—
कर लेवें प्राप्त, बस, तभी हैं तज देते पूर्व अदृश्यभाव ॥
२६७४ केवल सुस्थूल पदार्थ क्योंकि इन्द्रियगण का हो सकें विषय ।
इस बारे में तुमको रहना चाहिये नहीं कोई संशय ॥
२६७५ होते होते विभक्त, अंतिम सँस्थिति में किसी भाँति से भी-
जो विभक्त होने योग्य न हो, 'परमाणु' कही संज्ञा उसकी ॥
२६७६ वे पृथक् पृथक् परमाणु रह सकें यद्यपि इन्द्रियग्राह्य नहीं ।
रहलें तथापि आकाश मध्य सर्वदा, न कुछ अपवाद कहीं ॥
२६७७ वैसे ही, सुगन्धादि संयुत जो द्रव्य अग्नि में डालें हम ।
उसके अणु अलग-अलग होकर आकाश में रहें, यही सु क्रम ॥
(दोहे) क्योंकि वस्तुता से कभी होता नहीं अभाव —
किसी द्रव्य का, है यही स्वाभाविक सु-प्रभाव ॥३३०॥ ●
अत: दोष वे, द्रव्य वह, अवश्य करता दूर ।
जो दुर्गन्धादिक जनित, (करके चकनाचूर) ॥३३१॥

● "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:" (गीता) ['औ प्रे,"]

२६७८ फिर वायु तथा वर्षा–जल की उससे होती है शुद्धि बड़ी।
इन दोनों की अशुद्धि कोई, रह पाती कहीं न पास खड़ी॥
२६७९ उपकार, जगत् का, बहुत बड़ा, इस प्रकार से, हो जाता है।
सुख भी, सर्वथा, विश्वभर को यज्ञों द्वारा मिल पाता है॥
२६८० इस कारण से, यज्ञ को सदा करना अवश्य चाहिये, अहो।
वेदों का भी आदेश यही, इसके पालन में भूल न हो॥"
२६८१ देवव्रत खड़े होकर बोले–"हे मुनिवर! चित्र खींचने का–
दें कृपया समय अभी थोड़ा, फिर चलने दें क्रम, प्रवचन का॥"
२६८२ स्वीकृतिसूचक ओंकार नाद करके जब कौशिक मौन हुए–
तब नृपवर तथा भरतजी को समवेत चित्र हित, बिठलाये॥
२६८३ कौशलपूर्वक चारों का ही खींचा शुभ चित्र देवव्रत ने–
इसके तुरन्त पश्चात् कार्य, प्रवचन का, पुनः लगा चलने॥
२६८४ इस बार माण्डवी ने पूछा इक प्रश्न, नया–सा, इस प्रकार–
(अधिकांश उपस्थित नर-नारी का ही मानो वह था विचार॥)
२६८५ उसकी पृच्छा यह थी कि "सुगंधित द्रव्य, इत्र पुष्पादि, अगर–
घर में अधिकाधिक रखे जायँ तो भी क्या ऐसा हो न असर??
२६८६ फिर होम यज्ञ ही क्यों करना, ऐसा बहुधा कहती जनता।
उसकी प्रतिनिधि रूपा–सी बन, श्री सेवा में यह प्रश्न धरा॥
२६८७ और भी स्पष्ट पूछूँ कि यज्ञ से वायु तथा वर्षा–जल कीं–
संशुद्धि मात्र ही यदि सदिष्ट, तो क्या आवश्यकता ऐसी–
२६८८ जो इतना बड़ा परिश्रम हो यज्ञ में, लगे भी बहुत समय।
क्या न हो प्रयोजन वही सिद्ध, कुसुमादि घरों में रख, निश्चय"
२६८९ उत्तर में कौशिक मुनि बोले–" माण्डवी! करो थोड़ा विचार–
उथलेपन का मत होने दो अपनी सन्मति पर तुम प्रहार॥
२६९० सोचो, कि अतर-पुष्पादि-जन्य जो सुगंध होता है, वह तो–
मिल के रहता है उसी वायु दुर्गन्धित में सर्वथा, अहो॥
२६९१ वह निकाल सकता नहीं उसे, छेदन भेदन करके, बाहर।
एवं हल्कापन रखे नहीं, सो, चढ़ भी नहीं सके ऊपर॥

२६९२ बाहर का शुद्ध वायु जा भी सकता है कैसे, कहो, वहाँ–
जब मिश्रित भरा हुआ भीतर तब उसको हो अवकाश कहां ??
२६९३ रहती हैं वहीं सुगन्ध और दुर्गन्धयुक्त जब वायु साथ।
तब मिलें रोग नाशादि सुफल कैसे ? कुक्लेश ही लगें हाथ ॥
२६९४ पर, उस घर में जब अग्निमध्य उन सुगंधादि हवि द्रव्यों का–
है विधिवत् हवन किया जाता, परिणाम सदुत्तम तब होता ॥
२६९५ समझो, तब अग्नि वहां से, कर हल्का, बाहर है निकालता --
दुर्गन्ध वायु को, फिर उसमें संशुद्ध पवन है आ घुसता ॥
२६९६ बस, इसीलिये होना फल यह केवल सुयज्ञ से ही सम्भव।
कोई भी अन्य प्रकार है न इसका; यह आप्तों का अनुभव ॥

(दोहे) वायुशुद्धि से रोग सब, हों विनष्ट तत्काल।
उत्तम सुख भी प्राप्त हों, रहे सदैव सुकाल ॥३३२॥
ऐसी ही, विज्ञानमय, वृष्टि-शुद्धि की बात।
जिसे बताएँगे तुम्हें नृपवर, श्रुति-निष्णात ॥३३३॥

२६९७ बोली माण्डवी कि "समयरूप यह अश्व भागता जाता है।
पौने दो घण्टे बीत गये, कुछ नये प्रश्न भी होने हैं ॥"
२६९८ बोली माण्डवी कि "समयरूप यह अश्व भागता जाता है।
कैसे इसको पकड़ें, उपाय कुछ भी न समझ में आता है ॥
२६९९ वस्तुतः प्रश्न तो बहुत रहे, पर केवल दो ही और करूँ।
अवशिष्ट फिर कभी पूछूंगी, सम्प्रति अपने ही पास धरूँ ॥
२७०० पहला तो यह कि 'होम का आशय, सिद्ध, हवन से ही केवल-
हो सकता है; फिर वेदमन्त्र क्यों वहां पढ़ें, क्या इसका फल??
२७०१ दूजा है प्रश्न यही कि 'वेदमंत्रों को ही क्यों बोले हम ?
यज्ञों में अन्य किसी का भी क्यों नहीं पाठ करना उत्तम ??"
२७०२ मुनिवर बोले कि "बहुत विस्तृत इनका तो देता मैं उत्तर--
पर, समय नहीं है इस कारण, गागर में भरता हूँ सागर ॥
२७०३ जैसे कि हाथ से होम करें, आंखों से देखें, यज्ञों में–
एवं संस्पर्श त्वचा से हैं करते जन जन सब यागों में ॥

२७०४ वैसे ही वाणी से पढ़ते हैं तभी वेदमन्त्रों को भी ।
उनके पढ़ने से क्योंकि परमप्रभु की वरदा संस्तुति होती ॥
२७०५ प्रार्थनोपासना भी संस्तुति के साथ साथ होती रहती ।
श्रद्धा की मानों सरिता-सी तव याजक में भीतर बहती ॥
२७०६ दूजे, यह भी कि होम के फल जो जो होते हैं, उन सबकी —
संस्मृति होती है, मंत्रों की विनियुक्ति सर्वथा इस ढब को ॥
२७०७ तीजा कारण ऐसा कि वेदमंत्रों का बारम्बार पाठ—
करने से, वे कण्ठस्थ रहें जिस विधि में सुख के बड़े ठाठ ॥
२७०८ चौथे, होती है वेदों की रक्षा भी अनायास इससे ।
पाँचवें, कराता यह मैत्री है आस्तिकत्व के शुभ गुण से ॥
२७०९ अर्थात्, ईश का होना भी इससे होता है विदित, अहो ।
नारीनर ताकि विश्व भर में कोई नास्तिकता-युक्त न हो ॥
२७१० प्रभु की सु-प्रार्थनापूर्वक ही सब कर्मों का हो शुभारम्भ ।
आदेश स्वयं विभु का ही यह, पालित हो पावे, रख अदम्भ ॥
२७११ इसलिए कि वैदिक मंत्रों के उच्चारण से यज्ञों में तो–
उसकी सर्वत्र प्रार्थना, अपने आप, विना जाने भी, हो ॥
२७१२ मैं तो कहता हूँ, जितने भी हैं उत्तम कर्म, 'यज्ञ' ही सब ।
सो, उन्हें वेदमंत्रों से ही क्यों करें न हम, रख वैदिक ढब ॥
२७१३ अब रहा सवाल यह कि इनको तजकर यज्ञों में पाठ अगर—
दूसरे किन्हीं वचनों का हो तो उसमें क्या है दोष प्रखर ??
२७१४ इसके उत्तर में सुनो कि वह अन्य के पाठ से नहीं कभी —
संसिद्ध, प्रयोजन, हो सकता; श्रुति के मंत्रों में ही खूबी ॥ ø
२७१५ है क्योंकि वेद, विभु की वाणी; सर्वथा सत्य, शुचि, भ्रांति-रहित ।
ईश्वर-वचनों सम भला अन्य कब हो सकते हैं, मनुज-रचित ??
२७१६ मनुमहर्षिवर का भी प्रमाण इस बारे में है, वह सुनलो ।
माण्डवी ! न केवल सुनो अपितु श्रुति का महत्व मनसे गुनलो ॥

ø उल्लेख्य हैं कि चारों वेदसंहिता ही 'श्रुति' मानने योग्य हैं और वे ही अपौरुषेय (ईश्वर प्रदत्त) ज्ञान हैं, अन्य कोई ग्रंथ नहीं । [ओ. प्रे.']

२७१७ मनुजी ने कहा कि 'चार वर्ण एवं चारों आश्रम पावन।
जो भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान, विद्या देशादिक में शोभन ॥
२७१८ ये सब, वेदों से ही प्रसिद्ध होते हैं, अखिल धर्म के भी–
हैं चारों वेद सदैव मूल, कितनी गावें महिमा उनकी ?? *
२७१९ सो, यज्ञ, वेदमन्त्रों से ही करना चाहिये, न अन्यों से ॥
इसके विपरीत रहा करते मन्तव्य अलीक, अधन्यों के ॥
२७२० लो, ठीक पांच बज गये, अब नहीं एक शब्द भी बोलूँगा।
तब शंकाओं की शेषग्रंथि सब अन्य समय पर खोलूँगा ॥
२७२१ 'ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः' कह आसनमुनिवरने त्यागदिया।
श्री भरतदेव ने प्रसाद के वितरण का तुरन्त कार्य किया ॥
(दोहा) गई माण्डवी कक्ष में, बैठी लिखने लेख।
(समाधिस्थ सम ही उसे सब सकते थे देख) ॥३३८॥
२७२२ आधे घण्टे के बाद, हुआ तैयार अभी का भी विवरण।
शत्रुघ्न वीर को बुलवाकर दे दिया कि इसका हो टंकण ॥
२७२३ वे भी तत्पर थे पूर्णतया, सो टंकित झट करवा लाये।
कुछ काल बाद ही; जिसे देख भाई–भाभी अति हर्षाये ॥
२७२४ भोजन–वेला से पूर्व, देवव्रत ने वह छायाचित्र दिया–
जो थोड़े–से ही समय पूर्व चारों का था तब खींच लिया ॥
२७२५ उसकी भी सहस्र ही प्रतियाँ ** अद्भुत सुयन्त्र से तुरन्त कीं।
उन इभ्यग्राम के सभ्य महोदय ने श्रद्धा से, लाकर दीं ॥
२७२६ पूरे परिशिष्ट और छायाचित्र के सहित 'प्रवचन–संग्रह'–
ग्रंथित करवाया क्योंकि माण्डवी का देवर से था आग्रह ॥
२७२७ नृपवर मुनिवर, दोनों की ही सेवा में जाकर स्वयं रखी–
'संग्रह' की प्रति जब एक एक, तब अति मुदिता माण्डवी दिखी ॥
२७२८ मुनिवर ने सौ प्रतियाँ मँगवा, अपने सँग वितरण हेतु, धरीं।
इतनी ही गहीं देवव्रत ने, गाँवों में क्योंकि भेजनी थीं ॥

---

* अर्थ कामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ (मनु. २/१३) 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।' (मनु-वचन) ['ओ प्रे.]

** कॉपोज़ = फोटो की प्रतियाँ। ('ओ. प्रे.)

वानप्रस्थ–व्रतधारण, पुनर्गृहस्थाश्रम एवं उपसंहार [पद्यमयी प्रानुभूमिका]

(पच्चीसवाँ प्रकरण)

(क) [पच्चीस दिनों से लगातार माण्डवी–चरित्राङ्कन- मग में–
सगिनी, ओ३म्–प्रेमी' की जो रहतीं आई हैं प्रति पग में ॥
(ख) उन श्रद्धा तथा कल्पना को यह देता उर से धन्यवाद ।
पथ में रह पाया जिनके सँग इसको सदैव शुभ समाह्लाद ॥
(ग) दोनों में से श्रद्धा तो है अब भी सँग चलने को तत्पर ।
कल्पना, किन्तु, थक चुकी बहुत, सो खड़ी रहगई है पथपर ॥
(घ) 'कुछ दूर अभीं दो साथ' "ओ३म्-प्रेमी" का यह आग्रह माना ।
इसने कर महती कृपा. संग देना कुछ देर और ठाना ॥
(दोहे) पथ का यह पच्चीसवाँ माइल ø अंतिम जान—
रुकना हमने भी लिया यहीं विवशतः मान ॥ अ)॥
उभय संगिनी के बिना, चलना है कब शक्य ?
रह ले केवल एक ही, तब भी अहो, अशक्य ॥ (आ)॥
(ङ) फिर भी यह माइल तो चल कर दोनों संगिनी सहित सत्वर–
करना ही चाहें परिसमाप्त यात्रा (अब तक-सम रह तत्पर ॥)
(च) अद्भुत संयोग रहा कि दिवस–रजनी, चलते बीते जितने–
माइल भी (प्रकरण रूप) चले इस अंकन-पथ में हम उतने ॥
(छ) हाँ, तो अब चलते हैं आगे, श्रद्धा एवं कल्पना–संग —
भरती आई हैं जो दोनों अब तक हम में पल पल उमंग ॥

(इति पद्यमयी प्रानुभूमिका समाप्ता)

२७२९ ले मामाजी को साथ, गये माण्डवी–भरत अगले दिन ही–
ग्रामों के दौरे पर (जैसी पहले योजना बन चुकी थी ॥)

ø अंग्रेजी का 'माइल' यहां तत्समरूपेण ग्रहण गया है । ("ओ. प्रे.")

२७३० 'प्रवचन संग्रह' की प्रतियां भी माण्डवी न भूली सँग रखना।
जैंसे भूली थीं नहीं देवव्रत जी को भी शत प्रति देना ।।
२७३१ जा एक ग्राम से दूजे में, दूजे से तीजे में, बस, यों—
पर्यटन सभी का सतत किया, छूटता भला कोई भी क्यों ?
२७३९ दौरा करने में डेढ़ मास का समय व्यतीत हुआ ऐसे –
केवल कुछ ही दिन हों पाये हो उन्हें घूमने में जैसे ।।
२७३३ वापिस आने के आठ दिवस उपरान्त, एक दिन प्रभात में —
भर्त्ता से कहा माण्डवी ने– "प्रियतम ! बैंचेनी मम उर में ।।
२७३४ क्या जानूं क्यों ऐसा लगता, मानों वियोग तुमसे होगा ।
चिरकाल के लिए अपना यह सम्मिलनरूप क्रम टूटेगा ।।
२७३५ पहले दुःस्वप्न अवध में जब मैंने कह तुम्हें सुनाया था ।
तब उसको तो भ्रम ही मेरा तुमने तुरंत बतलाया था ।।
२७३६ यह दिखा जागते हुए मुझे सपना-सा अभी अभी जो है – +
तुम इसके प्रति क्या कहते हो ? अब भी क्या भ्रम ही मुझको है ?"
२७३७ अनुमान माण्डवी का यह था– 'प्रियतम फिर करें कथन वैसा–
दुःस्वप्न सुनाने पर उस दिन कर चुके अवध में थे जैसा ।।'
२७३८ पर, बने भरत गंभीर, उन्होंने कहा कि "देवी ! मुझमें भी –
कुछ अवर्णनीया बड़ी क्लान्ति है अकस्मात् बढ़ती जाती ।। "
२७३९ पूरी न भरत की हुई बात, आकर तब तक हो अनुचर ने –
यह कहा कि "अभी बुलाया है स्वाध्याय कक्ष में नृपवर ने।।"
२७४० (अनिवार्य कार्य के बिना कभी उस कक्ष में नहीं [illegible] –
कोई था होता, परिपाटी यह थी सबको पूर्णतः विदित ।।)
२७४१ सो, भरत हुए थोड़े व्याकुल, पर बने शीघ्र ही स्वस्थ चित्त ।
भार्या से कहा कि "भले नहीं मुझको प्रतीत होते निमित्त ।।"
२७४२ बोली माण्डवी कि "देव ! तुम्हें विस्मृत क्यों बना 'योग-दर्शन' ।
आकुलता किसी भाँति की भी किस कारण रखले तव चेतन ?"
(दोहा) यह सुन, भर्त्ता को हुआ, निज गौरव का भान ।
नैनों से तो प्रिया का मान लिया एहसान ।।३३५।।

+ खेद है कि [illegible] कल्पना संगिनी के एतद् विषयक असहयोग के कारण हम इस जाग्रत स्वप्न का विवरण न दे सके – अस्तु । (आ. प्र.)

२७४३ पर, वैनों में यों बोल उठे, "सहचर सर्वथा रहूँ मैं तो ।
सहचारी अगर वेचैन रहे तो कहाँ चैन सहचर को हो ??
२७४४ तव चेतन यदि व्याकुलता के पथ पर ही बढ़ता जाएगा ।
तो सहचर का चेतन कैसे कुछ भी पीछे रह पाएगा ।।
२७४५ सो, पहले तुम वह मग छोड़ो, मैं भी सँग-सँग ही तज दूंगा ।
आकुलता के पथ से हटकर क्यों नहीं तुम्हीं-सा बन लूंगा ??"
२७४६ इस पर दोनों हँस पड़े और फिर भर्त्ता ने प्रस्थान किया ।
'प्रवचन-संग्रह' पर भार्या ने स्वाध्याय हेतु निज ध्यान दिया ।।
२७४७ नानाजी के समीप जाकर जब किया भरत ने अभिवादन ।
तब, दे आशीष, लगे कहने, चिन्तित स्वर में यों नृपति, वचन—
२७४८ "प्रिय वत्स ! अवध से दो आये हैं दूत, लिये जो सन्देशा—
उसको सुनकर मेरे उर में उपजा अनिष्ट का अन्देशा ।।
२७४९ बस, एक वाक्य वे कहते हैं, इसके अतिरिक्त नहीं कुछ भी—
'गुरुवर ने भरतदेव को बुलवाया तुरन्त, भेजिये अभी ।। '
२७५० दशरथ जी अथवा रामचन्द्र का हाल न कुछ भी कहते हैं ।
'क्यों पत्र किसी ने दिया नहीं ?' पूछो तो चुप ही रहते हैं ।।
२७५१ कुछ गोलमाल दिख रहा मुझें, इसलिए तुरन्त चले जाओ ।
जैसी भी कुछ हो दशा वहाँ, देखकर सूचना भिजवाओ ।।
२७५२ कर चुका दूतद्वय से पृच्छा मैं कौशलपूर्वक सब प्रकार ।
अब पुनरपि तुम उनसे पूछो इसमें दिखता कोई न सार ।।
२७५३ यद्यपि सन्देश तुम्हारे ही बारे में है तथापि तुम तो —
ले जाओ साथ बन्धु को भी, यह समीचीन लगता मुझको ।।
२७५४ दोनों बहुओं को फिर आकर तुममें से कोई ले जाना ।
या मैं त्योंही पहुँचा दूँगा ज्योंही वे चाहेंगी जाना ।।"

(दोहे) "जो आज्ञा" कहकर भरत, लौटे बहुत उदास ।
सीधे पहुँचे वे तुरत निज भार्या के पास ।।३३६।।
ज्यों का त्यों उससे कहा, पूरा-पूरा हाल ।
फिर बोले कि "अदृष्ट कुछ लगता है विकराल ।।३३७।।

२७५५ जो हो, मैं अभी अवध के प्रति, बन्धु के संग प्रस्थान करूँ।
चिति की गरिमा न भूलने के तव सुझाव पर नित ध्यान धरूँ॥
२७५६ तुम भी, केवल सहचर को ही सम्मति देकर मत रह जाना।
चेतन का गुरुत्व हो न कभी विस्मृत, सतर्कता अपनाना॥
२७५७ सच्ची सहचरी सदा ही तुम रह लोगी, यह विश्वास मुझे।
फिर भी, कहने-सुनने की तो सहचर की प्यास कभी न बुझे॥
२७५८ सो, कहता हूँ कि 'मार्ग मेरा देखकर उसी पर आ जाना।
मैं अगर बुला भी नहीं सकूं तो स्वयं परिश्रम कर, आना॥'
२७५९ अब सुनना भी तुमसे चाहूं, 'उन्नीस' क्योंकि चेतन मेरा।
है 'वीस' तुम्हारा आत्मा तो, यद्यपि इस नाते ने घेरा॥
२७६० उस विवाद में क्यों पुनः पड़ो जो उस दिन अपने बीच हुआ।
आधा तो सत्य, कथन मेरा, तुमने भी अवश्य माना था॥
२७६१ इसलिए, सह चरण किस पथ पर सहचरी-संग कर ले सहचर।
यह क्यों न बताओ ? रहती हो किस कारण उर में ही रखकर॥
२७६२ बोली माण्डवी कि "तुम सम हो विश्वास मुझे भी पूर्णतया–
ऐसा कि 'रहोगे सहचर तुम'–इतने पर भी चाहूं कहना –
२७६३ है क्योंकि प्यास तुम जैसी ही मुझमें भी कहने सुनने की।
जिनमें से एक, घटी सुनकर पर मिटी न दूजी – कहने की॥
२७६४ अतएव कहूँ कि 'मार्ग मेरा, जिस पर चल, बनलो सहचर तुम—
है 'प्रभु परमेश्वर पर प्रतीति रखने का'; एक मात्र, अनुपम॥
२७६५ 'उस'की ही स्तुति, सत्क्रियासहित, करनी सदैव है मुझ इष्ट—
प्रार्थनोपासना में भी मैं उसको मानूं सबसे वरिष्ट॥
२७६६ शुचिमन्त्र 'तमीळत भरतम्' युत, चितिभावन शुभ शब्दोंवाला–
सर्वथा सर्वदा प्रिय मुझको, मानों हो अमृत का प्याला॥
२७६७ तुम स्वयं 'भरत' नामक हो पर विभुवर तो भरत तुम्हारा भी—
सो, तुम्हें चाहिऐ कि तुम रखो आसरा हमेशा उसका ही॥
२७६८ वैसे तो है अनिवार्य कि उसकी भक्ति करें सब नरनारी।
पर, भरत नाम वाले तुमपर वस्तुतः अधिक जिम्मेदारी।

२७६९ पक्के ईश्वरविश्वासी के सब कष्ट अवश्य नष्ट होते।
अनजाने ही, ओंकारदेव उसका सब क्लेश-पंक धोते॥
२७७० उसकी सुभक्ति करना अथवा उसकी वेदाज्ञा का पालन —
करते रहना भरसक सदैव, बस, यही चाहता मम चेतन॥
२७७१ मेरी हार्दिक अभिलाषा है– 'तुम भी सच्चे सहचर बनकर—
मेरे सँग-सँग चलते रह लो इस पावन आध्यात्मिक पथ पर॥
२७७२ श्री उपाध्यायजी गुरुवर ने लिखकर यह मंत्र दिया मुझको—
भावार्थयुक्त अत्युत्तम है, सो, कवचरूप दूं मैं तुमको॥
२७७३ मैंने तो अर्थसहित इसको है याद कर लिया पूर्णतया।
पर तुम्हें स्मरण मेरा भी यह दिलवा पावेगा यदाकदा॥
२७७४ इसके प्रतिदिन पारायण से उद्विग्नभाव मिट पावेगा।
यदि अशान्ति का हो कुछ प्रभाव तो वह यथेष्ट घट जावेगा॥"
(दोहे) यह कह, लाई माण्डवी, पुण्य-पत्र वह भव्य।
जिस पर वरदायी लिखा था सुमन्त्र शुचि दिव्य॥३३८॥
उसको गहकर भरत ने प्रकट किया आभार।
नैनों से ही, और फिर स्वयं दिया उपहार॥३३९॥
२७७५ 'सँस्मृति-पुस्तिका (योग विवरण)' जेब से निकाली उसी समय —
जिसमें था निज के मननपूर्ण सुविचारों का भी शुभ संचय॥
२७७६ बोले कि "मार्ग जो मेरा है, उसका यह बोध कराएगी।
'संस्मृति-पुस्तिका', मंत्र-सम ही तुमको मम स्मरण दिलाएगी॥"
२७७७ भार्या ने उसको निधि समान मानकर यों तुरत ग्रहण किया।
भर्ता ने मानों प्रणयभाव का ही उसमें सम्भरण किया॥
२७७८ तब तक फिर से आया अनुचर, बोला कि 'सुरथ प्रस्तुत, श्रीमन्!
है नृपादेश, अविलम्ब गमन करने का, भूलें क्यों भगवन्!!"
२७७९ तदनन्तर किया 'नमस्ते', हाथों से ही, भरत-माण्डवी ने।
दोनों की आँखें हुईं सजल, की बात न जिन चारों ही नें॥
२७८० दो इनके, दो उनके लोचन, जैसे निज भाषा गये भूल।
(या गीलापन बढ़ जाने से थी शब्दों वाली दबी धूल॥)

२७८१ क्या पता, खड़े कब तक रहते दोनों, प्रणाम की मुद्रा में।
यदि नहीं वही अनुचर पुनरपि कहता कि, "बैठिये अब रथ में॥"
२७८२ शत्रुघ्न और श्रुतिकीर्त्ति मिले आपस में इसी प्रकार उधर।
थे जिस प्रकार मिल रहे भरत माण्डवी प्रेम से अभी, इधर॥
२७८३ नानाजी से, मामाजी से, मामीजी से, अशोक से भी—
विधिपूर्वक यथायोग्य अभिवादन-क्रिया उभय भ्राता ने की॥
२७८४ चल पड़े भरत-शत्रुघ्न, उभय दूतों के सँग, चढ़ शुभ रथ पर।
लखती पत्नी-द्वय रहीं उन्हें, दिखपाया रथ जब तक पथ पर॥

\+ \+ \+ \+ \+ \+

२७८५ प्रतिदिन स्वाध्याय माण्डवी अत्र थी करती 'योग-पुस्तिका' का—
दैनिक पारायण उधर भरत करते थे शुभा उस ऋचा का॥
२७८६ जो पत्नी ने दी प्रणय-भेंट, जिसका महत्व यों अधिक बढ़ा—
था क्योंकि उसी के संग स्मरण वाला भी वर परिशिष्ट जुड़ा॥
(दोहा) कवचरूप जिसको कहा भार्या ने, सुख-मूल।
जिससे करें न प्रभावित, कष्ट क्लेश के शूल॥३४०॥
२७८७ वह मंत्र 'तन्नोऽळा प्रथमम्' के पावन प्रतीकवाला उत्तम!
देता था भरतदेव को भी, जपने पर, नित्यानन्द परम॥
२७८८ सँग-सँग ही याद, माण्डवी की, आती जब उनको प्रीति भरी—
तब मानों बसती थी उर में कुछ देर के लिए प्रणय-पुरी॥
२७८९ बिल्कुल ऐसी ही दशा था रही भरतप्रिया की भी सचमुच।
जब 'योग-पुस्तिका' पढ़ती थी तब अन्य भूल जाती सबकुछ॥
२७९० उसके माध्यम से भर्त्ता की संस्मृति में बनती थी तन्मय।
अक्षर अक्षर में उसे दिखाई देता था प्रिय-भरत-प्रणय॥
२७९१ थी आग बराबर लगी हुई दोनों ही ओर किन्तु फिर भी—
क्या मजाल कोई करपाये बाहर, पहचान तनिक उसकी।
२७९२ [वाल्मीकि महाकवि का लेकर आधार, किया पद्यानुवाद—
जो है रामायण का हमने, उसकी दिलवाते यहाँ याद॥ %

% पीछे पि. छं. क्र. ११९८ की पादटिप्पणी पुनः पढ़िये। ["ओ. प्रे."]

२७९३ इसलिए कि भरत, अयोध्या में पहुँचे, उससे अगला विवरण—
उसमें अंकित है यथास्थान, पर यहां नहीं उसका प्रकरण ।।
२७९४ सो, उसके इच्छुक नारीनर, कृपया लख लें वह सभी वहां ।
(तजते हैं असंबद्ध-सम ही उसको हम, लिखते हैं न यहाँ ।।)
२७९५ जब हुआ एक सप्ताह पूर्ण, तब फिर प्रभात में बेचैनी —
माण्डवी लगी करने अनुभव इक दिन, बिल्कुल पहले जैसी ।।
२७९६ थे विद्यमान इस समय कहाँ सुनने को उसकी बात, भरत ?
अन्यथा उन्हें बतला देती वह अपने उर की दशा तुरत ।।
२७९७ नानाजी, मामाजी अथवा मामीजी + से कहना अनुचित—
उसनें समझा, अनुजा को भी बतलाना उसे न जँचा उचित ।।
२७९८ केवल शोभा दीदी से ही मिलकर कहना, उसने ठाना ।
इस हेतु ठीक समझा उसने एकाकी उनके घर जाना ।।
२७९९ जब निश्चय में बदला विचार तब मामीजी से ले अनुमति ।
भृत्या के सँग माण्डवी गई, शोभादेवी के घर के प्रति ।।

\+ \+ \+ \+ \+ \+

२८०० संयोगवशात् अकेली थीं घर में सर्वथा उस समय वे ।
बच्चे भी दोनों कहीं खेलने गये हुए, वन मुदमय थे ।।
२८०१ वापिस, भृत्या को, भेज दिया, फिर कहा कि "मेरा बुरा हाल ।"
(मानों शब्दों का चित्र बना दिखला डाला उर-अन्तराल ।।)
२८०२ यह सुनकर शोभा दीदी ने अपनी आँखें मूँदीं कुछ क्षण ।
उनमें दिखते थे समाधिस्थ योगी सम ही तब सब लक्षण ।।
२८०३ फिर निज के नेत्र माण्डवी के नेत्रों में डाल, वचन ऐसे—
बोलीं (कोई सुदिव्यद्रष्टा करता हो भव्य कथन जैसे ।।)
(दोहे) "कहना उचित न है बहुत, होने वाली बात ।
चाहे कितनी ही रहें, वक्ता को वे ज्ञात ।।३४१।।
इसीलिए संकेत मैं देती हूँ इस काल ।
है सचमुच लखना तुझे, घटनाक्रम विकराल ।।३४ ।।

\+ यद्यपि हम इसे उचित नहीं मानते कि पति के नाना आदि को पत्नी भी नाना आदि कहे तथापि प्रचलनानुसार लिख दिया है । ('ओ. प्रे.")

२८०४ 'तव सास अनार्या सहसा ही बन लेगी' ऐसा भविष्य में-
तुमसे जो हूँ कहचुकी, उसी के शाखा पल्लव दिखते हैं ॥
२८०५ तू सूझ बूझ से, अनुद्विग्नमनवाली रह कर कार्यरता-
सर्वदा बनी रहना, केवल इस भांति मिलेगी यशस्विता ॥
२८०६ है विकट परीक्षा की आई वास्तव में तेरे लिये घड़ी।
पर मुझे प्रतीति है कि तुझको मिल सके सफलता बहुत बड़ी ॥
२८०७ अविलम्ब तुझे पति के समीप जाना चाहिये, अवश्य, अरी।
ऐसे अवसर पर दूर भला कैसे रह ले सहधर्मचरी ॥
२८०८ दे वर्तमान पर पूर्ण ध्यान, भावी स्वयमेव सुधर लेगी।
प्रभु की प्रतीति, क्षमता भारी, निःसंशय तुझमें भर देगी ॥
२८०९ अच्छा, अब देर न कर बिलकुल, तत्काल नृपतिवर की अनुमति-
लेकर सहानुजा तू चल पड़ सत्वर ही अवधपुरी के प्रति ॥
२८१० मेरे घर आई है, फिर भी चाहूँ न मैं तुझे ठहराना।
उल्टे, धकिया कर कहती हूँ-'करती आरंभ क्यों न जाना ॥"
२८११ दोनों बच्चे तब तक आये, पर मां-मौसी गंभीर दिखीं।
सो, किया 'नमस्ते' ही केवल, बातें न किसी से कुछ भी कीं ॥
२८१२ शोभा ने कहा कि "इनके सँग महलों तक तनिक चले जाओ।
तुम दोनों इनको पहुँचा कर सत्वर ही अभी लौट आओ।"
२८१३ "जो आज्ञा" कहकर बालक-द्वय मौसी के सँग सँग चले गये।
पर नहीं मार्ग में भी कोई कुछ बोला, मौनी सभी रहे ॥
२८१४ कर पुनः नमस्ते, शुभाशीष पाकर बच्चे जब गये उधर।
तब 'आगे क्या कैसे करना'-माण्डवी सोचने लगी इधर ॥
२८१५ कुछ देर बाद अग्रजा गई अनुजा के पास और उसको—
सब कुछ बतलाया पूर्णतया जो सुना तथा करना था जो ॥
२८१६ फिर दोनों ही, नानाजी से अनुमति लेने के लिये गईं।
आज ही उन्हें क्यों जाना है, इस विषयक बातें सभी कहीं ॥
२८१७ राजा बोले कि "प्रबन्ध अभी तव गमन हेतु हो जायगा।
मैंने जो कहा भरत से था वह असत्य क्यों रह पाएगा ??

२८१८ चिन्तित मैं भी हूँ पर अशान्त उद्विग्न कभी मुझको न लखो।
बहुओं ! तुम दोनों बुद्धिमती, सो मुझे देखकर धैर्य्य धरो ॥
२८१९ ओंकारनाथ पर खोओ मत विश्वास, करेगा वह शुभ ही।
उसके सुन्याय के संग दया भी रहे, नीति यह अद्‌भुत-सी ॥
२८२० पर, कहते वेद और बुधजन ऐसा कि अर्यमा × परमात्मा-
है दयालु भी पूरा पूरा उन पर जो सुपात्र हों आत्मा ॥
२८२१ तव पतियों समेत दोनों तुम प्रभु कृपा पात्र हो सब प्रकार।
इसलिये भरोसा है- चारों पर कृपालु होंगे शिवोदार ॥
२८२२ फिर भी, कर्मानुसार जो कुछ है जिसे भुगतना, उससे तो-
बचना संभव न किसी का भी चाहे कितना ही ज्ञानी हो ॥●
२८२३ अन्तर इतना ही पड़ता है, सहते हँस हँस कर उसे विज्ञ।
कोसते हुए परमेश्वर को रो रो कर भुगतें मनुज अज्ञ ॥
२८२४ यह थोड़ा कहा बहुत समझो, इस पर कर पूरी तरह मनन -
इसके प्रकाश में तुम दोनों रखती रहना उत्तम वर्त्तन ॥"

(दोहे) इतने में रथ आ गया, दोनों हुईं सवार।
(होकर आई थीं वहाँ पहले से तैयार ॥)॥३४३॥
प्रणामादि का परस्पर कर आदान प्रदान-
(मर्यादा का भी किया पूर्णतया सम्मान ॥ ॥३४४॥
चला अवध की तरफ रथ, रह लीं दोनों मौन।
(शायद हों यह सोचती, क्या कब कह दे कौन)॥३४५॥
यात्रा करके सात दिन, जब पहुँचीं पुर-द्वार--
तब जाना कि 'गये नृपति दशरथ, स्वर्ग सिधार' ॥३४६॥

× अर्यमा = न्यायकारी। ('ओ प्रे.")

● महा भारत, शान्ति पर्व श्लोक २२६ का भाव यह है कि "मनुष्य तो क्या परमेश्वर भी मनुष्य को कर्मजाल से मुक्त नहीं कर सकता।" इसी 'पर्व' का १६२/१८ भी पठनीय है।
("ओ. प्रे.")

२८२५ यह भी जाना कि 'रामसीता लक्ष्मण, तीनों, वनवासी हैं।
नृप-कुटुम्ब के सब नरनारी, उनके हित, बने प्रवासी हैं॥
२८२६ वापिस लाने के लिए उन्हें केवल न राजपरिवारीजन—
प्रत्युत अधिकांश नगरवासी करके प्रवास, पहुँचे हैं वन॥'
२८२७ यह सब सुनते ही वे दोनों, रथ मुड़वाकर, दिशि में, वन की —
जा पहुँची वहाँ कुछ समय में, थीं जहाँ भीड़ सब पुरजन की॥
२८२८ जब निकट गईं तब पता चला– 'श्री भरतदेव ठहरा सबको–
खोज में गये अग्रज की, सो प्रस्थान, बिना आज्ञा कब हो ?'
२८२९ इतने में ही संदेश मिला– 'श्रीराम ने स्वयं बुलवाया।
उन सब परिजन, पुरजन को हो, जिनका समूह, लेने आया॥
२८३० ये दोनों भी, मिलकर सबमें, रामाश्रम के प्रति गईं तुरत।
सीतादीदी से मिली माण्डवी, अग्रज से ज्यों मिले भरत॥
२८३१ राम की पादुका लेकर जब उनके प्रियतम वापिस आये।
तब नन्दिग्राम में बसने तक पतिपत्नी कहीं न मिल पाये।

(दोहा) अनुमति लेकर सास की, पहुँची नन्दीग्राम।
भरतप्रिया इक दिन ललक, जपती पति का नाम॥३४७॥

२८३२ भर्त्ता बोले कि "सुनो देवी ! चौदह वर्षों तक अग्रज-सम–
रह लूँ मुनिवेष धारकर मैं, तुम रह लो सीता भाभी सम॥
२८३३ व्रत लिया वानप्रस्थाश्रम का उन भर्त्ताभार्या ने जैसे।
हम तुम भी व्रती आज से ही वन लें तब तक बिल्कुल वैसे।"
२८३४ इसपर "तथास्तु" कहकर इतनी जोड़ दी बात उस भार्या ने।
(माण्डवी नामावाली विदुषी, सच्चे अर्थों में आर्या ने॥)
२८३५ बोली कि "सहचरी होने से मैं राजकाज में सहायता--
देने की इच्छा रखती हूँ तुमको, जिसकी मुझमें क्षमता॥
२८३६ साँकाश्यपुरी में तथा राजगृह में ग्रामों का दौरा मैं--
कर चुकी अतः ग्रामों विषयक अनुभव भी मुझे बहुत-से हैं॥
२८३७ कृपया अनुमति दो, हे प्रियतम ! जो सुव्रत-यशोदा सँग जाकर।
गाँवों की सेवा कर पाऊँ, वैदिक मर्यादा अपना कर॥

२८३८ श्रुतिकीर्त्ति, उर्मिला के सँगसँग शत्रुघ्न करें सेवा, पुर में।
तुमको सहयोग पूर्णतः दें, यह रखें भावना हम उर में ॥"
२८३९ पति ने पत्नी को अनुमति दी पूरी, उसकी इच्छानुसार।
साथ ही सराहा भी उसका सौहार्दयुक्त उत्तम विचार ॥
२८४० सर्वाधिक अच्छी लगी उन्हें, भार्या की व्रतधारण-क्षमता ॥
तत्काल वानप्रस्थों की जो करने लग पड़ी पूर्ण समता ॥
२८४१ तज दिया गृहस्थों के समान रखना पति के प्रति निज वर्त्तन।
बातों तक में कर लिया तुरत व्रत के अनुकूल सु-परिवर्तन ॥
२८४२ इस बारे में सु-प्रशंसा जो भर्त्ता ने की, वह रुची नहीं --
भार्या को बिल्कुल भी (यद्यपि सारी ही बातें सत्य रहीं ॥)
२८४३ सो, बात बदलने हेतु कहा, नानाजी का सन्देश तुरत।
जिसको सुनने में आदर से निज शीश झुकाये रहे भरत ॥
२८४४ फिर यह पूछा कि "तुम्हें कैसे हो गया विदित सब हाल, अहो।
हे देवि ! किस तरह जान सकीं यह घटनाक्रम विकराल, कहो ??"
२८४५ उत्तर में शोभादीदी की बातों का विवरण पूर्ण दिया।
बेचैनी का अनुभव पुनरपि होना भी पूरा कथन किया ॥
२८४६ बोली अन्त में कि "तव दत्ता पुस्तिका दे सकी बहुत बोध।
बनता जाता है नित्य सुगम उसके द्वारा मम आत्म-शोध ॥"
२८४७ गरिमा 'भरतम्' युत सुमन्त्र की, यह सुन, पति ने भी बतलाई।
कब कैसे कितनी सहायता उस शुभा ऋचा से मिल पाई ॥

(दोहा) फिर दोनों में तय हुए आगामी कर्त्तव्य।
किस प्रकार 'व्रत' पर उन्हें सदा ध्यान धर्त्तव्य ॥३८॥

२८४८ निश्चय आपस में हुआ-'सम्मिलन एक मास में एक बार —
सो भी कम से कम एक व्यक्ति की समुपस्थिति में, निर्विकार ॥
२८४९ घण्टे भर से हो अधिक नहीं वह मासिक मिलनकाल अपना।
मन से भी रहे तृतीयाश्रम वाले तप का निशिदिन तपना ॥
२८५० चौदह वर्षों तक चारुतया 'निश्चय' सब हुए पूर्ण पालित।
वैदिक आदर्शों से जीवन दोनों के, रहे सु-संचालित ॥

२८५१ घर में सास की सदा सेवा पहले के सम ही करती थी।
माण्डवी, मोद से इस प्रकार कैकेयी का मन भरती थी ॥
२८५२ 'है आत्मग्लानि सास को स्वयं' कर अनुभव पुत्रवधू ऐसा–
आर्यत्व पूर्ववत् लख उन में, वर्त्तन रखती थी पहले–सा ॥
२८५३ यद्यपि ग्रामों की, पति समक्ष, थी स्वयँ गही जिम्मेदारी।
पुर की सेवा में भी तथापि थी उसको दिलचस्पी भारी ॥
२८५४ शत्रुघ्न तथा अनुजाद्वय से पूछती सर्वदा रहती थी।
कुछ कहने योग्य समझने पर समझायश देकर कहती थी ॥
२८५५ 'प्रवचन-संग्रह' का गाँवों में स्वयमेव किया करती प्रचार।
नगरीय क्षेत्र में अनुजाद्वय द्वारा करवाती थी प्रसार ॥
२८५६ उससे उन्नत हों व्यक्ति व्यक्ति, फिर समूह की भी बढ़े शक्ति।
ऐसी ही 'सँग्रह'–प्रचार के अतिरिक्त, सिखाती थी सुयुक्ति ॥
२८५७ अर्थात् सजे दैहिक विकास पहले, सारे नर नारी का।
फिर हो आत्मिक उन्नयन, कभी हो नहीं भाव लाचारी का ॥
२८५८ सब में अदीनता की भव्या भावना वेदसम्मता * रहे।
कोई न आत्म गौरव तजकर थोड़ी-सी भी हीनता गहे ॥
२८५९ यों देह और देही का जो कर लें विधिपूर्वक समुत्थान--
वे सामाजिक विकास का भी रख लें सतर्कतायुक्त ध्यान ॥
२८६० बस, इसी प्रयोजन से प्रचार करती थी 'प्रवचन संग्रह का –
सारे नारी नर से उसका रहता सदैव यह आग्रह था –
२८६१ 'इसका दैनिक स्वाध्याय करो, भरसक धारो भी जीवन में।'
(यह प्रबल प्रेरणा वह देती रहती थी मानों घुस मन में ॥)
२८६२ बहुधा कहती थी भाषण में ऐसा कि "न्याय का होना ही–
चुपके चुपके, रहता न कभी अच्छे शासन में तो काफी ॥
२८६३ यह बल्कि बहुत आवश्यक है– सब जानें, न्याय हो रहा है।
साथ ही, दिखे यह भी कि बहिष्कृत बन, अन्याय रो रहा है ॥

* "अदीनाः स्याम शरदः शतम् । भूयश्च शरदः शतात् ॥"
(यजु. ३६/२४ अंतिमांश) ("ओ. प्रे.")

२८६४ बस, इसी तरह दैहिक, आत्मिक, सामाजिक; तीनों ही विकास-
हों प्रतीत भी सबको,- इसका होता रह ले पूरा प्रयास ।।"
२८६५ रख सम्मुख अपना उदाहरण, वह प्रेरित करती थी सबको।
'नेता हो कर्मठ न बने तो जनता पर प्रभाव कब हो ??'

× × ×

२८६६ पति से प्रति मास भेंट करने, जब नन्दिग्राम को थी जाती-
अपने कार्यों का विवरण, तब, उनको सम्पूर्ण सुना आती ।।
२८६७ यदि कुछ सुझाव थे वे देते, तो उन पर कर विचारविनिमय-
तत्काल, उन्हीं के समक्ष वह कर लेती थी पक्का निश्चय ।।
२८६८ अपने सँग सुव्रत, यशोदा को बहुधा ले जाया करती थी।
श्रुतिकीर्ति, उर्मिला को भी वह संगिनि—रूप में वरती थी ।।
२८६९ एकाध बार मँथरा अकेली ही संगिनी मिली उसको ।
पर उसे न बिलकुल भी कोसा, ले गई अपितु अति हर्षित हो ।।

× × ×

२८७० जब चौदह वर्ष हुए पूरे, लौटे तीनों ही वनवासी ।
तब पुनः अयोध्या में आये व्रतधारी नन्दिग्रामवासी ।।
२८७१ [माण्डवी हर्षिता कितनी थी इसका अनुमान कौन कर ले ?
(निःसंशय अच्छे से अच्छा कवि भी पूर्णतः मौन धर ले !!)]
२८७२ ऐसा लगता था मानो फिर आई है आज 'सुहागरात'
(कर सके निशा का सुख अंकित यह कहाँ लेखनी में बिसात !!)
२८७३ जो गृहस्थ रह भी वानप्रस्थ चौदह वर्षों तक बने रहे।
उनके तप का फल, होगा कितना सुमधुर, कैसे कौन कहे ??
२८७४ कुछ दिनों बाद, भरताग्रज ने. युवराज, भरत को बना दिया।
तब युवराज्ञी का भव्य सुपद उन भरत-प्रिया ने ग्रहण किया ।।
२८७५ श्री रामचन्द्र की सेवा में यह किया निवेदन उसी समय ।
"हे देव ! रचाऊँगी सुयज्ञ, था मैंने किया हुआ निश्चय ।।
२८७६ वह शुभ अवसर अब आया है, सो अनुमति दें कृपया मुझको।
बनवाएँ पूरी तरह सफल, सहयोग–दान द्वारा, उसको ।।

२८७७ तीनों मान्या सासों की मैं स्वीकृति संप्राप्त कर चुकी हूँ ।
सीतादीदी की भी सहमति, प्रोत्साहनसहित, पा चुकी हूँ ।।"

(दोहे) यह सुनकर प्रमुदित बहुत हुए यशस्वी राम ।
कहा कि "यह प्रस्ताव तो है अत्यंत ललाम ।।३४९।।
करो माण्डवी बहू ! तुम, सुयज्ञ भले प्रकार ।
भरतभ्रात पर मैं रखूँ, पूर्ण व्यवस्था–भार ।।३५०।।

२८७८ अनुरोध एक मेरा मानो– शोभादेवी को बुलवाओ ।
मुझको ही क्यों, सबको उनके दर्शन, सुयज्ञ में, करवाओ ।।"
२८७९ इस पर यों कहा माण्डवी ने– 'अनुरोध नहीं 'आज्ञा' कहिये ।
आदेश जानकर मानूंगी इसको, आश्वस्त आप रहिये ।।
२८८० कहते न आप, श्रीमन् ! तब भी शोभा दीदी को सु-निमन्त्रण –
मैं देती ही, पर अब तो दूं अत्याग्रहपूर्वक आमन्त्रण ।।
२८८१ उनके पति, श्वसुर तथा दोनों बच्चों को भी बुलवाऊँगी ।
हे भगवन् ! मैं स्वयमेव उन्हें आपसे खूब मिलवाऊंगी ।।
२८८२ सांकाश्यपुरी से उनके पूज्य पिता जी, मान्या माताजी –
बुलवाये जावेंगे, मेरे जो क्रमशः गुरुवर, गुरुपत्नी ।।
२८८३ मम पूज्यपिता कुशध्वज राजा एवं मान्या जननी मेरी ।
कैसे न बुलाये जाएंगे ? कब करें आगमन में देरी ??
२८८४ श्री सेठ सुदर्शन, पत्नी-पुत्र समेत, रहेंगे आमन्त्रित ।
उप महापौर एवं उनकी पत्नी भी होंगे सुनिमन्त्रित ।।
२८८५ प्राचार्या जी को भी अवश्य आमन्त्रण दूंगी आने का ।
शुभ इभ्यग्राम के सभ्य देवव्रतजी का नाम न है छूटा ।।
२८८६ मिथिला से ताऊजी एवं ताईजी भी अवश्य आवें–
ऐसा आवेदन भेजूंगी जिसको वे नहीं टाल पावें ।।
२८८७ नानाजी, मामाजी एवं मामीजी को बुलवाना है ।
प्रियवर देवर अशोक जी को बिल्कुल भी नहीं भुलाना है ।।
२८८८ अन्य भी, याद कर-कर अनेक आमन्त्रण भेजूंगी, भगवन् ।
कौशिक मुनिवर को सानुरोध अनुनय पहुँचाऊँगी श्रीमन् !!

२८८९ हे आप ओ३म् प्रेमी पक्के, तव जन्म दिवस भी अतिपावन । ∅
उस दिन ही यज्ञ समायोजित करना चाहे मेरा चेतन ।।
२८९० जो शुभाचैत्र शुक्ला नवमी, उस दिन आपका सुजन्म हुआ ।
इस यज्ञ हेतु भी इसीलिये वह मैंने सुदिन पसन्द किया ।।
२८९१ आपके नाम से ही वह तिथि कहलाने लगी 'रामनवमी' ।
ऐसे अवसर पर क्यों न यज्ञ कर हमहों विभु के आभारी ।।
२८९२ हैं गौरवशाली हम भी जो आपके स्नेहभाजन प्रतिक्षण–
रहकर, लख पाते 'मर्यादापुरुषोत्तम' का शुचि आकर्षण ।।
२८९३ मेरे भर्त्ता, हैं अनुजमात्र आपके नहीं, वे दास–भाव –
धारण करके आपका, रहें; सर्वाधिक उनपर तव प्रभाव ।
२८९४ मैं हूं उनकी सहचरी यतः, दासी आपकी अतः रहना –
इस भाँति सर्वथा समुचित है; यह पड़ किसी को कब कहना !!"

(दोहा) यथासमय सम्पन्न भी हुआ सु-पावन याग ।
जिसमें शतशः नारिनर लेने आये भाग ।।३५१।।

२८९५ माण्डवी, राज्य के कार्यों में भर्त्ता का हाथ बँटाती थी ।
अपनी प्रतिभा से जनजन को सुख-वैभवयुक्त बनाती थी ।।
२८९६ कोई भी कहीं न था ऐसा जो उससे कभी अतुष्ट हुआ ।
उसकी सुयोजनाओं द्वारा जनता का संस्तर उच्च हुआ ।।

+ + + + + +

२८९७ कालान्तर में, कन्या-सुरत्न को जन्म दिया उसने जिस दिन–
'अपने से भी अच्छी इसको दूं बना'; यही ठाना उस दिन ।।

∅ 'कहां राजा भोज, कहां भुजवा तेली'– जैसे 'भोज' नाम होने मात्र से भुजवा को राजा भोज की समता, क्षमता प्राप्त नहीं हो सकी थी वैसे ही 'रामनारायण' नाम होने मात्र से ही यद्यपि इस 'ओ३म् प्रेमी' उप-नामधारी अकिंचन को भी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम की किंचित् समता तक नहीं मिल सकती है तथापि इस 'नाचीज़' का जन्म भी (सन् १९१८ ई. सं. १९७५ वि.) की रामनवमी को ही हुआ था– अस्तु । ("ओ प्रे.")

२८९८ मन में सोचा कि 'रह सकी हूँ अच्छी पुत्री बनकर मैं ज्यों।
क्या विशेषता मेरी जो यह रह ले होकर, बस, केवल त्यों ।।
२८९९ अच्छी पत्नी बन पाई हूँ करके सुयत्न मैं जिस प्रकार।
उस मार्ग चलाने का इसको है मुझपर ही क्या नहीं भार ??
२९०० अब तक अवसर कब आया था माता होने का जीवन में ?
जब दिया सुयोग, देव शिव ने, तब क्यों न हर्ष हो चेतन में ??
२९०१ कैसी होतीं अच्छी माता, इसके उदाहरण हैं अनेक।
गहती आई संस्कार सदा जिनसे मैं, रखकर वर-विवेक ।।
२९०२ सबसे पहले तो मम जननी, आदर्श, अहा, इस बारे में।
फिर विदेह-पत्नी, ताईजी क्यों अनुकरणीया नहीं बनें ??
२९०३ गुरुवर की आर्या भार्या जो गुरुआनीजी आदरणीया।
वे भी अवश्य मुझको पूरी पूरी सदैव अनुकरणीया ।।
२९०४ मेरी माता ने हम दोनों बहिनों को योग्य बनाया है।
ताईजी ने उनकी दोनों कन्याओं को विकसाया है ।।
२९०५ सीतादीदी, उर्मिला, उभय, कितनी उदात्त भावनामयी।
उनमें से भी गुरुआनी-सी मेरी, हैं ज्येष्ठा वैदेही ।।
२९०६ आहा, कैसी अच्छी शिक्षा, साधना हेतु दी मिथिला में।
जिसके अनुसार अभी तक भी अभ्यास किया करती हूँ मैं ।।
२९०७ फिर आ सांकाश्यपुरी में जो बतलाई त्रुटि, अपनेपन से।
एवं योगज-सामर्थ्य-जन्य जो कथन किया था शुचि मन से ।।
२९०८ वह सब, चलचित्रों के समान है घूम रहा मेरे समक्ष।
(मानो छविगृह बनगया आज हो मेरा यह विश्राम-कक्ष ।।)
२९०९ शोभादीदी को माता के शुभरूप में लखा मैंने है।
उनके दोनों बच्चे सुशील इतने, यह श्रेय उन्हीं को है ।।
२९१० उन बच्चों को भूलूं कैसे, मेरे कानों में गूंज रहे—
श्रुतिमन्त्र और शुचि श्लोक जिन्हें गा कर दोनों ने मधुर कहे ।।
२९११ सुखदा मामी का मातृरूप सर्वदा रहेगा मुझे याद।
उनके सुत, अशोक, ने कैसा था यथानाम, सौंपा प्रसाद ।।

२९१२ है बालक होनहार तो वह, पर उसके उत्तम विकास में—
उसकी जननी का बहुत हाथ, यह तथ्य क्यों, भला, भूलूं मैं ??
२९१३ कौसल्या जी ने आर्य राम, श्रेष्टा माता रह, विकसाये।
क्या नहीं सुमित्राजी ने भी उनके सुतद्वय हैं चमकाये ??
२९१४ आर्या कैकेयीजी को लख उनकी जननी का स-सम्मान।
अच्छी माता होने विषयक मैं करती रहती सदनुमान ॥
२९१५ वे स्वयं सफल माता, जिनकी शिक्षा सुपावनी पाकर ही—
ममदेव भरतजी आर्यपुत्र, बन सके गुणों के सु-संग्रही ॥
२९१६ इतनी सारी माताओं का आदर्श सामने धर अपने
क्यों नहीं सफल मातापन के, साकार कर सकूं मैं सपने !!
२९१७ [लो, अब कल्पना, संग बिल्कुल चलने को है तैयार नहीं।
सो, आगे बढ़ सकना सम्भव रह पाया किसी प्रकार नहीं ॥
२९१८ वाचक, श्रोता सब नारीनर हैं धन्यवाद के पात्र, अहो।
क्यों उनके प्रति अकृतज्ञ रहे रचनाकर्त्ता, अन्त में, कहो ??
२९१९ श्रद्धा, कल्पना-उभय-के प्रति आभार प्रदर्शन करता है।
सु-कृतज्ञ 'ओ३म् प्रेमी', उनके चरणों में निज शिर धरता है ॥
२९२० यदि उनका मिलता साथ नहीं एवं पूरा प्रोत्साहन भी –
तो सम्भव होता नहीं माण्डवी-अंकन-मग में गमन कभी ॥
२९२१ यद्यपि विस्मित है स्वयं 'ओ३म् प्रेमी' ही अपनी रचना पर।
उसमें तथापि लख मौलिकता, उपजे गौरव का भाव प्रखर ॥
२९२२ कैसे उस जैसा अकवि, अकिंचन जन यह सब कुछ रच पाया।
सचमुच रहस्य है (कहाँ समझ में उसकी ही कुछ भी आया॥)
२९२३ चाहे कोई वाचक, श्रोता माने या इसे अमान्य करे –
पर, वास्तव में, सामान्य व्यक्ति ने असामान्य हैं भाव धरे ॥
२९२४ वह इसका श्रेय किसे दे दे ? किसका हो पावे आभारी ?
यह पता ही नहीं चलता है, उसकी चिति खोज-खोज हारी ॥
२९२५ अनुमान है कि स्वाध्याय तथा सत्संग, सौंपते रहे उभय –
जो जो संस्कार, उन्हीं से था पूरित कर्त्ता का विमल हृदय ॥

१९ ६ उन पावन संस्कारों ने ही शायद सु–प्रेरणा दी वैसी—
जिससे बन सकी ' माण्डवी ' जो उपमा में अपने ही जैसी ॥
१९२७ अज्ञात सुप्रेरक तत्वों को है धन्यवाद जो सब मिलकर–
प्रतिभा विकसाते रहे 'ओ३म् प्रेमी' के उर में नित खिलकर ॥

(दोहे) करे 'ओ३म्-प्रेमी', परम प्रभु को विनत प्रणाम ।
जिनकी महती कृपा से अंकन हुआ ललाम ॥३५२॥
(वही ' ओ३म् प्रेमी ' कि जो रखे 'राम' युत नाम ।
जिसके हैं आदर्श, प्रिय, त्रेतायुग के राम ॥३५३॥
भरताग्रज वे, माण्डवी के जो शुचितर ' ज्येष्ठ ' ।
जीजाजी भी उसी के, मर्यादित नर–श्रेष्ठ ॥३५४॥
उनके ही शुभ जन्म दिन पर होकर उत्पन्न—
बना ' ओ३म् प्रेमी ' अहा, कुछ गौरव--संपन्न) ॥३५५॥
किया 'माण्डवी'-- रचन का इसने यह जो कार्य—
इसका मूल्यांकन सही कर लें आर्या, आर्य ॥३५६॥
सन्नारी माण्डवी का लिखा चरित अभिराम ।
देता अपनी लेखनी को अब यह विश्राम ॥३५७॥]

[समाप्त]

(१०-६-१९६७ ई० रात्रि, १२॥ बजे)

गद्यमय पश्चात्-कथन

(प्रारंभिक 'आत्म-निवेदन' के ही विस्तृत विरल विचित्र व्याख्यान-तुल्य ।)

जिस प्रकार किसी दैवीय प्रेरणा से १७-५-६७ (मेरे विवाह की ३०वीं वर्षग्रंथि) को रात्रि के ११।। बजे 'माण्डवी' का प्रणयन अप्रत्याशित, अकल्पित रूपेण अकस्मात् प्रारम्भ हुआ तथा प्रायः अनवरत रूपेण २५ दिनों (रातों भी) चलता रहकर दिनांक १०-६-६७ को रात्रि के ही १२।। बजे समाप्त हुआ, उसी प्रकार १७-६-६७ को प्रातः ६।। बजे सहसा (बल्कि बरबस जैसा) यह 'गद्यमय पश्चात्-कथन' प्रस्तुत हो रहा है। 'माण्डवी', जिसमें कि २९२७ प्रियछंद एवं ३५७ दोहे बन गये हैं, कैसी रचना हो पाई; इसका निर्णय तो ध्यानपूर्वक पढ़ या सुनकर आप सब महिला, पुरुष ही कर सकेंगे परन्तु इतना मैं भी अपनी ओर से कहना (अधिक सत्य कहूँ तो भीतरी प्रेरणा पर आपके सम्मुख प्रस्तुत करना) अनिवार्यतः चाहता हूं कि- (१) अब तक जो कुछ भी गद्यपद्यात्मक साहित्य] जिसमें निबन्ध, कहानियाँ, गद्यकाव्य, मौलिक काव्य ग्रंथ, पद्यानुवाद, संस्मरण, प्रहसन, अन्तरुक्तियाँ (नई विधा) इत्यादि अनेक विधाएं सम्मिलित है] समय-समय पर यथाऽन्तः प्रेरणा, हिंदी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजी में पिछले ३३--३४ वर्षों के दौरान मैंने रचा है, उस सारे में ही ऐसी आकस्मिक रचना कोई भी नहीं रही, और न इतनी आत्मतुष्टि ही किसी अन्य कृति से मुझे मिली जैसी "माण्डवी" से। इसी तरह, परमप्रभु अन्तर्यामी ओंकारनाथ का वरद हस्त भी अन्दर ही अन्दर सबसे अधिक इसी रचना के प्रणयन में अपने ऊपर छत्रछाया-सा मैंने अनुभव किया है। (२) यहाँ यह भी अनुल्लेखनीय नहीं है कि सुप्रसिद्ध हिन्दी महाकाव्य 'रामचरित मानस' के रससिद्ध स्वनामधन्य सन्तकवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो कदाचित् केवल विनय के तौर पर ही 'कवि न होउँ, नहि चतुर कहावौं' लिखा है परन्तु अपने राम तो वास्तव में ऐसे ही हैं,

जो न तो कवि कहला सकते हैं न चतुर, इसके साथ ही यह भी बड़ी भारी विडम्बनामयी विषमता है कि गोस्वामीजी को स्वयं कवि शिरोमणि एवं सन्तप्रवर होने के अतिरिक्त 'यद् रामायणे निगदितम् क्वचिदन्यतोऽपि' से अत्यधिक सहारा मिला जबकि हम, काव्यशास्त्र से नितान्त अनभिज्ञ और सर्वथा अल्पाधीत हैं और हमें न तो 'माण्डवी' के बारे में कुछ भी 'रामायणे निगदितम्' मिला न क्वचिद्न्यतः' कोई आसरा प्राप्त हो पाया — केवल अपनी कल्पना और श्रद्धानामिका सु-संगिनीद्वय के आधार पर बल्कि उन्हीं दोनों के सहारे-सहारे यह "माण्डवी" न जाने कैसे मेरे द्वारा निर्मिता हो गई है !!! (३) जहाँ तक "माण्डवी" के माध्यम से वैदिक विचार धारा प्रवाहित करने की बात है, वहाँ तक मैं खुले दिल से स्वीकार करके मुक्त कण्ठ से घोषित करता हूं कि इन सारे ही विचारों पर महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का पूरा पूरा प्रभाव है और एतदर्थ मैं उन महर्षि का अत्यन्त ऋणी हूँ। उनके रचे हुए भक्ति--परक ग्रन्थ 'आर्याभिविनय' के ४० अनुक्रम वाले 'तमीळत प्रथमं यज्ञसा धम्' प्रतीकयुक्त वेदमंत्र पर इसे निर्भर किया गया है बिना किसी पूर्व विचार के। परिशिष्ट में अपने किये हुए पद्यानुवाद सहित उक्त वेदमंत्र का महर्षिकृत व्याख्यान उपर्युक्त ग्रंथ से उद्धृत किया जा रहा है। (४) उक्त मन्त्र से 'माण्डवी' रचना का सम्बंध जुड़ना भी सर्वथा सुविचित्र एवं अतिशय आकस्मिक ही रहा। यद्यपि बारम्बार इसी बात को दुहराना स्वयं मुझे भी नहीं भाता है, तथापि वास्तविकता यही है कि जो कुछ भी "माण्डवी" में मेरे द्वारा किसी अज्ञात प्रेरणा पर लिखा गया है वह सबका सब स्वयं मुझे ही बड़ भारी अचरज में डालने वाला बना हुआ है और आजी-वन बना रहेगा। सच समझिये, 'तमीळत' वाले मन्त्र का ध्यान भी मुझे बिल्कुल अचानक आया। आप मानें या न मानें, पर यह सत्य है कि जब मैंने इस मंत्र का विनियोग 'माण्डवी' में अन्तः प्रेरणा पर किया तब मुझे स्वयमेव अतीवाश्चर्य हुआ। हाँ, उस दिन के स्वा--ध्याय में अवश्य यह आया था, बस, कदाचित् इसी से उसका

विनियोग शक्य बन पाया हो, पर यह केवल अनुमान है, निराधर चाहे न भी हो; क्या कहूं, कैसे कहूं ?

"अन्त में, इतना ही और कहना है कि यदि यह कृति आप हिन्दी-प्रेमी सुरुचिधारी अविकारी वर विचारी सु-मानव (सन्नारी, सन्नर) को पसन्द आवे और तनिक भी 'शिवम्' का पावन पथ प्रशस्त कर पावे तो मैं अपना अहो भाग्य समझते हुए स्वयं को कृतार्थ मानूंगा और 'क़द्रदानी' के लिए आपका कृतज्ञ होऊंगा। त्रुटियां अवश्य दिखेंगी (क्योंकि पूर्ण एवं त्रुटिशून्य तो एक मात्र निराकार निर्विकार शिवतर ओंकारनाथ ही है) परन्तु जहाँ तक मेरा अनुमान है, भावपक्ष में वे न्यूनातिन्यून ही दिख पाएँगी जिन्हें अब ठीक कर सकना मेरे वश की बात भी नहीं है, सो वे तो बनी ही रहेंगी, उनके लिए मुझे क्षम्य जानें।

अधिक तो क्या और क्यों कहा जाय ? कैसे और कब तक लिखा जाय ?? यही सोचकर इस 'पश्चात्-कथन' को यहीं विराम देता हूं--अच्छा, अब 'नमस्ते' लीजिये, सेवा से छुट्टी दीजिये।

अग्रिम धन्यवाद ! विवेकियों के प्रति विशेषतः विनीत–

"ओ३म् प्रेमी"

परिशिष्ट (१)

(स्तुति विषय) "ओ३म् तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्। ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्॥" (ऋग्वेद १।७।३।३) [व्याख्यान] हे मनुष्यो ! 'तमीळत' उस अग्नि की स्तुति करो कि जो 'प्रथमम्' सर्व कार्यों से पहले वर्त्तमान और सबका मुख्य कारण है तथा 'यज्ञसाधं' सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करने वाला) सबका जनक है। हे 'विश' मनुष्यो ! उसी को स्वामी मानकर 'आरीः' प्राप्त होओ जिसको हम दीनता से कहते हैं, विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते हैं और जानते हैं 'ऊर्जः पुत्रं भरतम्' पृथिव्यादि जगत् रूप अन्न का पुत्र अर्थात् पालन करने वाला तथा 'भरतम्'

अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करने वाला है। 'सृप्रदानुं' सब जगत् को चलने की शक्ति देने वाला और ज्ञान का दाता है, उसी को 'देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्' देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते और धारण करते हैं वही सब जगत् का 'द्रविण' अर्थात् निर्वाह के सब अग्नि जलादि पदार्थों और विद्यादि पदार्थों का देने वाला है। उस अग्नि परमात्मा को छोड़ के अन्य किसी की भी भक्ति याचना कभी किसी को न करनी चाहिये ॥४०॥

(आर्याभिविनय, प्रथम प्रकाश) [संस्तवन की सत्प्रेरणा]

हे मनुजो ! उस ओ३म् देव का तुम संस्तवन उचारो।
जो सबसे प्रथम प्र-वर्त्तमान है, विधिवत् उसे पुकारो ॥
विभु का संस्तवन उचारो ॥

वह सबका प्रमुख, आदि-कारण, है 'यज्ञ-साव वह सर्वजनक।
संसृति औ' विज्ञानादि–याग का वही एक उत्तम साधक ॥
अध्वर के सिद्धिप्रदाता को निज जीवन में संचारो ॥१॥
मानव-बंधुओं ! उसी को स्वामी समझ प्रीति से प्राप्त करो।
कवि जिसे दैन्य से कहते औ' जानते, उसे पा, आप्त बनो ॥
जो विज्ञों से संसिद्ध सदा, उस पर तन-मन-धन वारो ॥२॥
वह पृथिव्यादि जगरूप अन्न का पालन करनेवाला।
इनका पोषणकर्त्ता, पावन, संधारण करनेवाला ॥
श्रुति उसे 'भरत' औ' पुत्र कहे, अर्थों को तनिक विचारो ॥३॥
हिलने-चलने की शक्ति, वस्तुतः विश्व उसी से पाता।
जिसका सम्बोधन 'सृप्रदानु', बस, वही ज्ञान का दाता ॥
विद्वज्जन कहकर 'अग्नि', जिसे धारें उसको तुम धारो ॥४॥
वह 'द्रविणोदा' है, जगभर को द्रव्यों का दिव्यदान देता।
सब अन्न-पान, विद्यादि वस्तु, जनजन उस ही से है लेता ॥
तज उसे, अन्य की भक्ति–याचना कभी नहीं स्वीकारो ॥५॥
विभु का संस्तवन उचारो ॥

* * * * *

['ओ३म् प्रेमी'-प्रणीत 'ऋग्विनय गीतिका (प्रकाशित) में से उद्धृत]

परिशिष्ट–२

(साहित्य-पारखी, अध्यापक– प्रवर श्री सुशीलकुमार जी सक्सेना, एम.ए., शाजापुर द्वारा लिखित विशद विवेचना में से कतिपय महत्वमय अंश)

'माण्डवी', श्री रामनारायण माथुर 'ओ३म् प्रेमी' द्वारा रचित एक वृहद रचना है जो विस्तार एवं गरिमा में खण्डकाव्य से बड़ी एवं महाकाव्य से छोटी है, यह रचना महाकाव्य होते होते रह गई। अनेक स्थलों पर कवि ने 'विस्तार-भय' को स्वीकार किया है किन्तु कुछ प्रसंग जुड़ जाते तो यह रचना अधिक गरिमा प्राप्त कर सकती थी।

इस काव्य की ३ श्रेष्ठताएं सर्वाधिक प्रभावित करती हैं– माण्डवी का चरित्र–विकास, भरतमाण्डवी प्रणय एवं प्रायः सर्वत्र व्याप्त पारिवारिक विनोद। इनमें भी सबसे मधुर है पारिवारिक विनोद। हास्य और विनोद में जो अन्तर है उसके विस्तार में न जाकर इतना हीं कहना पर्याप्त है कि इस रचना में हास्य नहीं अपितु विनोद के उदाहरण यत्र तत्र (सर्वत्र तो नहीं, किंतु अधिकांश स्थलों पर) फैले हुए हैं।

माण्डवी की अनुजा श्रुतिकीर्त्ति अत्यन्त प्रगल्भा है, जीवन के माधुर्य--रस में डुबी हुई-सी। उसी के मुंह से सबसे अधिक विनोद सुनने को मिलते हैं। भोजन-भट्टता, संस्कृतसाहित्य में विदूषकों का 'पैट-फार्मूला' था–अधिकांश नाटकों में विदूषक 'पेटू' पाये जाते हैं। इस काव्य में सेठजी का मिष्ठान्न-प्रेम एक दो स्थलों पर प्रकट हुआ है। यह विनोद मधुर जीवन रस का परिचायक है, किन्तु अधिक निखरे हुए तथा परिष्कृत रूप में।

जितनी प्रसन्नता माण्डवी को पति पाने की है लगभग उतनी ही प्रसन्नता श्रुतिकीर्ति को अपने जीजा पाने की है, वह विनोद या चुहल का कोई भी अवसर छोड़ती नहीं है। (विद्वान

समीक्षक महोदय ने यहाँ 'माण्डवी' में से कई उदाहरण लिखे हैं। "ओ. प्रे.") राजा दशरथ अपने साले युधाजित् से विनोद में जो बातें कहते हैं वे भी पर्याप्त मनोरंजक हैं। वृद्ध राजा के इस विनोद के पश्चात् शिशुओं का वह 'मधुर झगड़ा' देखते ही बनता है जो माण्डवी व श्रुतिकीर्ति को लेकर होता है।

माण्डवी का चरित्र-विकास इस रचना का अत्यन्त महत्व-पूर्ण पक्ष है। जो पात्र इतिहासपुराण में है ही नहीं, जिसका केवल नामोल्लेख है उसे सजीव व्यक्तित्व देना, यह सबसे कठिन कार्य रचयिता ने किया है और उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली है। यद्यपी कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं जो स्वाभाविक हैं और गौण भी, तथापि उन्हें दूर किया जासकता तो अधिक उत्तम रहता।

माण्डडी मेधाविनी है एवं उसकी प्रतिभा के समुचित विकास के लिये शीघ्र ही कुशध्वज को शिक्षा की व्यवस्था हेतु वाध्य होना पड़ता है क्योंकि कुशध्वज की पत्नी अपनी तार्किक पुत्री की शंकाओं का समाधान भलेप्रकार नहीं कर पाती। ज्ञानपिपासा के साथ ही माण्डवी में उतनी ही उत्कट इच्छा जनसेवा की भी है। वह नई-नई योजनाएँ बनाती है, उन्हें क्रियान्वित कराती है, यह सब कुछ ही अपूर्व, प्रशंसनीय तथा प्रेरणादायक है! 'प्रिय-प्रवास' की नायिका राधा भी जन सेवा में रत है किन्तु माण्डवी इस क्षेत्र में निश्चय ही बहुत आगे बढ़ी हुई है। इस की दृष्टि व्यापक है जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के विषय में वह आयोजन करती है। उसकी बुद्धि पूर्वाग्रह से मुक्त एवं नवीन को ग्रहण करने के लिये सदैव तत्पर है। विवाहोपरान्त कुछ समय पश्चात् ही माण्डवी अपने पति से नारीवर्ग में सेवा कार्य करने की अनुमति प्राप्त कर लेती है और अपने मधुर व्यवहार एवं तर्कों से सास कैकेयी का आशीर्वाद भी ले लेती है।

रामवनगमन के पश्चात माण्डवी १४ वर्षों तक स्वयं-ग्रहीत वानप्रस्थ का जिस दृढ़ता से पालन करती है वह उसके

चरित्र का चरमोत्कर्ष है। आरम्भ श्रेष्ठ न होते हुए भी जिस प्रकार से माण्डवी के प्रणय का विकास एवं निर्वाह हुआ है वह अवश्य ही श्रेष्ठ है, भरत में विवाहोपरान्त भी प्रेम का उत्तम परिपक्व विकास दर्शाया गया है। किशोरी (अविवाहिता) माण्डवी के मन तथा गतिमति का जो चित्र है वह अति मोहक तथा रस-पूर्ण है उसमें भारतीय जीवन में व्याप्त मर्यादा का गौरवमय चित्रण भी है। [यहाँ भी समीक्षक महोदय ने अनेकों काव्य-पंक्तियाँ 'माण्डवी' में से उद्धृत की हैं। ("ओ. प्र."]

माण्डवी के रस लेकर मन्त्रार्थ सुनने के साथ-साथ पाठक को भी रस प्राप्त हो जाता है जैसे किसी को नई-नई अमिया या इमली खाते देखकर देखने वाले के मुँह में भी पानी आजाता है और बरबस पाठक, माण्डवी की निम्नांकित प्रार्थना के साथ अपनी शुभकामनाएं भी मिला देता है:—

"मेरे भर्त्ता हों भरत, ऐसा दो वरदान। विनय करूँ तुमसे यही—
सुनलो दयानिधान !! चिति मेरी बरबस खिंचे जिन अदृष्ट की ओर।
देदो उनके हाथ में, अब मम जीवन—डोर ॥"

माण्डवी के प्रेम का सबसे श्रेष्ठ पक्ष यह है कि उस प्रेम ने उसे द्विगुणित सामर्थ्य से स्वकर्त्तव्य करने की प्रेरणा, उमंग एवं क्षमता दी है। कैकेयी सुत भरत के आदर्शों में अपने आपको निमज्जित करने का प्रयास श्लाघनीय है।

सभी बातों की अभिव्यक्ति 'कला' नहीं होती, कभी कभी कुछ बातें छुपा लेना ही 'कला' होती है जिसे आंग्ल आलोचकों ने 'आर्ट टु कनसील आर्ट' कहा है। वह निश्चय ही ग्राह्य है। इस आर्ट का भला प्रयोग, कवि ने अनेक स्थलों पर 'माण्डवी' में किया है। भरत-माण्डवी की सौभाग्य-रात्रि का वर्णन हल्का-सा अर्थपूर्ण संकेत देकर छोड़ दिया है। (यहां पुनरपि अनेकों स्थलों से उद्धरण विद्वान् समीक्षक महोदय ने दिए हैं। "ओ. प्रे.)

अभाव एक ही अखरता है कि १४ वर्ष के उस अति उच्च

संयम के काल में भरतमाण्डवी की मनोदशा का चित्रण, रचयिता ने नहीं किया है। अन्तिम परिच्छेद में कम से कम माण्डवी के मुख से इस विचित्र विशिष्ट वियोग की व्यथा का उल्लेख एवं अवधि--समाप्ति की अभिलाषा प्रकट कराई जाना आवश्यक था। भाषा प्रसादगुणमयी, भावानुकुल तथा सशक्त है। उर्दू के कुछ शब्दों का प्रयोग भी कहीं कहीं हुआ है जिससे भाव की शक्ति बढ़ी ही है किंतु पात्रों के मुंह से उर्दू शब्द निकलना अटपटा लगता है, वर्णन में तो उर्दू के शब्द चल सकते हैं क्योंकि वह अन्य पुरुष (कवि) का कथन है। भाषा की शक्ति मुहावरों के प्रयोग से बहुत बढ़ गई है। कुछ स्थलों पर नितान्त नूतन मौलिक व्यंजन एँ कवि ने की हैं– यथा– "क्या जानूं कैसे उसने यह अनुमान–वितान है तुना–बुना।" (५१) 'तुना–बुना नई व्यंजना है। "तब सीता आकर लिपट गई, दोनों के बरसे खूब नैन। मानो गूंगी हों दोनों ही, ऐसी रह बोलीं नहीं बैन॥" यह नैन-बैन की तुक कवि को अत्यंत प्रिय है और इसके द्वारा अतिशय गंभीर भावचित्रों का प्रकटीकरण हुआ है। जैसे महाकवि तुलसी को चातक की उपमा बार बार सूझती थी वैसे ही कवि ने 'माण्डवी' में नैनों से बात और बैनों की असमर्थता बार बार दुहराई है– शायद कोई छिद्रान्वेषी आलोचक यह गिनकर कि इस का प्रयोग कितने बार हुआ है, इसकी गिनती दोषों में करे !! (यहां फिर अनेकानेक उद्धरण दिये गये हैं। "ओ. प्रे.)

'माण्डवी' प्रायः महाकाव्य है; यह शीघ्र प्रकाशित हो, विद्वानों द्वारा समादृत हो एवं पाठक-पाठिकाओं को अपने अमृत स्पर्श से प्रभावित करे– यही मंगलकामना है। इत्यलम्। ८-८-६८ ई. [सुशील सक्सेना] [नोट– समीक्षक महोदय ने अत्यन्त सोदा--हरण विवेचना लिखी है। जिसका अधिक से अधिक ⅛ अंश ही (यत्रतत्र से) यहां दिया जा रहा है। अस्तु। ("ओ. प्रे.")]



परिशिष्ट–३

'माण्डवी' एक अनूठी दिव्य कृति है– [मदनलाल पाण्डे अधिवक्ता शाजापुर (म.प्र.)]

यों तो मुझे श्री रामनारायण जी माथुर 'ओ३म् प्रेमी' द्वारा प्रणीता 'माण्डवी' को पढ़ने का अवसर उसके प्रणयन के तुरंत बाद ही मिला था परन्तु जब प. पू. श्री गुरुजी (मा. स. गोलवलकर) जैसे महापुरुष ने दि. १६-१०-६७ को श्री 'ओ३म् प्रेमी' को यह पत्र भेजा** कि 'माण्डवी' के विषय में मदनलाल जी पांडे जो सम्मति दें वही मेरी सम्मति मानी जावे, इत्यादि; तब मेरा दायित्व बहुत बढ़ गया। वस्तुतः प. पू. श्री गुरुजी को इतनी बड़ी रचना (लगभग ३००० छन्द वाली) पढ़ने का अवकाश कैसे मिल सकता था ! मुझ जैसे अति सामान्य व्यक्ति को उन्होंने जो गौरव प्रदान किया उसके लिये उनके प्रति अति कृतज्ञ होते हुए मैंने अभिमत देने की दृष्टि से पुनरपि 'माण्डवी' का अध्ययन किया। अब मैं यह कहने की स्थिति में हूं कि 'माण्डवी' एक अनूठी दिव्य कृति है जिसमें कवि श्री 'ओ३म् प्रेमी' ने वेदमंत्रों के भाव, स्थान-स्थान पर मन्त्रों के शब्दोंसहित बहुत ही भव्यतापूर्वक गुम्फित किये हैं। एक स्थान पर तो पूरी एक वेदश्रुति ही पद्यरूप में यथावत् रखदी है, इसके अतिरिक्त, उपनिषदों एवं पातंजल योगदर्शन के भावों को भीं कथावस्तु में योग्य स्थलों पर सँजोया है।

सबसे बड़ी विशेषता यह है कि महाकवि 'नवीन' जी तथा उनकी रचना 'उर्म्मिला' का उल्लेख, कथावस्तु के अन्तर्गत खचित कर दिया गया है। 'माण्डवी' का सारा कथानक एवं अधिकतर पात्र कल्पना प्रसून ही माने जावेंगे। कवि ने यथार्थतः इसे 'प्रमौलिक

** स्वर्गीय गुरुजी के शब्द ये हैं– "मान्यवर श्री मदनलाल जी पाण्डे महोदय ने उस वाङ्मय कृति को देखकर अपना अभिमत दिया तो उत्तम फिर मुझे कुछ करना शेष नहीं रहेगा।' ("ओ. प्रे.")

पद्योपन्यास' नाम दिया है। इसमें वैदिक आदर्शों का प्रतिपादन कुशलतापूर्वक किया गया है। नारी की गरिमा को बड़े ही प्रभावी ढंग से प्रस्थापित किया गया है।

रामायणयुगीन परिवेश को प्रमुखता देते हुए भी कवि के लिये आधुनिक विचारों से निर्लिप्त रहना सम्भव नहीं था। राज-नीति, समाजनीति, अर्थनीति, धर्मानुष्ठान, कर्मकाण्ड. ग्राम सुधार, कृषि, व्यापार इत्यादि अनेक विषयों का रोचक प्रकारेण समावेश किया गया है।

काव्य की दृष्टि से कुछ स्थलों पर शैथिल्य अवश्य आ गया है किन्तु कथाप्रवाह की रोचकता में उस ओर ध्यान ही नहीं जाता। सांस्कृतिक दृष्टि से 'माण्डवी' एक गरिमामयी रचना है; इसके लिए श्री 'ओ३म्-प्रेमी' साधुवाद के पात्र हैं। स्वयं कवि ने ही 'माण्डवी' का गद्यानुवाद (स्वतन्त्र रूप से) सन् १९७४ में 'माण्डवी महोदया' नाम से किया है और पद्योपन्यास का पुनर्नामकरण "माण्डवी महाशया' कर दिया है–अस्तु। मेरी कामना है कि कवि की यह कृति, हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाली सिद्ध होकर प्रेरणा-दायिनी बने। शाजापुर, १९-५-१९७५ ई. [मदनलाल पाण्डे]

नोट– विचित्र संयोग है कि यह अभिमत भी १७ मई का है जिस तारीख को १९६७ में 'माण्डवी' का प्रणयन प्रारम्भ हुआ था !!
("ओ. प्रे.")]

परिशिष्ट (४)

'माण्डवी'–काव्यमय उपन्यास-विधा में प्रथम बार

[डा. ओ३म्प्रकाश सिन्हा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' शासकीय महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.)]– उल्लेखनीय है कि डा. सिन्हा ने डाक्टरेट, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन से,

निम्नांकित विषय में प्राप्त किया है– "हिन्दी उपन्यासों का समाज शास्त्रीय अनुशीलन") ["औ. प्रे.]

प्रस्तुत कृति के माध्यम से प्रथम बार दो उपलब्धियाँ साहित्य को हुई हैं· एक तो यह कि दीर्घकाल से रामकथा के उपे--क्षित चरित्रों को अभिव्यक्ति का आधार नही मिल रहा था। अनेक मनीषियों, समीक्षकों और रामकथा के मर्मज्ञों का ध्यान इस ओर केन्द्रित हुआ भी, पर जैसा मन्थन चाहिये था, नहीं हो पाया,अधिक हुआ तो ध्यान उर्मिला पर केन्द्रित होकर रह गया। फिर भी कुछ पात्र उपेक्षित बने रहे। भरत-पत्नी माण्डवी ऐसा ही एक पात्र है।

चिन्तक, लेखक तथा कवि श्री रामनारायण माथुर ने बड़े मनोयोग और तन्मयता के साथ अपनी मर्मस्पर्शी सवेदनशीलता माण्डवी को प्रदानकर इस अभाव की पूर्ति का सार्थक प्रयास किया है।

अभी तक अवरुद्ध इस प्रसंग का मार्ग भी सहज ही प्रशस्त हुआ है – आगत सुधीजनों के लिये।

दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि विधा को लेकर है। कवि स्वयं स्वीकारता है कि काव्य–विधा के माध्यम से उपन्यास कथा–रस की अन्विति क्यों कर नहीं हो सकती ? इस अछूते क्षेत्र में कवि का अपना यह निश्चय ही एक साहसिक प्रयास है जो सम्भवतः किसी दिशा का संधान अथवा प्रवर्त्तन का विन्दु सिद्ध हो सकेगा।

अभी तक पद्य-विधा के लिए महाकाव्य और गद्य-विधा के लिये उपन्यास रूढ़ रहे हैं, कथारस के व्यापकत्व एवं रसोद्रेक की दृष्टि से। काव्य तथा पद्य विधा में उपन्यास का सृजन निश्चय ही अनेक प्रश्नों को जन्म देगा–एक साथ ही। कथारस का निर्वाह रस--परि--पाक, चरित्रांकन, फलागम, सोद्देश्यता-प्राप्ति, ऐसे अनेक संदर्भ हैं जो प्रस्तुत कृति के माध्यम से विद्वज्जनों की विवेच्य सामग्री होगी।

इस पद्यमयी रचना का विन्यास कवि ने उपन्यास--शिल्प

के आधार पर किया है और १ से २'१ वें प्रकरण तक प्रसरित है– पूर्वांश और उत्तरांश की कथा के रूप में। पद्यमय और विभिन्न छन्दों का प्रयोग महाकाव्य का आभास देता अवश्य है किन्तु रचनाकार का आग्रह उपन्यास स्वीकार ने के प्रति ही अधिक है।

यह विलक्षण और उल्लेखनीय है कि कृति महाकाव्यत्व और उपन्यासत्व, दोनों का ही आभास प्रस्तुत करती है। सामयिक अनुचिन्तन की अपेक्षा तत्कालीन संदर्भ ही कवि का केन्द्र-बिन्दु रहा है। प्रकाशन के उपरान्त कृति निश्चय ही कतिपय आयामों को जन्म देगी यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है। [शाजापुर दि. १०–६–१९७९ ई० (ओम् प्रकाश सिन्हा)] सयोगवशात् यह वही दिनांक १० जून– है जब 'माण्डवी' का प्रणयन १९६७ में पूर्ण हुआ था, अवलोकन हो 'गद्यमय पश्चात् कथन' का प्रारंभिक अंश। ("ओ. प्रे,")

परिशिष्ट–(५)

"माण्डवी" उपेक्षिता नहीं है। डॉ० सुधाकर अमृतफले, इन्दौर)

[इन्होंने इन्दौर विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट प्राप्त की है, इतिहास-विषय में ही। ("ओ. प्रे.")

'कादम्बिनी' का सितम्बर १९७० का अंक पढ़ा। उसमें माण्डवी पर लेखक श्री भालचन्द्र पाण्डे ने अपने विचार रखे हैं। उनका मत है कि माण्डवी अभी भी साहित्यकारों की कलम से उपेक्षिता ही रही है, उस पर किसी ने कुछ भी नहीं लिखा है, आज साहित्यकारों का दायित्व है, कि माण्डवी के त्याग एवं श्रद्धामय चरित्र को पाठकों के सामने लायें)

लेखक के उक्त विचार पढ़कर काफी दुःख भी हुआ। दुःख इस मायने में कि माण्डवी आज उपेक्षिता नहीं है, उसका ऋण

आज से छः वर्ष पहले चुकाया जा चुका है, शायद इस बात की जानकारी श्रीं भालचन्द्र पाण्डे एवं 'कादम्बिनी' के सम्पादक महोदय को नहीं हो सकी है।

म. प्र. के शाजापुर नगर ने जहां स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का साहित्यिक गौरव अर्जित किया है वहीं 'माण्डवी' महाकाव्य का १७ मई १९६७ को सृजन प्रारम्भ हुआ। 'माण्डवी' के प्रणेता हैं शाजापुर के ही प्रसिद्ध–कवि श्री रामनारायण माथुर 'ओ३म् प्रेमी'। कवि ने माण्डवी के सभी पहलुओं पर अपनी लेखनी चलाई है।

'माण्डवी' का लेखन सतत २५ दिनों तक अनवरत चलता रहा। जब तक इसका 'इत्यलम्' नहीं हुआ, 'ओ३म् प्रेमी' ने अपनी लेखनी को तनिक भी विश्राम नहीं लेने दिया। 'माण्डवी' के २९२९ प्रिय छन्दों तथा ३५७ दोहों से युक्त २५ प्रकरण बने हैं। मुझे एक बार 'माण्डवी' के कुछ अंश सुनने का अवसर १९६८ के मई मास में प्राप्त हुआ था। तब मैंने कवि श्री 'ओ३म् प्रेमी' से आग्रह करके कुछ अंश सुने। वस्तुतः 'माण्डवी' का भाव एवं कला–पक्ष उच्चस्तरीय लगा। अधुनातन कविता के परिवेश 'माण्डवी' की शैली बोधगम्य है। फिर मैंने उसे पूरी पढ़ी।

'माण्डवी' के छठे प्रकरण में बड़े ही चामत्कारिक ढंग से 'नवीन' जी तथा उनके 'उर्मिला' महाकाव्य का भी उल्लेख कवि ने सीता के मुँह से कराया है। वेद मंत्रों, योग सूत्रों, उपनिषद् वचनों तथा नीति वाक्यों का स्थल स्थल पर बहुत ही सुन्दर विनियोग 'माण्डवी' में किया गया है। एक ऋचा (जिसमें 'भरतम्' पद आया है) का तो अनेक बार कई प्रकार से विवरण दिया गया है।

इस 'माण्डवी महाकाव्य में शिक्षा, शासन प्रणाली, आदर्श–गार्हस्थ्य, सामाजिक विकास, नारी–उत्थान इत्यादि विषयों का

समावेश अत्यंत ही सुन्दर ढंग से हुआ है। वैदिक जीवन में समष्टि एवं व्युष्टिमूलक उभय पहलू इसमें बखूबी उभारे गये हैं। 'माण्डवी' महाकाव्य में एक कर्मनिष्ठ ब्रह्मवादिनी तेजस्वी साधिका नारी के सम्पूर्ण जीवन का सांगोपांग वर्णन है। 'माण्डवी' के माध्यम से कविवर 'ओ३म् प्रेमी' ने वैदिक विचारधारा का प्रस्तुतिकरण किया है। मैंने जब हस्तलिखित 'माण्डवी' महाकाव्य का अध्ययन किया तब ऐसा प्रतीत हुआ कि कवि पर महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का पूरा पूरा प्रभाव है। कवि ने अपने 'पश्चात्कथन' में यह स्वीकार किया है कि "तमीळा प्रथम यज्ञ-साधम्' प्रतीकवाला मंत्र अनायास ही 'माडवी' में आधार बन गया है। कवि ने इसमें जिस छन्द का अधिक प्रयोग किया है उसे उन्होंने 'प्रिय छन्द' की संज्ञा दी है।

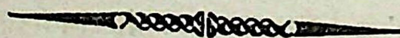
'माण्डवी' के प्रथम प्रकरण में कवि ने मिथिला का सुन्दर वर्णन किया है—"मिथिला नगरी की छटा न्यारी थी उस काल। जब विदेह नृपवर जनक, थे ज्ञानी क्षितिपाल॥ भौतिक वैभव से अधिक नैतिक था ऐश्वर्य्य। राजा सम ही थी प्रजा, इसमें क्या आश्चर्य ??" कवि ने माण्डवी का परिचय देते हुए लिखा है कि—"सीता, उर्मिला, विदेहसुता सुकुमारी सुगुणा थीं जैसी। माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति, अनुज कुशध्वज की थीं कन्या वैसी॥" माण्डवी के चरित्र का विकास कवि ने विभिन्न कथाबोध के आधार पर किया है।

'माण्डवी' महाकाव्य रचकर श्री रामनारायण माथुर ने वस्तुतः एक वृहत्कार्य किया है। तुलसीदास की उपेक्षिता माण्डवी का व्यक्तित्व शाजापुर के कवि ने उभारा है, यह हिन्दी के लिये गौरवमय कार्य है। सम्पूर्ण ग्रन्थ अभी हस्तलिखित ही है। हिन्दी की अभिवृद्धि करने वाले प्रकाशकों एवं केन्द्रीय सरकार के हिन्दी निदेशालय में से किसी का भी ध्यान यदि इस ओर जा सके और

कोई भी यदि इसके प्रकाशन की व्यवस्था कर सका तो हिन्दी पाठकों को एक अविस्मरणीय ग्रंथ की उपलब्धि हो सकती है।

इस प्रकार, अब माण्डवी उपेक्षिता नहीं रही है। अभी 'ओ३म् प्रेमी'– रचिता "माण्डवी" का प्रकाशन नहीं हुआ है इसी से यह हो सकता है कि 'कादम्बिनी' के लेखक को भ्रम हो रहा हो श्री रामनारायण माथुर सन् १९३५ से ही विविध साहित्य लिख रहे हैं, अब तक उन्होंने ४२ ग्रंथों की रचना की है जिनमें से दो-तीन छोटी पुस्तिकाएँ ही प्रकाशित हो पाई हैं × शेष सारा साहित्य अप्रकाशित है।

इन दिनों कवि, चारों वेदों का हिन्दी पद्यानुवाद कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त 'श्रद्धा कल्याणमयी वरदा' भी इनकी अनूठी मौलिक दार्शनिक पद्यमयी कृति है। अन्ततः पुनः कहना है कि माण्डवी उपेक्षिता नहीं है। आवश्यकता तो इस बात की है कि उसे समाज तक पहुँचाया जावे। यह काम अकेले कवि का नहीं है, कोई प्रकाशक ही इसे सम्हाल सकते हैं। इति, दि. ८-१२-७० ('नवीन' जयन्ती) [सुधाकर अमृतफले] नोट– 'स्वदेश' (इंदौर) के २६--११-१९७३ वाले साहित्य परिशिष्ट में उक्त लेख छपा था। इससे पूर्व डॉ० अमृतफले 'माण्डवी' विषयक एक छोटा सा लेख 'वीणा' (साहित्यिक मासिक पत्रिका, इन्दौर) में भी छपवा चुके हैं। (" ओ. प्रे. ")



× अब ४२ के बजाय बढ़कर गद्य पद्य के ग्रन्थों की संख्या ११५ हो गई है। (जिनमें ९५ प्रतिशत पद्यमय हैं) प्रकाशित भी १० हो चुकी है, अस्तु। (" ओ. प्रे. ")

परिशिष्ट (६)

-शुभकामनाएं-

[१] "आपकी कृति की सफलता के लिए शुभकामनाएं."

[सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि डा. हरिवंशराय बच्चन (१६-१२-८४)]

[२] "आप निरन्तर साहित्यसाधना में संलग्न हैं एतदर्थ बधाई। अब तो नर्मदा का पावन किनारा आपके कार्य को और भी गति प्रदान करेगा। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भगवान् की कृपा से 'माण्डवी' के प्रकाशन की व्यवस्था हो गई। आप हिन्दी साहित्य की समृद्धि में अपना जो योगदान दे रहे हैं वह स्तुत्य है। साहित्य, समाज की तीसरी आँख है, उसके माध्यम से भविष्य पर निगाह रखते हुए, भूत से प्रेरणा लेकर वर्तमान को संवारा जा सकता है। मैं आपके कार्य की सफलता एव निरन्तर प्रगति की कामना करता हूँ।" (२२-१०-८०)

"आपका पद्योपन्यास छप गया, खुशी हुई।" (१६-१-८५)

[मध्यप्रदेश के विख्यात साहित्यसेवी श्री रामनारायण उपाध्याय (खँडवा) जिन्होंने कृपापूर्वक 'ओ३म्--प्रेमी' कृत 'मानव कल्याण-कारी गायन संग्रह' की भूमिका भी लिखी है। उक्त संग्रह प्रकाशित हो चुका है, जिसमें फिल्मी तर्जों पर लगभग ७५ आध्यात्मिक भाव भरित गायनादि हैं। इन्हीं उपाध्याय जी ने प्रणता के वकालत परित्याग पर लिखा था कि "राष्ट्रीय हेतु से तो बहुतों ने वकालत छोड़ी परन्तु साहित्यसाधना के लिए उसे छोड़ना आपका ही देखने सुनने में आया है"]

[३] "मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि मेरे पूर्व मित्र तथा वर्तमान में आदरास्पद स्वामी ओ३म् प्रेमी जी चतुर्थाश्रमी द्वारा प्रणीत 'माण्डवी महाशया' पद्योपन्यास का विमोचन गणतन्त्र दिवस (२६-१-८५) को हो रहा है। स्वामीजी वर्षों से साहित्य

प्रणयन में संलग्न है, यहां तक कि इस कार्य के लिए पूरा समय मिल सके इस हेतु उन्होंने चतुर्थाश्रमी बनने के भी काफी वर्षों पूर्व अपने ३५ वर्षीय दीर्घकालीन अभिभाषण-व्यवसाय से मुक्ति प्राप्त कर ली। मैंने उक्त कृति का अवलोकन काफी समय पूर्व किया है, कृति से अभिभूत हुआ हूँ। मेरी शुभकामना है कि स्वामीजी अपने तपस्वी जीवन के साथ साहित्यदेवता की अर्चना यथावत् जारी रखेंगे ताकि राष्ट्रभाषा का भंडार समृद्ध हो।" (१२-१-८५)

[भूतपूर्व मिनिस्टर, म. भा. शासन तथा भूतपूर्व अध्यक्ष अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) श्री सौभाग्यमल जैन, एडव्होकेट (शुजालपुर) जो 'ओ३म् प्रेमी' के साहित्य को बहुत ही रुचिपूर्वक पढ़ते सुनते रहे हैं और प्रणेता पर अनेक प्रकार से कृपालु होते रहे हैं, स्वयं भी अच्छे साहित्यकार व सुवक्ता हैं।]

[४] "प्रसन्नता का विषय है कि आपने 'माण्डवी-महाशया' पद्यो-
-पन्यास के विमोचन का कार्यक्रम २६-१-८५ को निर्धारित किया है, मेरी मँगलकामनाएँ स्वीकार कीजिए।" (२९-१२-८५)

[विद्वद्वर डा. लक्ष्मीनारायण दुबे (सागर)

जिनका 'माण्डवी महाशया' विषयक मन्तव्य इस पद्योपन्यास के प्रारम्भ में 'विद्वत् सम्मति' शीर्षक से छपा है वहों संक्षिप्त परिचय भी अवलोकनीय है। नोट-ऊपर डा. दुबे (सागर) की मंगलकामना में २६- -८५ का उल्लेख है उसी के बारे में यह भी ज्ञातव्य है कि उक्त दिनांक को ही गणतंत्र दिवस के अलावा वसंत पंचमो, 'निराला' जयन्ती एवं स्वामी सूर्यानन्द सरस्वती जयन्ती भी पड़ती है।[

(स्वा. ओ. प्रे. च. आ.)

विदेशीय-

१. ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन (बी.बी.सी.) के हिन्दी अनु-
-ष्ठान से १३-१-८५ को प्रसारित 'आपका पत्र मिला' कार्यक्रम के अन्तर्गत "स्वामी ओ३म् प्रेमी होशंगाबाद" संबोधनपूर्वक कहा गया कि नई विधा में उपन्यास रचने की जानकारी मिलने पर बड़ो प्रसन्नता हुई।

****

२. 'माण्डवी महाशया' के पूर्ववर्ती चार पद्य-प्रकाशनों (काव्यांजलि 'उपनिषदीय सत्यनारायण तत्वकथा' 'ऋग्विनय गीतिका तथा 'वेदोपनिषदादि प्रवचन यज्ञ') की प्राप्ति स्वीकार स्वरूप गयाना विश्वविद्यालय (अमेरिका) से प्राप्त लम्बे पत्र का कुछ अंश—

'ये पुस्तकें गयाना विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के लिये हिन्दी की प्रथम पुष्पांजलि है। इनकी सुगंध गयाना की उन सभी जातियों को आनन्दित करेगी जो धर्म—रंग—जाति—निरपेक्ष समाज की रचना में व्यस्त हैं। गयाना के भारत मूलनिवासी विशेष रूप से लाभान्वित होंगे और विश्वविद्यालय की गरिमा में श्रीवृद्धि होगी— धन्यवाद।,

आपका- उदयनारायण तिवारी
प्राध्यापक, हिन्दी, आधुनिक भाषा विभाग,
२८-७-१९७६ — गयाना विश्वविद्यालय, बाक्स ८ १
जार्ज टाउन

नोट—उक्त पुस्तकालय के लिए "माण्डवी—महाशया" की एक प्रति सस्नेह प्रेषित की जा रही है। ("ओ.प्र.")

ओ३म्

अनुपरिशिष्ट (क)

प्रणेता का व्यक्तिगत विवरण

नोट— इस अनुपरिशिष्टि में (क) (ख) (ग) (घ) तथा (ङ.) सम्मिलित हैं—

इस पद्योपन्यास के प्रणेता के पिताश्री (जिन्हें यह समर्पित किया गया है) स्वामी सूर्यानंदजी सरस्वती का जीवन परिचय अवि-कल रूपेण "महापुरुषों के जीवन" [पं. देवप्रकाश जी, प्राचार्य, उपदेशक महाविद्यालय कृत] में से साभार समुद्धृत किया जा रहा है—

"ओजस्वी व्याख्याता श्री स्वामी सूर्यानन्दजी सरस्वती (म.प्र.)"—

श्री स्वामी सूर्यानन्द जी का जन्म का नाम, सूर्यप्रसाद जी था, आपका जन्म २६ जनवरी सन् १८८९ ई. को शाजापुर नगर (मध्यभारत) में हुआ। समय की प्रथा के अनुसार दस बारह वर्ष तक आप फारसी का अध्ययन करते रहे। उसके पश्चात् हिन्दी का अभ्यास किया। आपका परिवार कबीर पन्थी था। देवास में पं० गणपति शर्मा जी के शास्त्रार्थ में आपको सत्यार्थ प्रकाश उपलब्ध हो गया। बस, फिर क्या था, जादूगर के जादू से मोहित होकर उसी के ही हो गये। जागीरदारी ठाठ में पले थे, स्वभाव के जोशिले थे, दयानंद की ज्योति से प्रकाशित होते ही आर्य समाज के सिद्धांतों का प्रकाश करना आरम्भ कर दिया। सूर्यप्रसाद के पिता ने सुना, लोगों ने आकर पिता को भड़काया कि तेरा लड़का नास्तिक हो गया। रावले साहिब (पिताजी) ने क्रोध के आवेश में आकर अपने युवक लड़के सूर्यप्रसाद को घर से निकाल दिया। सूर्यप्रसाद ने सत्य धर्म को नहीं छोड़ा, घर को छोड़कर चल दिये और स्वामी नित्या--नन्द जी तथा स्वामी विश्वेश्वरानंद जी के पास चले गये, उनके सदुपदेशों से लाभ उठाते रहे। पुत्र के घर से निकल जाने पर पिता ने सोचा कि वह पुस्तक तो जरा देखूं जिस ने लड़के को दीवाना बना दिया है, उसमें कौनसा ऐसा रहस्य है कि लड़का घर छोड़कर चला गया है। कहते हैं कि पिता ने जब सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा तो उसका अंधकार भी सत्य के प्रकाश से जाता रहा और वह भी सत्यार्थ-प्रकाश का ही हो गया। अब सूर्यप्रसाद की खोज होने लगी उसको तलाश कर घर ले आये। अब तो सूर्यप्रसाद को किसी का भय न रहा, बेखटके आर्य समाज का प्रचार करने लगे और १-५-१९११ को शाजापुर में आर्य समाज की स्थापना भी कर दी। सूर्यप्रसाद में भाषण शक्ति प्रबल थी। आपके व्याख्यानों का बहुत बड़ा प्रभाव होता था। जिला शाजापुर, उज्जैन, सीहोर के देहातों में आपने पहले पहल आर्य समाज का प्रचार किया और कई

नगरों में आर्य समाजों की स्थापना की। १९१२ ई. में आर्यसमाज शाजापुर का प्रथम वार्षिकोत्सव सूर्यप्रसाद जी ने किया जिसमें स्वामी दर्शनानन्द जी भी आये।

फिर आपने ग्वालियर स्टेट की मुख्तारी (फौजदारी वकालत) परीक्षा पास की और शाजापुर में वकालत करने लगे। ९ वर्ष तक वकालत का काम करते रहे। तदनन्तर ग्वालियर स्टेट ने एक आज्ञा प्रसा--रित की कि सब वकीलों को वफ़ादारी का हलफ़ (शपथ) लेना चाहिये। सब वकीलों ने शपथ ले ली किन्तु सूर्यप्रसाद ने शपथ लेने से इन्कार कर दिया इस कारण आपकी मुख्तारकारी की सनद राज्य ने जब्त कर ली। यहां हम इतना संशोधन करते हैं कि हल्फ़ वफ़ादारी का ही न होकर इस बात का भी था कि सच्चे मुकद्दमे लेंगे। पिताश्री का तर्क था कि दोनों पक्ष तो सच्चे हो नहीं सकते। फिर यह शपथ कैसी ? इस पर सारे ग्वालियर स्टेट में एकमात्र ये ही ऐसे वकील निकले जिन्हें राजपत्र में नाम प्रकाशित कर के वकालात से रोका गया था। (" ओ. प्रे. ")]

आपने ५०० पुस्तकें खरीद कर पं० गणपति जी आर्य विद्वान् के नाम पर पुस्तकालय की स्थापना की। सन् १९३७ ई० में शाजापुर के मदांध यवनों में आर्यसमाज के नगरकीर्तन पर सशस्त्र आक्रमण कर दिया जिसमें आर्य तथा हिन्दुओं को चोटें आईं। सूर्यप्रसाद जी ने यवनों पर अभियोग चलाया जिसमें ७० के लगभग यवन दण्डित हुए। [पुनः यह संशोधन अपेक्षित है कि अभियोग शासन द्वारा चलाया गया था, सूर्यप्रसाद जी प्रमुख साक्षी अवश्य थे, स्पेशल मजिस्ट्रेट द्वारा सुनवाई की गई थी। उन्हीं दिनों अत्यंत तनाव के वातावरण में अपने एक संजीदा मुस्लिम सहपाठी के बुलावे पर आप उर्स वारसी में भाषण देने गये और बड़ी निर्भीकता से बोले। ऐसा दृश्य था जैसा स्वामी श्रद्धनन्द जी के जामा मसजिद वाले भाषण के समय रहा होगा। मैं स्वयं भाषण के समय उनके साथ

था। उन्होंने कहा था कि " गुण्डा न तो हिन्दू है न मुसलमान। वह तो केवल गुण्डा ही है। अच्छे नेक हिन्दू मुसलमान गुण्डों की हिमायत न करें तो कोई झगड़ा कहीं कभी न हो।" उनके भाषण में कई बार करतल ध्वनि हुई, सब मुसलमानों ने सराहना की। (" ओ. प्रे. ")]

१९४४ ई० में आपने स्वामी व्रतानंद जी (गुरुकुल चित्तौड़गढ़ वाले से सन्यास ग्रहण किया और सूर्यानन्द नाम रक्खा। आप सन्यास लेने के पश्चात् कुछ समय के लिये हृषिकेश गायत्री जप करने के लिये चले गये।

१९५१ ई० में आपने चतुर्वेद पारायण यज्ञ भोपाल में कराया। ४ मास प्रतिवर्ष व्यास पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक चातुर्मास वेद उपनिषदों की कथा करने की पद्धति को आपने जारी किया जिसे आप संन्यासग्रहण तक करते रहे। यह हवन, कथा आदि अब तक जारीहै जिसे स्वामी जी के ज्येष्ठ पुत्र रामनारायण जी ओ३म्प्रेमी एडवोकेट, कर रहे हैं, स्वामी जी से मेरा संबंध भी २० वर्ष तक रहा। आपकी भाषण शैली बहुत ही रोचक, ओजस्वी और निर्भीक थी। आपने कविता की भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। [संशोधन " वे शायरी भी बहुत अच्छी करते थे और गद्य भी उतम लिखते थे, उसमें भी पुस्तकें प्रकाशित कराई थी। " (" ओ, प्रे. ")] स्वामी दयानन्द दीक्षा शताब्दी में मथुरा गये थे। वहां से आते समय उज्जैन की सरकारी धर्मशाला के कमरे में ठहरे, अन्दर से कमरा बंद कर लिया। रात्रि को ही आपके प्राण पखेरू उड़ गये। और शरीर को यहां छोड़ गये।

[परिवर्द्धन- उस दिन १ जनवरी १९६० थी। ("ओ. प्रे.")]

अनुपरिशिष्ट ख

ओ३म्

चतुर्थाश्रम–'ग्रहण' के वेग्रकाल में (सक्षिप्त) विनयमत्र विवरण

सन् १९६९ से अभी तक (१२ वर्ष) मैंने स-पत्नीक तृनीयाश्रम का निर्वाह अपने ढंग से ही किया है। इस अन्तराल में अनेकों आर्य विद्वानों से [आर्या विदुषियों से भी] लेखी एवं मौखिक जिज्ञासा करता रहा हूँ कि सधवा महिला को चतुर्थाश्रमग्रहण का अधिकार है या नहीं ? अधिकांश से तो कोई उत्तर हो नहीं पा सका। जिन कतिपय ने उत्तर दिया भी, वह समाधानकारक नहीं बना। वस्तुतः उसे मैं तो उत्तर ही नहीं मानना हूँ। [विशेपतया सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा (इन्टरनेशनल आर्यन लीग) नई दिल्ली, की ओर से जो उत्तर मिला वह अत्यन्त निराशाजनक और प्रमाणोदाहरण विरहित है, अपितु उससे तो कई नई शंकाएं उपजी हैं जिनका समाधान चाहने पर कुछ नहीं किया गया। 'सभा' के मुखपत्र सार्वदेशिक में भी दो वर्ष पूर्व शंका छपवा चुका हूं, आजतक कहीं से कोई समाधान नहीं आया। (उक्त 'सभा' से हुआ मेरा पत्र व्यवहार मरे पास सुरक्षित है, जो चाहें वे देख सकते हैं।)]

निश्चित ही ऐसी स्थिति इस कारण बनी होगी कि महर्षि दया-नन्दजी सरस्वती ने स्पष्टतः लिख दिया है कि 'जब संन्यासी होना चाहे तब पत्नी को पुत्र के पास भेज देवे'। मुझे ऐसा लगा कि यह सधवा महिला के अधिकार का हनन है। कोई प्रमाण नियमादि तथा उदाहरण भी बहुत ढूंडने व प्रयत्नपूर्वक पूछताछ (लेखी व मौखिक) करते रहने पर भी कहीं से नहीं मिला।

मेरी आर्याभार्या सौ. इन्दिरादेवी जी सहमत हुईं कि चतुर्थाश्रमी बनने में सहचरी रहेंगी। फलतः मैंने उनके साथ चतुर्थाश्रमग्रहण

का सुनिश्चय कर डाला है और सन्निकट भविष्य में हम 'ओ३म्प्रेमी चतुर्थाश्रमी सहचर--सहचरी बनने जा रहे हैं। जानबूझकर बल्कि भ्रान्ति निवारणार्थ मैंने वानप्रस्थ को जैसे तृतीयाश्रम नाम देकर अपने ढंग से निबाहा वैसे ही सन्यास को भी चतुर्थाश्रम का नाम देकर अपने ढंग से [स्वयं ही नियमादि निर्मित करके उन पर यथा सम्भव चलते हुए] हम निबाहना चाहते हैं- परमप्रभुवर ओ३म्देव हमारी सहायता करेंगे ही, ऐसी मुझे आत्म प्रतीति है, एवमस्तु।

यतः किसी ग्रंथ विशेष या व्यक्ति विशेष से हम बद्ध नहीं हैं और न 'सन्यास' नाम ही रख रहे हैं (सच पूछा जाय तो कोई पूर्वोदाहरण, प्रमाण या नियमादि कहीं हैं भी नहीं) अतः किसी नियम विशेष की कसौटी पर हमें कसने का व्यर्थ प्रयास कृपया कोई न करे, हाँ यदि कुछ प्रेरणा लेना चाहें तो सहर्ष ले सकते हैं।

हम दोनों ही चिरकाल से भिन्न-भिन्न रोगों से ग्रस्त चले आ रहे हैं इसलिए आदर्श स्थिति के निर्माण में अपने आपको अक्षम पाते हैं, फिर भी 'राणो मामो नी होय तो काणोई सई' वाली मालवी कहावत के अनुसार 'निरस्त पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते' वाली उक्ति को ही चरितार्थ करने का यह नम्र प्रयास हम कर रहे हैं जिस पर हमें विनम्र आत्मगौरव भी है। सब हितैषी महिला, पुरुषों की शुभकामना हमें मिले, यही हमारी विनीत विनय है, कृपया मान्य करें।

एक लम्बी मराठी कविता की कतिपय पंक्तियां हिन्दी अर्थसहित [प्रसंगानुरूप होने से] यहाँ दे रहा हूं। कवि महोदय का नाम ज्ञात नहीं हो सका, पूरी कविता के लिए 'कादम्बिनी' जुलाई १९८१ में श्री वियोगी हरिजी का लेख देखिये।

[ ] अबला नच, तुल्यबला होऊँ द्या मजलागीं।
संसारी सम समान दोघांची जरि भागी॥

(मुझे 'अबला' मत होने दो, 'तुल्यबला' होने दो। यदि हम इस संसार के हिस्सेदार हैं तो हमें समबल सम समान होना चाहिये)

[२] तुमच्या इतकेचि मला वाहूं दे शिरिं ओझे,
तनु होवो धर्मजले भय भयते कारंजें ॥
बिंदि–बिजवरा न देह धामाहुनि कवि शोभा,
माय दत्तकावरी न तनयाहुनि धरि लोभा ॥

[मुझे भी सिर पर तुम्हारे जितना ही बोझ उठाने दो। यह शरीर पसीने से फव्वारे की तरह तर हो जाय। शरीर को स्वेद विन्दुओं से बढ़कर बिन्दी और विजवरा सुशोभित नहीं करते, कोई भी मां दत्तक पुत्र पर अपने तनय (जाये पुत्र) से अधिक प्रेम नहीं करती। स्वेद बिन्दु तो मेरे अपने तनय हैं, गहने तो दत्तक लिए हैं।] ['आ+श्रम' के अभिवार्थ पर ध्यान दें (ओ. प्रे.)]

[३] झगड़ाया कष्टांशी पदर मला खोवूं द्या,
विघ्नाँच्या नजरेशीं नजर मला भिडवूं द्या ॥
ध्या करुनी मज तुमच्या इतुकी बल गुणशाली,
मज पांगुल गाधयाविण चालू द्या निज चालीं ॥

[कष्टों का मुकावला करने के लिये मुझे पल्ला खोंसकर तैयार होने दो, विघ्न वाधाओं की नजरों से मुझे अपनी नजर भिड़ाने दो, अपनी तरह मुझे भी बलशाली एवं गुणवान बनालो। मुझे बिना कुबड़ियों के, अपनी चाल से चलने दो।]

[हमें यहां सीताजी का वह वचन स्मरण आ रहा है जो वाल्मीकि महाकवि ने राम वनगमन के पूर्व उनसे कहलवाया है कि- "अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्।" इसमें कितनी गरिमा है; अहा! [सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण का हमने लगभग बीस सहस्र पद्यपंक्तियों में हिन्दी पद्यानुवाद किया है जो अभी अप्रकाशित है, उसी सिलसिले में सीता जी की उक्त उक्ति हमने पढ़ी थी जो हमें बहुत भायी।] ('ओ३म् प्रेमी')

[४] काच बाहुली समान जपणें, का प्रीत तरी,
आपुलिया सारखेंच करणें ही प्रीत खरी ॥

[यह क्या प्यार हुआ कि काँच की गुड़िया के समान मेरी हिफाजत हो हिफाजत की जाय ? तुम मुझे अपने समान बनालो, यही प्यार का सच्चा तरीका है ।]

अन्त में, इतना और भी कह दूं कि महर्षि मनुजी की 'न लिंगम् धर्मकारणम्' वाली आप्तोक्ति, चतुर्थाश्रम के धर्म अर्थात् कर्त्तव्य [धारयितव्य] को निबाहने में हमारी प्रेरिका है और रहेगी, इसका विवेचन विस्तार-भय से मैं यहाँ नहीं कर रहा हूँ। इत्यलम्, शमित्यो३म् । दिनांक ५ अगस्त १९८१ ई० (नागपंचमी)

विनीत

'ओ३म् प्रेमी' [तृतीयाश्रमी]

नोट- उल्लेखनीय है कि वंशानुक्रम से मेरा गोत्र 'हर्ष नाग' (भार-द्वाज) है इसीलिये नागपंचमी पर यह विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। ("ओ. प्रे.")

अनु--परिशिष्ट (ग)

॥ ओ३म् ॥

क्या सधवा महिला को चतुर्थाश्रम का अधिकार नहीं है ?

[एक विशिष्ट विचारयुक्त विवरण]

प्रस्तुतकर्ता- स्वामी ओ३म्प्रेमी, चतुर्थाश्रमी
(वर्तमान वास्तव्य- गुरुकुल, होशंगाबाद म. प्र.)

मैं वर्णाश्रम का विश्वासी हूँ और मेरी यह भी मान्यता है कि सधवा महिला को उसके पति के समान ही वर्ण और आश्रम के अधिकार मिलने चाहिये। यदि न मिलते हों तो उन्हें प्राप्त करने के लिये किसी एक महिला को आगे आना चाहिये। इस मान्यता के अनुसार मैंने १९६९ में तृतीयाश्रम ग्रहण करते समय

मेरी आर्या भार्या सौ. इन्दिरा देवी से परामर्श किया तो उन्होंने मुझसे पूर्ण सहमति प्रकट करके मेरे कथनानुसार सहयोग देना स्वीकार किया- (सु-संयोग है कि उनकी व मेरी आयु में एक ही वर्ष का अन्तर है, में ६४ वर्ष का हो चुका हूं, वे ६३ वर्ष की हैं।)

हमने बहुत प्रयत्न किया कि ऐसी किसी सधवा महिला का उदाहरण मिल जावे जो गुण कर्मस्वभावानुसार ब्राह्मण वर्णस्था रहते हुए यथा समय अपने पति के साथ 'संस्कार'-पूर्वक वानप्रस्थाश्रम में रही हो। जब निराशा रही तब 'वानप्रस्थ' के बजाय 'तृतीयाश्रमी' (नया नाम) रखकर हम दोनों ने अपने ढंग से १२ वर्ष तक तृतीयाश्रम निवाहा। कुछ सामाजिक व नैतिक विवशताओं के कारण मुझ १९७३ तक वकालत करनी पड़ी (जिसे मैं १९३८ से करता आ रहा था) किन्तु १७-५-७३ को मुद्रित घोषणा-प्रसारण पूर्वक मैंने वकालत छोड़ दी, 'परित्याग' शीर्षक वाला पैम्पलेट छपवाया था- अस्तु।

इसी बीच, १९७४ में अन्तर्यामी ओ३म् परमदेव की हृदयाकाश में नभोवाणी हुई कि 'तुझे सधवा महिलाओं को चतुर्थाश्रम का अधिकार दिलाना' है। 'मैं इसे ओ३म्-प्रेरणा' इसलिये मानता हूं कि इस विचार मात्र से मुझमें अनूठा आनन्द, अजीब-सी निःशंकता व बड़ा ही विचित्र अमितोत्साह भर उठा। महर्षि दयानन्दजी सरस्वती को मैं सर्वाधिक श्रद्धेय मानता हूं, उनका एक लेख मुझे स्मरण आया कि 'जब किसी कार्य के विचार से आनन्द उत्साह एवं निःशंकता अनुभव करो तब जानो कि वह कार्य करणीय है और वह प्रेरणा क्या जीव की अपनी ओर से है, नहीं-नहीं, वह तो अन्तर्यामी परमात्मा की ही ओर से है' इत्यादि (शब्द मेरे, भाव ऋषि के)

फिर भी, यतः १२ वर्ष पूरे होने में ८ वर्ष शेष थे, अतः मैंने उससे बढ़कर प्रयत्न प्रारम्भ किया कि जितना और जैसा मैं

तृतीयाश्रम–ग्रहण के पूर्व कर चुका था अर्थात् बीसियों विद्वानों, विदुषियों से समक्ष चर्चा एवं पत्र व्यवहार द्वारा पृच्छा की– इन नारियों नरों में पौराणिक एवं वैदिक; दोनों प्रकार के विज्ञाएं तथा विज्ञगण सम्मिलित रखे। 'सार्वदेशिक' नामक (अन्तर्राष्ट्रीय आर्य संस्था 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक) मुख पत्र में भी १९७९ में शंका छपवाई परन्तु कहीं से किसी ने कोई समाधानकारक उत्तर नहीं दिया। अधिकाश ने तो कोई उत्तर ही नहीं दिया, जिन कुछेक ने जवाब दिये वे भी उत्तर की परिभाषा में नहीं आते थे, क्योंकि प्रश्न या शंका से सर्वथा असंगत थे !!

मुझे बड़ी निराशा हुई क्योंकि में नक्कू बनना नहीं चाहता था और मेरी हार्दिक अभिलाषा थी कि सधवा नारी के चतुर्थाश्रम ग्रहण विषयक कोई प्रमाण, नियमादि एवं उदाहरण मिल जाते तो मुझे नये नियम न बनाने पड़ें। मेरी शंका भी संक्षेप में यही थी (जो सबसे की गई और उक्त 'सार्वदेशिक' साप्ताहिक में भी छपवाई गई थी) कि 'क्या सधवा नारी को चतुर्थाश्रम–ग्रहण का अधिकार नही है ?' 'यदि है तो प्रमाण नियमादि तथा (न्यून से न्यून एक) उदाहरण, किसी भी युग का, बताया जावे जो ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक हो।

निराशा में आशा का उदय जुलाई १९८१ में हुआ जब हमारे तृतीयाश्रम के १२ वर्ष पूरे हो चुके थे और हमें चतुर्थाश्रम–प्रवेश की उत्कट इच्छा थी, ईशादेश का पालन करना भी इष्ट था ही। हमारे सौभाग्य से दिल्ली के एक वैदिक विद्वान् महाशय (श्री राजवीर जी शास्त्री, संपादक, 'दयानन्द सन्देश') का उत्तर दिनांकित १४–७–८१ आया जिसमें यह तो अवश्य लिखा था कि सधवा महिला में अमुक योग्यताएं होनी चाहिये तब वह चतुर्थाश्रम ग्रहण कर सकती है किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट लिख दिया था कि ऐसा कोई उदाहरण नहीं है, आप कायम करके अन्यों का मार्गदर्शन करें। (शब्द हमारे हैं, पर भाव उन्हो के हैं।)

वस, फिर क्या था, उदाहरण की प्रतीक्षा न करके यथामति अपने ही नियमादि वना लिये, जैसे तृतीयाश्रमी होते समय वनाये थे। नाम भी सर्वथा नूतन अभिधान के रूप में 'चतुर्थाश्रमी' रख लिया–संन्यास के वैदिकसंस्कार में तो नारी का कोई स्थान ही नहीं था, उदाहरण का अभाव होने से अनुकरण भी नितान्त असंभव था। पति– पत्नीसम्वन्ध तो तृतीयाश्रम–ग्रहण की बेला में ही टूट चुका था, हमने स्वनिर्मित नियमों के अनुसार सहचरी-- सहचर मात्र रहते हुए चतुर्थाश्रम--प्रवेश (परस्पर दीक्षा गहकर) २९--९--८१ को कर लिया और तव से ही हम क्रमशः 'स्वामी ओ३म् -- प्रेमी चतुर्थाश्रमी' तथा 'स्वामिनी ओ३म् प्रेमिणी चतुर्थाश्रमिणी हैं।'

हमें यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं है कि आदर्श स्थिति का निर्माण करने में हम सर्वथा अक्षम हैं किन्तु संस्कृत की 'निरस्त पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते' एवं मालवी की राणो मामो नी होय तो काणों ई सईं, मामो तो है' वाली उक्तियों के अनुसार हमने सधवा महिला को चतुर्थाश्रम का अधिकार दिलाने का नम्र प्रयासमात्र किया है। परिस्थितियों की विवशता से सहचरी स्वामिनी जी पृथक्तः अकेली नहीं रह सकती, मैं भी वहुधा अस्वस्थ रहता हूं, चिररोगी हूं, उनका स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता है। इसी कारण से हमें साथ-साथ रहना पड़ रहा है। यदि कोई सधवा महिला पूरी योग्यता प्राप्त करके पृथक्तः संन्यासिनी के रूप में रहते हुए आदर्श स्थापित करे तो उसका सादर अभिनन्दन है, शिरसा अभिनन्दन है परन्तु उसकी प्रतीक्षा में टूटा–फूटा आदर्श भी स्थापित न किया जाय, इसे हमने उचित नहीं समझा इसीलिये अनधिकार–चेष्टा कर डाली है फिर भी इस पर हमें तनिक भी खेद नहीं है अपितु नम्रता-मय आत्मगौरव है कि हमने ईशादेश को यत्किंचित् माना।

अन्त में, अति संक्षेप से इतना और विदित कराता हूं कि

मैंने सन् १९६८ ई० से चारों वेदों के हिन्दी पद्यानुवाद का जो महान् संकल्प ठाना हुआ है उसकी पूर्ति भी, चिररुग्ण रहने के बावजूद निरन्तर यथासामर्थ्य करता आ रहा हूं और अब भी वह क्रम चालू है। ओ३म्देव एकमेव शिव निराकार निर्विकार कृपा करें कि मैं उक्त संकल्प पूरा करके ही मरूं, उससे पहले नहीं —एवमस्तु। [दि० २९-९-८२ (चतुर्थाश्रम-प्रवेश की प्रथम वर्षग्रन्थि)]

विनीत—

स्वामी ओ३म् प्रेमी चतुर्थाश्रमी

('ओ३म्-प्रेमी'-कुटीर, गुरुकुल परिसर, नर्मदा तट, होशंगाबाद)

"हर नई राय, आरम्भ में ठीक एक के अल्पमत में होती है।"
('*कारलाइल*-सुप्रसिद्ध विदेशी विद्वान्)

[उल्लेख्य है कि हम 'आध्यात्मिक विकलांग' सहचर सहचरी 'विश्व-विकलांग-वर्ष' में चतुर्थाश्रमी बने हैं इसका भी थोड़ा महत्व तो है ही। (स्वा.- 'ओ. प्रे.' च. आ.)

परिशिष्ट

कतिपय प्रशंसापत्र विद्वानों की ओर से हाल ही में हमें मिले हैं (यथा-डॉ० भवानीलाल जी भारतीय, अध्यक्ष, दयानन्द चेयर फॉर वैदिक स्टडीज़, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ का पत्र दिनांकित ३०-१०-८१) किन्तु उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हम उसे मानते हैं जो आर्यसंन्यासी--प्रवर महात्मा अमर स्वामी जी महाराज (भू. पू. श्री पं. अमरसिंह जी शास्त्रार्थमहारथी) अध्यक्ष, अ. भा. वानप्रस्थ संन्यासी मंडल, गाजियाबाद,ने दि. ३-६-८२ को भेजा है। यहां उसे सम्पूर्ण ही परिशिष्टरूपेण दिया जा रहा है—

श्री स्वामी जी, सस्नेह नमस्ते ! आपका पत्र मिला, यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप पति पत्नि दोनों चतुर्थाश्रम में प्रविष्ट हो गये हैं। आपने जब अपने आपको तृतीयाश्रमी लिखा तब मैंने आपकी प्रशंसा की और आपका समर्थन किया। अब आप दोनों के चतुर्थ आश्रम प्रवेश की भी मैं प्रशंसा करता हूं। आपने उत्तम कार्य किया है। मैं आपके इस पग का समर्थन करता हूं। आप धार्मिक पुरुष हैं। आपके इस पग के लिये प्रमाणों को कोई आवश्यकता नहीं है। परमेश्वर आपको सुखी और प्रसन्न रखे। आपको भगवान् सफलता प्रदान करें। आप अपने पुत्र का पता और परिचय दें तो अच्छा हो। किमधिकम्। वैदिक धर्म का सेवक अमर स्वामी सरस्वती ***वेद मंदिर आर्यनगर*** गाजियाबाद (उत्तरप्रदेश)

पुनश्च-- (दि. २५--१--१९८५ को परिवर्द्धन) उपर्युक्त में एक बात का उल्लेख नहीं हो पाया था कि ९५ वर्षीय वयोवृद्ध आर्य संन्यासी (अब दिवंगत) श्री स्वामी अखिलानन्द जी महाराज [भू. पू. कालीचरण जी आर्य, उपमन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रति-निधि सभा (दिल्ली)] ने समक्ष में हम दोनों सहचर सहचरी (स्वामी स्वामिनी) के चतुर्थाश्रमग्रहण को सराहते हुए आशीर्वाद प्रदान करने की कृपा की। (अन्य भी अनेक विद्वानों तथा सन्या-सियों से सराहना मिली है।)

अनुपरिशिष्ट (घ)

वकालत छोड़ दी मैंने

हुई जब कोफ्त-सी भीतर वकालत छोड़ दी मैंने
बड़ी राहत मिली मुझको, तवालत फोड़ दी मैंने ॥
(वकालत छोड़ दी मैंने)

किया पैंतीस वरसों तक अगर्चे रोज वह पेशा । ø
मगर खुद को ही छलने की हिमाकत छोड़ दी मैंने ॥१॥
बनावट से कहाँ कोई रहा अब वास्ता मेरा ।
भली रूहानी पूँजी में सदाकत जोड़ ली मैंने ॥२॥
तखल्लुस "ओ३म् प्रेमी" जो रखा है खूब मस्ती से
उसे बदनाम करने की रज़ालत छोड़ दी मैंने ॥३॥
(३०/१२/७४ सुबह ५॥ बजे, फौरी तसनीफ)

अनुपरिशिष्ट (ङ)

पद्योपन्यास प्रणयन–प्रकथा (पद्यमयी)

[बहुत लम्बी अत्याशुरूपेण रचिता रचना के कतिपय छन्द ही यहां दिये जा रहे हैं] " शतप्रतिशत सत्यकथन करता हूँ "

सचमुच अब तक खूब पढ़ लिया, बहुत लिख दिया ऐसा--
जिस (लिखने) में कितना कम है 'अपना' कहने जैसा ॥१॥
फिर क्या है वह नकल किसी की ? (जो कृति बनली मेरी)--
नहीं, नहीं उसमें तो पाओ मौलिकता की ढेरी ॥२॥

ø यजुर्वेद के पहले अध्याय के पांचवें मन्त्र का उत्तरांश 'इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि') प्रारम्भ में देकर 'परित्याग" शीर्षकयुक्त पैम्फलेट बंटवाते हुए १७–५–१९७३ को जब मैंने वकालत–व्यवसाय छोड़ा था तब १९३८ से शुरूआत करके उक्त दिनांक तक ३५ वर्ष वह व्यवसाय मैं कर चुका था। यह रचना लगभग १॥ बरस बाद उर्दू में अचानक बनी। उल्लेखनीय है कि सन् १९३३ ई से हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी तथा संस्कृत में मात्र ओ३म्देव कृपया गेयपद्य–प्रणयन मुझसे होते रहते हैं, कब किस भाषा में कौनसी विधा के अन्तर्गत कैसा कितना लिखूँगा, इसका पूर्वाभास तक भी नहीं हो पाता–अस्तु। (स्वामी ओ३म्प्रेमी च. आ.)

मैं न स्वयं ही कभी समझ पाया कि लिख सका कैसे—
वह सब ऐसे कि हो यन्त्रचालित ही कोई जैसे ॥३॥
सर्वाधिक आश्चर्यमयी 'माण्डवी' की रही रचना।
जिसके सिरजन में बिल्कुल भी मुझको पड़ा न पचना ॥४॥
'क्या मैंने ही इसे रचा है?' ऐसा मुँह से मेरे--
सहसा निकला कृति की इति पर (वचन रहे चितिप्रेरे) ॥५॥
यद्यपि रचना मैंने ही की, तथापि 'कोई' भीतर--
प्रेरक सतत रहा, मैं तो रह पाया बन प्रेरित वर ॥६॥
सात बरस के बाद एक दिन मिली प्रेरणा वैसी--
अकस्मात्, 'माण्डवी'--स्रजन के समय मिल सकी जैसी ॥७॥
"पद्योपन्यास 'माण्डवी' का गद्यानुवाद कर डालो।
सुनो ओ३म् प्रेमी! आगा पीछा क्यों देखो भालो" ॥८॥
और यंत्रचालितवत् पुनरपि सक्रिय मैं हो पाया।
गद्यरूप में वही 'माण्डवी महोदया' कहलाया ॥९॥
किया 'माण्डवी महाशया' तब नामकरण उसका भी--
जो पद्योपन्यास रहा 'माण्डवी' नाम वाला हो ॥१०॥
अहा! 'माण्डवी महाशया' का प्रणयनकाल अनूठा--
ऐसा रहा कि वर्णन को मानो तुम शायद झूँठा ॥११॥
फिर भी मैं तो शतप्रतिशत यह सत्यकथन करता हूँ।
जो अनुभूति हुई मुझको, बस- वह सम्मुख धरता हूँ ॥१२॥
लगातार पच्चीस दिनों तक जब तब लिखते रहकर--
मानो भाषा देदी मैंने भाव भीतरी गहकर ॥१३॥
अधिक सत्य है यह कि नहीं भाषा भी मैं दे पाया।
किसी शक्ति ने भीतर से प्रेरित कर सब लिखवाया ॥१४॥
मंत्रमुग्ध या कठपुतले—सा मैं था रचना करता।
क्या आगे लिखने वाला हूँ ध्यान यह न था धरता ॥१५॥
अभिभाषकीय मुहर्रिर मेरा, बहुधा यों जिज्ञासा—
था करता पच्चीस दिनों में, (बन उत्तर का प्यासा) ॥१६॥

'क्यों' 'सर' ! अब क्या आप लिखेंगे आगे, मुझे बतावें।
मैं कहता था–" मुंशीजी ! कर कृपा न मुझे सतावें ॥१७॥
कौन लिखाता है मुझसे क्या, स्वयं नहीं यह जानूँ।
फिर कैसे आगे की बातें पहले से पहचानूं ॥१८॥
उधर, विज्ञ अधिवक्तागण भी टंकितांश मुझ से गह--
बड़ी प्रशंसापूर्वक ही दढ़ते रहते थे अहरह ॥१९॥
कुछ साहित्यमनीषप्रवर कविता-- मर्मज्ञ बन्धुगण।
अचरज से लखते थे प्रणयन जो था सतत विलक्षण ॥२०॥
कवि अधिवक्ता मित्र एक तो लगे पूछने इक दिन--
" क्यों भैया ! कैसे मात्राएँ छन्द की सको तुम गिन ?" ॥२१॥
मैंने कहा कि " पिंगल मैं कब कुछ भी हूँ पढ़ पाया ?
काव्य बनाने का 'गुर' किसने कब मुझको सिखलाया ?? ॥२२॥
आप भले ही इसे न मानें सत्य, किन्तु सच है यह--
'मैं न बनाऊँ फिर भी बन जाते सु-पद्य हैं, रस गह" ॥२३॥
वह वस्तुतः बहुत अद्‌भुत प्रेरणा--दान था प्रियतर।
दिखा नहीं वरदानी अब तक पर पाया उससे वर ॥२४॥
हां वर ही तो है कि 'माण्डवी' नई विधा में रचकर--
मैं पद्योपन्यास बना पाया जो रहे शुभंकर ॥२५॥
धन्यवाद यदि कोटि कोटि दूं तो भी न्यून रहेंगे।
क्या कोई मित्रगण कभी ऐसा सदुपाय कहेंगे ?? ॥२६॥
जिससे कृतज्ञता जतलाऊँ उसी शक्ति के प्रति मैं।
पा जिसकी प्रेरणा, 'माण्डवी' रची अनूठी मैंने ॥२७॥
रखा ओ३म् प्रेमी उपनाम लक्ष्य रख जिसको।
उर से करूँ प्रणाम अन्त में उसी ओ३म् प्रभु शिव को ॥२८॥
" धरकर सेवा में शब्दों के कुछ अजीब गुलदस्ते।
कहे ओ३म् प्रेमी अब सबको बारम्बार नमस्ते " ॥२९॥